

११ ११६

प्रेमचन्द के नारी-पात्र

प्रेमचन्द के नारी-पात्र

प्रो० अश्विनी



नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली

प्रकाशक

मेधागत पब्लिशिंग हाउस

२६ ए, चाण्डीनोका, अनाहुरनगर दिल्ली

बिज्जी-केन्द्र : नई सड़क दिल्ली

प्रथम संस्करण

दिसम्बर, १९९२

सूच्य

पाँच रुपये

घाबरख

हरिपाल स्वामी

मुद्रक

धोमा प्रिंटर्स

१ ब१३ ईस्ट पार्क रोड

नई दिल्ली

पारद को

जिसे मैं दे ही क्या सकता हूँ ।

—ओम्

आमुख

विद्यार्थी जीवन की समय के प्रारम्भ से ही मुझे प्रेमचन्द-साहित्य के प्रति उत्तरोत्तर बर्धमती विद्यासा रही है ; कारण सम्भवतः यही था कि मैंने उनकी कृतियों में जर्दू-हार से प्रवेश किया था और बटवारे के उपरान्त अपनी बचपन परम्परा के प्रतिभूत बच हिन्दी-साहित्य से मेरा संपाक पहुँच होने लगा तब मेरे मन में सर्वप्रथम यही इच्छा जागी कि वहाँ जर्दू में निजाने वाले प्रेमचन्द हिन्दी-लेखक के रूप में कहीं तक उफल हो पाये वे ; प्रायः मैं यही प्रकार से समझता हूँ कि सम्भवतः को ऐसी तुलनाएँक यद्यपि तन्त्र प्रवृत्ति बचकानी ही तो थी किन्तु इसमें संदेह नहीं कि उसी का सम्बन्ध मैंने किया है जिसके परिणामरूपक दिल्ली विश्वविद्यालय की एक ए परीक्षा के हेतु अपने मुकौमील-प्रबंध-विषय 'प्रेमचन्द के नारी-भाव' ही को स्वीकृत कर सका ; प्रस्तुत पुस्तक उसी का संशोधित रूप है ।

प्रेमचन्द पर समस्त विद्यासात्मक ध्यासोचनाएँ बहुत कम हुई हैं और इसी से उनके महत्त्वांकन के विषय में अपार मठ-वैविध्य मिलता है तिस पर उनके नारी-भावों पर किन्ही सम्बन्धक सविस्तर विवेचन का अभाव स्वाभाविक ही है । मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि सामाजिक जीवन में भारतीय नारी ने अपने श्रेष्ठ तथा अपने प्रति संकथित इतिहास का लेकर पिछले सन्न्यति-युग में जिस प्रकार विद्यासा-जात्रा की है उसके धनुष्य ही प्रेमचन्द की नारी-भावना एवं नारी-विषय को लेकर हिन्दी-ध्यासोचना का सब भी अत्यन्त लचीला रहा है । प्रेमचन्द-साहित्य में धनुष्युत नारी-भावना निविक्त्य रही है नारी का बच और नारी-विषय भी बही रहे हैं किन्तु इस सम्बन्ध में एक ही समीक्षक की पान्थताएँ एक नहीं रह सकी हैं । कम जिस लेखनी ने प्रेमचन्द को नारी विषय में धनुष्युत माना था वही प्रायः उस विषय की अपेक्षा भी धनुष्युत करती है । ऐसा क्यों है ? अपरिपक्व मान्यताओं के कारण या व्यक्तित्वादी धारणितक मनोविस्मयलों की प्रतिक्रिया स्वरूप ? जो भी हो निर्विस्स की विद्या मे यह कदम स्वयं होकर भी कोई निविक्त इतिहास तो नहीं दे पाता ।

क्यों न धातोजना सब धारम्भ से ही गहरी हो सतही चिपकी हुई प्रपचा पूर्वाग्रहों से मुक्त नहीं।

ऐसे में बाह्योद्धारणों की जरमर से मैं बहुधा कतर कर ही जाता हूँ। यही विश्वास मुझे पर्याप्त है कि मैंने प्रेमचन्द-साहित्य का धाद्योपान्त कई बार धध्ययन किया है और किसी भावना की पर्युष्टि धनवा स्पटीकरण के लिए वहीं के उद्धारणों को यथासम्भव महत्त्व देकर जाता हूँ। इसके एक ठो मैं प्रेमचन्द के प्रति स्पष्ट यह सचा हूँ दूसरे धाल-सन्तुष्ट भी ऐसे कि जैसे प्रेमचन्द का कोई बिरला कितान को निजी बीमाधों से धाध्मत्त मने ही हो कर्बधार तो नहीं।

धात जब कि साहित्य-क्यों की समुद्रि के साध-साध धनकी समस्याएँ भी गहरी होती आ रही हैं, यथावर्कन की मानव-मुनन नाग के बाव ही वह समझने की भी विधेय धाधरनकथा है कि कथा-साहित्य ही धन रधि को सर्वाधिक प्रमावित करता है और सहृदय-कृतियों का प्रेरक हुमा करता है। मुझे यह कहने में ठनिक भी बंदेह नहीं कि पुटपाच का हमार धधध्रध्र कथा साहित्य तथा कुधधी रोड के किराए पर पुनक-मुनतियों द्वारा पड़े जाने वाले उपन्यास साहित्य को कर्कधित करने और धपरिपक्व धन-रधि को धस्वस्व बनाने में विधेय काय्य हो रहे हैं। यदि ऐसा निरन्तर होता गमा तो धानव मुक्यों को लेकर हमार साहित्य पर नही धरन-धधध पुन-धधध हो बडेगा जिसकी धधधिका प्रेमचन्द की नारी-भावना ने धधने कुध में की थी। बहुत कोसले रहे हैं हम प्रेमचन्द की नारी को धीर उनकी उपबोगिता की हधधि को किन्तु धात यह सब एक कूतन परब की धधेमा रकठा है—ऐसी परब जो साहित्य को कुध-धर्म का उपकरण माध तो नहीं माने किन्तु यह न धूने कि कलात्मकता का सम्बन्ध धन-रधि के धधधन से भी होता है। इसके लिए धाधधकठा हम धधध की है कि प्रत्येक स्थान पर हम धनाधधधध धधधध धेने की धधधि से बर्धे धधधधधध धनाधधधी कधीटी ही को समीधा का मान धध न मानें और धीधध धधधध में निधी सहृदय-रधध को भी धधधध न करें। प्रेमचन्द की नारी धधधध ही इस धीर धधधध करती है। मैंने इस धूनी धधध में बधने का धधधध किया है और सब ही यह धधध धधधी संकधी कधधध नहीं धधधनी कि धधधधी धधी रही है।

धधधध नहीं कधना है क्योंकि धधधध कधन तो कूठि स्वर्ध ही हुधा करती है किन्तु यह मैं कधे न कधूँ धीर किन रधधों में कधूँ कि धधधध पुन भी धधधध धधधधधी की के धधधधधध धधधधध धी नहीं धधधधध से भी मैंने बहुत कधध

सीखा है। ऐसी प्रेरक शक्ति प्राम्य ही से मिलता करता है। मेरे लिए सब का विषय है कि पुस्तक पुस्तक डा० नयेक के चरखों में विद्या-प्राप्ति का घबहरा मुझे मिलता है। धर्मग्रंथ का उद्भवमानुसिद्ध का सावित्री सिन्हा का विजयेन्द्र स्नातक का इन्द्रज घोष्य श्री बनराज महाजन का मोलामाध विनारी तथा डा० प्रोमप्रकाश—ऐसे सर्वमाग्य तथा धार्मिक मुद्र-वर्ष से उद्भूत नहीं हो सकता है। मैं अत्यन्त आभायी हूँ नेचमल पम्पिनिग हाउस के संभातक का बिनके कारण वह पुस्तक प्रकाश में आ सकी है तथा बिनके स्नेहमय व्यवहार ने मुझे सर्वत्र आकर्षित किया है। परम बुद्ध की चैतन चारधर से मेरे संपर्कमय जीवन की जो प्रेरणा मिलती रही है और प्रस्तुत पुस्तक की पाण्डु-मिषि को अस्ताह-पूर्वक मुनने के उपरान्त जो परामर्श मिलते रहे हैं उनका सम्बन्ध अभिभ्यक्ति नहीं अनुभूति ही से है।

रसधीर यद्वर्नमैट कलिक
 कपूरबना
 प्रबंटी १ १९६२

विनीत
 श्रीमू अरवस्थी

क्रम

१ प्रेमचन्द-पूर्व हिन्दी-उपन्यास में नारी चित्रण	१
२ प्रेमचन्द के नारी-पात्रों की सामाजिक पृष्ठभूमि	१६
३ प्रेमचन्द की नारी भावना	२६ -
४ प्रेमचन्द के नारी-पात्रों का वर्गीकरण	४७
५ प्रेमचन्द के विशिष्ट नारी-पात्रों का चरित्र चित्रण	५६
(क) प्रेमिका-रूप	
प्रेमा	५६
विरज्ज	६६
सोफिया	६१
मनोरमा	६८
सुपिया	७३
तारा	७४
मञ्जा	७५
सैना	७४
अम्हा	७६
प्रेमा	७७
तिलिथा	७७
जीनी	७६
नाचवी	८०
नासती	८१
(ख) परिशीला-रूप	
सुमित्रा	८५
सुमन	८६
विद्यावती	९६

	१
भडा	१ २
बिनासी	१ ३
हुस्सूम	१ ७
बाजपा	११३
रतन	११८
निर्मला	१२४
मुन्नी	१३१
बनिया	१४१
गोबिंदी देवी	१४३
रानी सारंजा	१४६
समा	१४८
सोनी	
(ब) मादु-कप	१५१
रानी बाइबी	१५७
समोनी	१६१
ककड़ा	
(घ) राष्ट्रसेविका-कप	१६४
सुबरा	१६८
मुहुना	
(ङ) बिपदा-कप	१७१
गायत्री	१७५
कैसाती	१७७
प्यारी	

प्रेमचन्द पूर्व हिन्दी उपन्यास में नारी चित्रण

साहित्य और नारी का सम्बन्ध सास्वत है पर उस सम्बन्ध को निभाना भी कुछ कम पहचान समझा नहीं है। बड़ी कारण है कि आधुनिक युग से पूर्व हिन्दी-साहित्य में सामान्य नारी-भावना की अभिव्यक्ति अत्यन्त एकांगी समाज निरपेक्ष अभिकसित एक प्राय गँदनी रही है। वैदिक काल में जिस नारी के सहयोगाभाव में मोल-सिद्धि तक अप्राप्त्य समझी जाती रही तथा जिसे मनु ने अर्धवा का स्थान दिया धर्मों की अन्ति-बलभावस्था में ही उसे पुन-प्राप्ति का साधन-मात्र समझा जाने लगा था। मुसलमानी सभ्यता के आबमन (७ ई.) से तो नारी आरखी-बारी के भीतर परों के पीछे की उत्सुकता बन गई। पुरुष और नारी का सम्पर्क केवल एतों अथवा केवल बाजारी कोठों में ही रह गया। अन्त-हिन्दी-साहित्य के आदिकाल की नारी भी भोग प्राणात्म्या ही रही। भोग से निवृत्त के दो ही स्पष्ट मार्ग तत्कालीन साहित्य में परिचिन्तित होते हैं—भोग से अत्यन्त विनिवृत्ति अथवा उसमें अंध प्रवृत्ति। बौद्धों एवं जैनियों के विरक्तिमूलक साहित्य में नारी की छाया एक से दूर रहने के उपदेश मिलते हैं तो बाममार्गी तो वे ही विद्वत् काममार्गी किन्तु वहाँ तक बीरगाथाओं का सम्बन्ध है वहाँ भी नारी प्राय-वाचनात्म्य आकर्षण का ही विषय है और उसका चित्रण अपभोम्या का है प्रेरक शक्ति अथवा पुरुष की सहवामिनी का नहीं। वस्तुतः इन सभी साहित्य-आराधों में दृष्टि-मेव मात्र है नारी भावना का दृष्टिकोण मूलतः एक उसके सम्भोग्य रूप का ही है।

दोनों भावनाओं (विरक्तिमूलक और जिलास-प्रवृत्तिमूलक) में सामंजस्य अतिक्रम में भी स्थापित न हो सका। विरक्तिमूलक दृष्टिकोण ही बहुविध प्रतिपादित होकर उभर आया। कबीर ने जब 'बासहा प्राब हमारे मेह रे, तुम बिन दुखिया बेह रे' कहा होता तो उसके समस नारी की वैदिक आनन्दपक्षतां अन्वय रही होती किन्तु नारी को आदर बहु भी नहीं दे सके उसकी 'माई' से बहुत दूर आकर ही उन्होंने अतद्द माद की कल्पना की। वस्तुतः नारी के आदर की दृष्टि से बेधे बिना उसके मन की अथाह पहचान तक पहुँचना

घटभङ्ग है, किन्तु दुलसीदान ने भी ऐसा नहीं समझा और 'बीपतिबा सम चुनति तन' तथा 'अथम तं अथम अथम अति नारी' कह-कह कर उन्होंने साधारण नारी को अमातर की दृष्टि से देखा है। साध ही नारी के आदर्श-रूप में उन्होंने बहुत नारी प्रतीकितता को प्रस्तुत किया है। निस्संदेह चौटा का आदर्श अपूर्व है किन्तु अन्तर्माता को पूज्या मानते हुए भी उसकी मूलोक्तवादिनी नारी-व्यक्ति को जब वह 'अमुषी की-सी ताड़ना की अधिकारिणी' मानते हैं तो स्पष्ट हो जाता है विशेष नारी का विशेष (अर्थिक) रूप ही तुलसी को प्राप्त था साधारण नारी के प्रति उनका दृष्टिकोण भी मूलतः वैदिक-वैदिक ही था। इस प्रकार अति-साहित्य में नारी रहती है आर्य की नायगी और परमावती तथा सुरदास की चबिका और योगिनी। नारी का मधुर रूप इनमें अत्यन्त उपलब्ध होता है परन्तु नारी भावना इनकी केवल मधुर तक ही सीमित है एकाकी है। दूसरे, नारी-रूप इनका भी विशिष्ट है एकदम लौकिक नहीं। रहस्य के पर्दे को प्योही थोड़ा ऊपर उठ कर हम भ्रूंकते हैं तो देखते हैं कि मूर वहाँ 'ओष हृदको ओष कुम्बहि' की मारुता से सहानुभूति रखते हैं वहाँ अनेक परों में नारी उन्हें धार्मिक मार्ग की बाधा-रूप में ही दृष्टिबोध होती है। आर्य की एकलक्षण तो ऐसे रूप पर मुग्ध होता है जो इस सोच की वस्तु नहीं है अथवा वह भी कह देता है, 'तुम तिरिया मतिहीन तुम्हारी'। इस प्रकार हम देखते हैं कि अति-काल में भी नारी के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण का अभाव है। धार्मिकता की नारी-भावना प्रचलित अद्यतन है तो अति-कालीन दृष्टिकोण अत्यन्त अल-साध्य है और प्रमुच्यत संयत है। इस दृष्टि से यह भावना पूर्ववर्ती भावना से उत्कृष्ट अथवा है किन्तु है यह भी अत्यन्त।

काव्य का असाधारणिक विशेष अतिक्रम को अर्थ देता है। ऐतिहासिक नारी को इसी भावना का अतिक्रम बनना पड़ा। 'कला कला के लिए ही' वह तो सदा ही सज्जा है किन्तु जब कला विलासिता के लिए ही जाती है तो समूचे देश पर और उसमें भी विशेषतः नारी पर अत्यन्त प्रभाव पड़ता है। राजाओं की विलासिता में जा कर कला ने नारी के अर्थ-अर्थ जोष जाने। 'परमात्री' का 'अर्थोष' 'ओष हृदको कठिन' जाने जाने का अर्थ इसके अतिरिक्त और क्या हो सकता है कि ऐतिहासिक नारी भावना केवल उठ नारी पर प्रामाणिक है जो केवल उठती है केवल अतीर है जो निपट-भोग्या है अत्यन्त भावना की वृत्ति का साधन-साध है—जो निरालो सामान्या है अति-अतिरिणी है। पहले की तो ऐतिहासिक में भी नीति की थोड़ी अतिरिणी अथवा

विरवार धारि के माध्यम से हुई है किन्तु एक तो इनकी नारी-भावना प्राब-
लैराम्य की कोटि में ही घाती है दूसरे उसकी सत्ता अत्यन्त स्वल्प एवं
धीरु है।

संक्षेपतः हम देखते हैं कि धार्मिक काम के उदय (अभीसर्वाँ अठारवी के
पूर्वार्ध) तक हिन्दी-साहित्य में नारी के प्रति निम्न दृष्टिकोणों की अभिव्यक्ति
हुई है —

(१) नारी से पूर्ण पलायन का विरक्तिमूलक दृष्टिकोण—अविहृत बीड
एवं अंग सिद्धों का वार्षिक साहित्य नाब सम्प्रदाय की रचनाएँ कबीर, बाबू
पसदू धारि निर्वृणियों का काव्य तथा नीति-कवियों की रचनाएँ इसके अन्तर्गत
भी जा सकती हैं।

(२) नारी-विरोध के प्रति अलौकिक एवं आदर्शवादी तथा नारी-सामान्य
के प्रति विरक्तिमूलक दृष्टिकोण—गृहसीबास ने ही प्रथमतः इस दृष्टिकोण
का प्रतिपादन किया है।

(३) नारी के प्रति प्रेम-साधना का दृष्टिकोण—इसके दो प्रकार हैं

(क) अलौकिक प्रेम-साधना—मीरा मूर तथा मुक्तियों की रचनाओं
में इसका प्रतिपादन हुआ है।

(ख) सौकिक प्रेम-साधना—आत्म देव तथा किसी सीमा तक
रसवान धीर अदानम् धारि की रचनाओं का अर्थ विषय यही है।

(४) नारी से प्रति निरद-भोग्या का दृष्टिकोण—बाममायी सिद्धों
अथवा तान्त्रिक योगियों विहारी एक सीमा तक विद्यापति तथा अन्य रीति
मुंवारियों में इसी दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति हुई है।

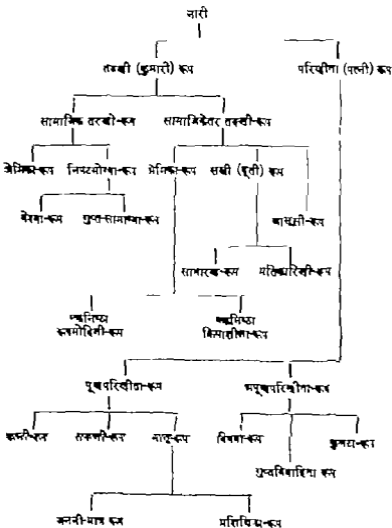
(अवर्तुक्त विहृषम दृष्टिपात प्रेमचन्द से पूर्व हिन्दी-उपन्यास में नारी
चित्रण के संस्कारों एवं प्रेरक शक्तियों को समझने के लिए किया गया है।
प्रेमचन्द-पूर्व हिन्दी-उपन्यास की परिधि प्रायः १८८ ई० से लेकर १९१६ ई०
तक की मानी जाती है। यह वह समय था जबकि भारतीय समाज का सम्पूर्ण
अंगरेजी साम्यता से अक्षयितर बढ़ रहा था। साम्यता के नवीन प्रयागों क
आकर्षण से एक नूतन समाज का अन्म हो रहा था—ऐसा समाज जिसे अपनी
साम्यता अक्षुण्ण तथा पिङ्गी हुई लग रही थी और जो अपने विकासार्थ
पादचाल्य समाज से हित मिल कर रहना सीख रहा था। इसकी प्रतिक्रिया-
स्वरूप ही आर्यसमाज भी वैदिक धर्म की पताका अक्षरता हुआ मुबारवार को
धोर अक्षम बढ़ा रहा था। उसके सांस्कृतिक मूर्त्यों एवं विदेशी साम्यता के इस
अक्षय को साहित्य-समाज भी अनुभव कर रहा था और कविता के माध्यम से

इसकी अभिव्यक्ति भी प्रायः हो रही थी किन्तु हिन्दुओं को उपन्यास तो मिला ही परिवर्तन की देन-स्वरूप। इसलिये आकर्षण की एक क्रमशः भावना परिवर्तन के प्रति उत्कामीन उपन्यास-संप्रदाय में प्रारम्भ रूप से विद्यमान थी। नवाबस्तु को बर्ह करने का इरादा तो वे वहीं से सीस रहे वे किन्तु बेसम्बन्धी सुधार धान्दोसनों तथा निजी संस्कारों के कारण पाश्चात्य उपन्यासों के सामाजिक विषय को ग्रहण करना उनके लिए कठिन हो रहा था। (नारी-भावना के विषय में भी यही इन्द्रात्मक स्थिति थी)। पाश्चात्य नारी-रूप का उत्कामीन हिन्दू-समाज में प्रहीत होना असम्भव था। बुरही घोर सामाजिक उपन्यासों ने प्रत्यक्ष-प्रत्यक्ष से ज्ञात होता है कि उत्कामीन उपन्यास-लेखक रीतिकामीन नारी-रूप से भी समुत्पन्न नहीं थे (किन्तु यही निश्चित परिणाम के अभाव में सामाजिक उपन्यास-लेखकों ने नारी-चित्रण से प्रायः घाट बचा कर ही निकलना प्रारम्भ कर दिया और यदि जोड़ी बेर के लिए साक्षात्कार किया भी तो नैतिकता एवं प्राचीन उपदेशात्मक संस्कृत-साहित्य की प्रेरणा-स्वरूप पाठिभक्त, गहनशीलता आदि की व्याख्या द्वारा राहु-बलठे उपदेशों की अभिव्यक्ति-मात्र कर ही और यथासम्भव पुरख-पत्रों के माध्यम से ही अपनी चारणाओं का निरूपण करना प्रारम्भ कर दिया। किन्तु इतना प्रबल है कि इनकी नारी-भावना रीतिकामीन नारी-भावना से बहुत-कुछ भिन्न है। (हिन्दी के सर्वप्रथम उपन्यास 'परीक्षा भुव' में ही यह विभाजक रेखा स्पष्ट हो जाती है "एक विद्वान् से पूछा गया था कि कोई मनुष्य ऐसा होना जो किसी स्त्रियकी मुन्दरी के साथ एकान्त में बैठे हो दरबाजा बन्द हो पहरे वाला सोता हो मन लसता रहा हो काम प्रबल हो" "और वह अपने सम-रम के बल से निर्दोष बच सके? उत्तर मिला 'हाँ वह स्त्रियकी मुन्दरी से बच सकता है किन्तु निन्दको की निन्दा से नहीं।' स्पष्ट है कि रीतिकामीन नायक ऐसे प्रबल से कभी नहीं बूझ सकता था किन्तु श्रीनिवासदास नारी के उच्च स्थूल रूप को देखते हुए भी उद्यम दृष्टि बचा कर एक निकल मण है। यहीं से नारी-भावना में अन्तर परिवर्तित हो जाता है।

किन्तु उक्त अन्तर नाममात्र को ही रह जाता है क्योंकि प्रारम्भिक हिन्दी उपन्यास केवल नीति को लेकर पाठकों में कृत्रिमता या सजा। बटु-से उच्च परासों में तो प्रादसों की रक्षा के हेतु नारी-चित्रण उपन्यास का पटल बँधे ही बजित था और प्रत्यक्ष व्यस्त मध्यमों को चाहिए था हल्के-सुन्दरे रोमांच

द्वारा मनोरंजन । ऐसी अवस्था में भी कुछ उपन्यास-लेखक धारण पर टिके रहे और अपने सामाजिक उपन्यासों द्वारा नैतिक शिक्षा की अभिव्यक्ति करते रहे किन्तु इस कोटि के भी कुछ उपन्यासकार बहुत गण और नारी का स्पष्ट चित्रण सन्तुष्टि प्रारम्भ कर दिया । वेप बहुत से उपन्यास-लेखकों ने विषय की खोज

प्रेमचन्द-पूर्व हिन्दी-उपन्यास में



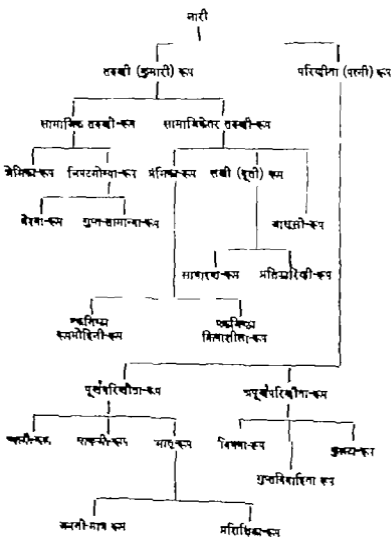
इसकी प्रतिबन्धिता भी प्रायः हो रही थी किन्तु हिन्दो को उपन्यास तो मिना ही परिचय की देन-स्वरूप । इसलिए धार्क्यण की एक कोमल भावना परिचय के प्रति तत्कालीन उपन्यास-लेखकों में दृश्य रूप से विद्यमान थी । क्याबस्तु को बढ़ करने का इतना वे नहीं थे सीख रहे थे किन्तु देशभारती सुधार-चान्दोसनों तथा निजी संस्कारों के कारण पारश्चात्य उपन्यासों के सामाजिक विषय को ग्रहण करना उनके लिए अशक्य हो रहा था । (धारी भावना के विषय में भी यही दृष्टांतरक विधि थी)। पारश्चात्य नारी-रूप का तत्कालीन हिन्दू-समाज में ग्रहीत होना असम्भव था । दूसरी धोर सामाजिक उपन्यासों के अन्त-साध्य से ज्ञात होता है कि तत्कालीन उपन्यास-लेखक ऐतिहासिक नारी-रूप से भी समुद्र नहीं थे (किसी भी निश्चित परिष्ठान के अभाव में सामाजिक उपन्यास-लेखकों ने नारी-चित्रण से प्रायः भास बना कर ही निकलना आरम्भ कर दिया और यदि थोड़ी देर के लिए आलात्मिक क्रिया भी तो वैकिकता एवं प्राचीन उपदेशात्मक संस्कृत-साहित्य की प्रेरणा-स्वरूप पाठिभूत, सहनशीलता आदि की व्याख्या द्वारा राहु-बलते उपदेशों की अति व्यक्त-भाव कर ही धीरे-धीरे अशास्त्रमय-पुराप-गार्हों के माध्यम से ही अपनी धारणाओं का निरूपण करना आरम्भ कर दिया । किन्तु इतना असम्भव है कि इनकी नारी-भावना ऐतिहासिक नारी भावना से बहुत-कुछ भिन्न है । (हिन्दी के सबप्रथम उपन्यास 'परीक्षा पुत्र' में ही यह विभाजक रेखा स्पष्ट हो जाती है 'एक विद्वान् से पूछा गया था कि कीई मनुष्य ऐसा होया जो किसी रूपवती मुन्दरी के साथ एकान्त में बैठू हो दरबाना बन्द हो पहले वाला सोता हो मन समचा रहा हो काम प्रबल हो' 'धीरे यह अपने धम-धम के बस से निर्दोष बच सके ? उत्तर मिना 'हाँ वह रूपवती मुन्दरी से बच सकता है किन्तु दिवकों की निन्दा से नहीं ।' स्पष्ट है कि ऐतिहासिक नाटक ऐसे अक्षर म कभी नहीं बूक सकता था किन्तु औनिबासदास नारी के अक्षर रूप को देखते हुए भी उसी दृष्टि बना कर साक निबल गए हैं । यही से नारी भावना में अन्तर परिमणित हो जाता है ।

किन्तु अन्त अन्तर नाममात्र को ही रह जाता है क्योंकि आरम्भिक हिन्दी-उपन्यास लेखन नीति को लेकर पाठकों में कृति न पा सका । बहुत-से अक्षर चरानों में तो आक्षेपों की रसा से हेतु नारी-विषयक उपन्यास का पठन बंधे ही बजित था और अत्यधिक व्यस्त अध्येतवर्ग को चाहिए था इसके-पुत्रके रोमांच

प्रेमचन्द-पूर्व हिन्दी-उपन्यास में नारी-चित्रण

द्वारा मनोरंजन । ऐसी व्यवस्था में भी कुछ उपन्यास-लेखक धारण पर टिके रहे और अपने सामाजिक उपन्यासों द्वारा वैतिक शिक्षा की अभिव्यक्ति करते रहे किन्तु इस कौट के भी कुछ उपन्यासकार बहक गए और नारी का स्थूल चित्रण सहज ही धारण कर दिया । अब बहुत से उपन्यास-लेखकों ने विषय की खोज

प्रेमचन्द-पूर्व हिन्दी-उपन्यास में



में इतर-उपर भ्रष्टा तथा पाठक की कमखीर बुद्धियों की परिदृष्टि के लिए प्रेरणा-रूप में जो भी कमलकारमुक्त मत्ताता नहीं मिलता उसके एकहीकरल में लग गए । जिन्होंने संस्कृत-शास्त्राधिकार्यों की घोर दृष्टि केटी उन्होंने 'श्यामा स्वप्न' तथा 'आश्चर्य-भूतान्त' की सृष्टि कर वाली भीर पाठक के भावपूर्ण के हेतु प्रेम की स्वच्छता स्त्रियों के प्रति विद्रोह के छाव-साप घस्लीसता को भी प्रमय दिया । जिन्होंने धैर्यही साहित्य की घोर भ्रष्टा के भी प्रायः सामाजिकता से बहुत दूर 'आसुत' पत्रिका के छावोप में बूट गए । एक प्रधान बर्न प्ररसी प्रेम-कथाओं हिन्दी-श्रेयास्यामकों तथा ऐतिहासिक संस्कारों को बपीठी मान कर 'आश्रकान्ता-सन्तति' 'अनक-कुसुम' तथा 'श्रीवत-सन्ध्या' आदि कौतूहल-पूर्ण एवं माममात्र की ऐतिहासिक कथाओं के माध्यम से नायिका के उत्तेजक प्रेम प्रधान रूप की विशेष प्रसामाजिक अभिव्यक्ति करने मया । मुक्त यही है इन उपन्यासों का नायिका-रूप । इनमें नायिका के तस्ली-रूप एवं परिछोटा-रूप की ही मुख्यतः अभिव्यक्ति हुई है । पृ २ पर ही हुई नायिका की महायता से हम हम प्रेमचन्द-पूर्व हिन्दी-उपन्यास के नायिका-रूप को अधिक स्पष्ट करने का प्रयत्न करेंगे ।

तस्ली-रूप

तस्ली-रूप से तात्पर्य इन उपन्यासों में नायिका के उस रूप से है जिसे विवाह के पूर्व की कौमार्यवस्था कहते हैं । जिसमें किसी भ्रातृ के प्रति समर्पण की भावना नलकटी रहती है तथा जिसमें विवाह के लिए परीस बचवा प्रत्यय प्रयत्न जारी रहते हैं । प्रेमचन्द-पूर्व उपन्यास-साहित्य में सामान्यतः दो प्रकार के तस्ली-रूपों का विषय हुआ है—सामाजिक तस्ली-रूप एवं सामाजिकैतर तस्ली-रूप ।

(१) सामाजिक तस्ली-रूप

सामाजिक उपन्यासों का यह तस्ली-रूप समाजैतर तस्ली भववा जानुसी उपन्यासों के नायिका-रूप की भांति बहिष्कृत एवं समाज में उपलब्ध न होने वाली बल्पना-बीड़ा का बर्लन नहीं है अपितु ऐस नायिका-नाथ अपेक्षाकृत अधिक सामाजिक एवं बिरबसनीय हैं । किन्तु बुध-धर्म की अभिव्यक्ति भी 'परिदा मुक' 'भूतन बह्मपापी' 'आदर्श बल्पनी' 'बुद्ध रमिकनास' 'श्रीवत-सन्ध्या' एवं 'अपसा' आदि उपन्यासों के तस्ली-नाथों के माध्यम से नहीं हुई

है किसी उपदेश भयवा वासनायुक्त धार्यण के हेतु ही इनकी सृष्टि हुई है। सामाजिक वर्ग के इस तटस्थी-रूप के धर्तरण से प्रमुख नारी-रूपों की धर्मव्यक्ति हुई है—प्रेमिका-रूप और निपटभोग्या-रूप।

(क) प्रेमिका-रूप—इस सामाजिक वर्ग की बहुत कम तदृष्टियाँ प्रेमिकाएँ हैं क्योंकि नैतिक तथा सुधारवादी उपन्यासों में नैतिकता प्राप्त पुण्य-पार्श्वों में ही उतारी गई है। नारी-पार्श्वों की संख्या ही एक तो वहाँ बहुत कम है दूसरे इनको उपन्यासों में भयपूर्ण स्थान मिला है—धीरे उस पर भी पत्नी रूप का ही वर्णन अधिक हुआ है। ठाकुर भयमोहनसिंह के 'सामा-स्वप्न' किशोरीनाथ मोस्वामी के 'अपना मन्थाराम मेहता के 'वृत्त रसिकनाथ' तथा 'स्वतन्त्र रमा और परतन्त्र लक्ष्मी' एवं रत्नचन्द्र पौडर कथ 'मूतन चरित' आदि सामाजिक उपन्यासों में नारी के प्रेमिका-रूप का चित्रण हुआ है। शृंगार का घोसा प्रदर्शन करती हुई एकनिष्ठता इस वर्ग की प्रमुख विशेषता है। प्रेम की स्वच्छता से सभी प्रेमिकाएँ चहती हैं। सामाजिक रुढ़ियों के प्रति इनकी प्रेम भावनाओं में असन्तोषजनक काम-कुष्ठियों की धर्मव्यक्ति मिलती है। विवाहित पुरुष से प्रेम अवादीय तथा रीतिहीन विवाह एवं अस्वस्थ काम-विष्टाओं ने मिस कर इनके विकास के सभी मार्ग बन्द कर दिये हैं। अतः कोई अस्वामाजिक नहीं है कि इनमें कोई वैधर्म्य नहीं है और इनका प्रेम ही धरीरों तक ही परिसीमित रहा है। मोस्वामीजी की सामाजिक प्रेमिकाओं में विविध प्रेमाकुमुठियों के छोटे अवश्य मिलते हैं, किन्तु मोस्वामीजी के इस कथन से कि "सभी मुक्त-मुक्तियाँ एक-दूसरे को पायन करना चाहते हैं पर धमी तक इसका उपाय बहुतों ने नहीं जाना है। इसका अभाव केवल उपन्यास ही दूर करता है।" — निस्सन्देह यही प्रकट होता है कि मोस्वामीजी ने इन प्रेमिकाओं के पीछे किसी महत्व उद्देश्य की कल्पना नहीं की थी और किस प्रकार उपयोक्ता एवं मनोरंजन की प्राप्ति में अस्वस्थ पाठक की अस्वस्थ वृत्तियों का नाश उठा कर उसे धीरे धीरे अस्वस्थ बनाया गया यह भी सहज ही स्पष्ट हो जाता है।

(ख) निपटभोग्या रूप—तटस्थी के प्रति ऐस दृष्टिकोण पर बहुत-कुछ रीतिकानीय छाप विद्यमान है। प्रेमिका-रूप एवं निपटभोग्या-रूप में धर्तर केवल एकनिष्ठता का ही है। मूलतः दोनों ही रूप उपभोग्या के हैं। इस तटस्थी-रूप की धर्मव्यक्ति से माध्यमों से हुई है—वेद्यापार्श्वों के माध्यम से तथा पुनः

सामान्यार्थों के माध्यम से।

(प्र) बेव्या-रूप—नीति पर आधारित उपन्यासों में बेव्याओं का चित्रण उल्लेख ही मिलता है किन्तु अन्य प्रेम-प्रधान उपन्यासों में पात्र-रूप भी उन्हें दिया गया है। 'परीक्षा-मुक' में यदि जम्सल-मात्र मिलता है तो योस्वामीजी की 'अपना' तथा देवकीनन्दन खत्री-द्वारा 'काजर की कोठरी' में प्रत्यक्ष बेव्याओं से साक्षात्कार होता है।

(भा) गुप्तसामान्या-रूप—सामाजिक प्रादुर्भावों को बेव्याओं से भी अधिक अमिष्ट की धारणा उन गुप्तसामान्याओं से रहती है जिनकी रातों बिकती हैं और दिन पवित्र रहते हैं। 'बुसाम दस्तगीर अपनी भगिनी के संग इस्क का हम भरता हुआ नगर भाया' 'रामाकान्त। बंसी बपी इस्क उपपति इसे संकेत से बुला रहा है' "तुम मुझे अपने निकट से न हटाओ इस सुनसान सुहावनी निगा में मेरी मनोकामना पूर्ण करो ऐसा सुख बड़े भाग्य से मिलता है" तथा 'नित उसका (देवदूती का) भी कामिनीमोहन की ओर खींचने के लिए बासमती (बर की मासिन) उपाय करती' आदि प्रादि उदाहरण इन उपन्यासों में मिले पड़े हैं। यद्यपि इस प्रकार की धमनाओं से गरहण करने के उपरान्त भी साव-साव ही बिपका दिये गए हैं, तथापि इसमें कोई सन्देह नहीं कि नारी का यह अस्वच्छ, विकृत एवं अस्वीकार्य रूप ही और पात्र विकास के अभाव में पाठक पर इसका अस्वच्छ प्रभाव भी अस्वीकार्य है।

(२) सामाजिकोत्तर तरुणी-रूप

इस नारी-रूप से प्रेमचन्द-पूर्व हिन्दी-उपन्यास के उन तिमस्मी जानूरी एवं अंततः एतिहासिक तरुणी-नायकों का सम्बन्ध है जिनका जिया-जलाप कौतूहल एवं अमत्कारक्य अभिव्यक्त हुआ है तथा जो समाज में प्रायः उपसर्ग नहीं होता। कल्पना की अतिधमता के सहारे ही इनकी निर्मित हुई है। तो भी पाठक यह विश्रुत नहीं कर पाता कि ये शरीरवती तरुणियाँ हैं और नायक की अनीष्ट भाषाओं को सँप कर इसी अन्तिम पड़ाव तक पहुँचती हैं। इनके तीन प्रकार मिलते हैं—प्रेमिका-रूप दूती अथवा सखी रूप तथा जानूरी-रूप।

१ रामकान्त अस्वच्छ सत्य ५ १

२ .. ५०-६०

३ .. ५ २२१-२२

४ अचिता दूत अचितामिद उपन्यास ५ २

(क) प्रेमिका-रूप—नायक के प्रभुत्व ही से सभी प्रेमिकाएँ प्रभुपद का बली हैं तथा इनका सम्बन्ध भी प्रायः राजस्य वर्ग से है। इन्हीं के प्रेम और शौरता के स्वल्प प्रसंगों को लेकर उपन्यास का प्रासार बढ़ा क्रिया जाता है। प्रमी पात्र के प्रति ये एकनिष्ठा हैं तथा बहुपत्नीक नायक को भी एक बार मन से डामने पर अपने 'डामन को पाक' रखती हैं। इन प्रेमिकाओं के भी दो रूप हैं।

(प्र) एकनिष्ठा-रूप—मोहनी-रूप—इस वर्ग की प्रेमिकाएँ अविन्यक्त रूप से बिक्रियत हैं किन्तु इनकी प्रमुख विशेषता नायक को मोहित करना ही है। नायक को सक्रिय सहायता इनसे प्राप्त नहीं होती। विलासो एवं ऐयायी उपन्यासों की नायिकाएँ प्रायः इसी वर्ग में आती हैं। संवेदनापूर्व ऐयायी के माध्यम से ही नायक तक इनकी पहुँच होती है। यही कारण है कि काठिकप्रसार लक्ष्मी-बिबिध 'जीवनसंध्या' के ठेकसिंह 'फुलबाड़ी के फूल' (राजकुमारी) को बाहते हैं वर्तमान फूल (जीम युवती) को तुच्छ समझते हैं।

(पा) एकनिष्ठा क्रियाशीला-रूप—रूप-माधुरी के साथ-साथ इस उपवर्ग की प्रेमिकाएँ अपने घसाधारण बौर-कर्मों द्वारा पुरप-वेद बाधक करके भी नायक को आकर्षित करती हैं। कमी-कमी तो नायक के मार्ग को अकष्टक बनाने के लिए नायक के प्रेमियों से भी महत्त्वपूर्ण प्रयत्न ये कर डालती हैं तथा फाँसी के तख्ते से नायक को उगा जाने की क्षमता को इनमें विद्यमान है। किशोरी लाल मोस्वामी के 'कलककुसुम' की मस्तानी ऐसी ही नायिका है। अपनी क्रियाशीलता एवं एकनिष्ठा के कारण ही मुस्लिम होती हुई भी महत्त्वपूर्ण द्वारा अपने घन्त-पुर में बहोव होती है। देवकीनाथन लक्ष्मी-कृत 'कुसुमकुमारी' का नायक रणवीरसिंह तो 'नायिक के बरबादे की जाक खानने' में ही अपनी इच्छत समझता है और यदि कुसुमकुमारी उसकी सक्रिय सहायता को नहीं होती तो उसके प्रमीष्ट की सिद्धि अवाचित सम्भव नहीं थी।

(ख) शूरी प्रवृत्त लक्ष्मी-रूप—सामाजिकेतर उपन्यासों में नायिका के उपरान्त इसी नारी-रूप का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। नायिका के प्रेम का अफल बनाने के लिए ये तैयार भी बनती हैं और सर्वक्येण सहायता करती हुई इन वृत्तियों की शायः नायक के किसी मित्र से धारणाई भी हो जाती है। यदि नायक का बच्चा विरहासपात्र निकला तो इनके साधारण प्रेम की धमिध्वत्ति होती रहती है और यदि स्थावचय नायक-सच्चा नायक-त्रोही हो गया तो भी ये शायः उस पर विष्णाम करती रहती हैं किन्तु अपने प्रेम का प्रमी पात्र द्वारा ही निर

स्कार इन्हें सहा नहीं होता और 'भसा रे दुष्ट देव' में तुमसे कंसा बचता सेती हूँ' १ याचि कह कर प्रतिकारिणी का रूप धारण कर लेती है।

(ग) बासुसी-रूप—यह नारी-रूप परिचय से पृथित बासुसी उपन्यासों का होने का कारण एकदम प्रभावी है। इसलिए इन लक्षणियों में वैविध्य मिलता है। कुटनीतिपूर्ण हत्यारी कुटिलानियों के वर्णन होते हैं तो प्रवान बासुस की सहायक प्रतिकारिणी की भी कमी नहीं है। वस्तुतः बासुसी उपन्यासों का धरातल सांसारिक एवं विचलनीय होते हुए भी इनका ठरली-रूप अमनोवैज्ञानिक असाधारण एक कृति है। नोस्वामीजी की 'तारा' के अतिरिक्त गहनरीजी के प्रायः सभी उपन्यासों में इस वर्ग के नारी-यात्र मिल जाते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रेमचन्द-पूर्व हिन्दी-उपन्यास में विविध ठरली रूप सामाजिक तथा असाधारण दोनों रूपों में रीतिकामीन संस्कारों की प्रवृत्त का कारण प्रवानत नारी के प्रति भोग्या के दृष्टिकोण से ही प्रभावित है, संस्कृत एवं पुराणों का आचार वहाँ मिला है वहाँ यत्किञ्चित् नैतिक हो गया है तथा प्रेमोत्थानकों के प्रभावस्वरूप इसमें नायिका की प्राप्ति के हेतु नायक को प्रयत्नशील दिखाना गया है। प्रेम में व्यक्ति से बाहर कर्तव्य के लिए स्थान नहीं बहुत ही कम है और यह भी कि उत्कामीन आदर्श पृथक् इसे अस्वीकृत एवं अमर्यादित समझते हुए इससे संभल कर चलने में ही अपना श्रेय मानते थे।

परिलीता-रूप

परिलीता अथवा पत्नी-रूप की अविद्युति प्रेमचन्द-पूर्व हिन्दी-उपन्यास में दो प्रकार से हुई है—पूर्व-परिलीता तथा अपूर्व-परिलीता रूपों के माध्यम से।

(१) पूर्व परिलीता-रूप

पत्नी का यह आदर्शवर्णित रूप सामाजिक उपन्यासों में प्रायः ऐसे उपरोक्तों के आचार पर ही प्रतिपादित हुआ है

‘अति या नात्रिचरति मनोवाग्देहस्यता ।

न भन् लोकात् प्राप्नोति तद्विज् लाम्बी न बोध्यते ॥

१ 'कुतुम्बुमारी' में नातिन्दी अन्वर्णित है (मान रितीव) देवकीवन्दन कवी

अभिचारानुगतः स्त्री लोके प्राप्नोति निन्दताम् ।

अज्ञानमोहितप्राप्नोति पारोपकारं पीडयते ॥”

‘दक्षिण कुसुम’ की भूमिका में प्रकाशक रामकृष्ण बर्मा लिखते हैं— हमारे देश की धार्मिक सतताओं का पातिव्रत धर्म जो सुमहान में निष्कलक जसाक की विमल कौमुदी बत् विधाहित हो रहा है। हमारे यहाँ का पातिव्रत हम भाष्ट्रावासियों का प्रधान और-स्वतन्त्र है कि जिस पक्ष और सुन कर दूसरे देशों की धर्मज्ञान सजाती और पछताती है। ऐसे देश की स्त्रियों का धर्म बल कीतिपुंज को कल्पित कल्पना से स्वयं कल्पित करना बुद्धिमानो नहीं है। ‘परीक्षा युग’ का ‘पतिव्रता’ प्रकरण भी इस दृष्टि से पठनीय है। ‘अज्ञानता कृत’ में भी कहा गया है कि “जो अपने पति की बात नहीं मानती उसका भला कभी नहीं होता।” इस प्रकार हम सभी सामाजिक उपन्यासों में ‘अज्ञानताओं के प्रति पातिव्रत के’ उपदेश धरे पड़े हैं। ‘संसार में इससे बड़ कर कोई दुःख नहीं कि सहस्रमिस्री दुष्ट मित्रे” और “मने ही स्वामी कुष्टी कुचाली कर्कश और श्रेणी क्यों न हो किन्तु स्त्री को उस पर धर्म मति रखना ही मुख्य धर्म है।”^१

‘परीक्षा युग’ में परिणीता का एक अन्व सुन्दर पल भी उभरा है। मदन-मोहन की पत्नी धारवाँ पत्नी होते हुए भी एक दूसरे पुरुष ब्रह्मविधोर को अपने जीवन में धर्म-भार का धर्म देती है। नारी मानना का यह विस्तार प्रमचन्द पूब उपन्यास में अत्यन्त है। ‘परीक्षागुह’ की यह व्यापक भावना निश्चय ही एक महान् उपलब्धि है।

परिणीता-धर्म में पत्नी द्वारा पति-सुधार एवं नारी के परोपकारी रूप के वर्धन भी कभी-कभी हो जाते हैं। ‘दक्षिण कुसुम’ की ‘कुसुम’ अपने प्राचरणो से रामनाथ को सुमार्य पर लाती है। रामनाथ के इस कर्म में कि “कुसुम का इतना ही कहना है कि बन्धु हो या मित्र सब को यही ठौर मित्रे”—नारी के महान् स्नेहशील एवं परोपकारी हृदय का परिचय मिलता है।

‘ठेठ हिन्दी का ठठ’ में अपोप्यासिह उपन्यास ने अनन्त विवाह की समस्या को भी उठसा है, किन्तु दृष्टि मूलतः भाषा पर ही केन्द्रित होने के

१ दक्षिण कुसुम धार्मिक-प्रमाण पृष्ठी ५ १११

२ अज्ञानता कृत अपोप्यासिह उपन्यास

३ उपन्यास प्रकाशन पृष्ठी ११

४ दक्षिण कुसुम धार्मिक-प्रमाण पृष्ठी ५ १४

कारण इसे प्रयास-मात्र ही कहा जा सकता है ।

सामाजिकेतर उपन्यासों में परिणोताओं के दो रूप मिलते हैं—पत्नी तथा सपत्नी-रूप । प्रायः ये सभी परिणोताएँ पुरुष पतिव्रता हैं और हँस-हँस कर सपत्नियों का स्वागत करती हैं क्योंकि उनका विश्वास है कि उनके पति को यही शोभा देता है कि 'श्रीबीहठ मुकटिन' परिपालयन्ति ।^१ किन्तु श्रीराम गोस्वामी के 'कनकमुमुम' का एक वर्णन देखिये—“काशी बाई (बाबीराव की पत्नी) अपने तंबू का पर्दा उठा कर बाबीराव के सामने खड़ी बाई और मस्ताली (बाबीराव की प्रेमिका) को गले लगा कर और उसका हाव बाबीराव के हाव न देखकर प्रसन्नता से कहने लगी 'नीबिये अब ब्यर्थ के सोच-विचारों को छोड़िये और अपनी प्रतिभा के अनुसार अब इस यवनकुल-बाला को बहल कर लिये ।’^२ अन्तर्जातीय विवाह की स्वच्छन्दता भी यहाँ विद्यमान है ।

(क) मातृ-रूप—पूर्णपरिणोता-रूप का प्रथम एवं विकसित रूप मातृ रूप होता है । प्रमथम्ब-पूर्व हिन्दी-उपन्यास में इस मातृ-रूप के उदाहरण अधिक नहीं मिलते किन्तु बितने भी मिलते हैं उनके आधार पर जननीमात्र तथा प्रथि पिका जननी इसके दो रूप माने जा सकते हैं । जननीमात्र वह नाममात्र की माता है जिसका कर्तव्य बच्चे देने के साथ ही सन्तान के प्रति समाप्त हो जाता है । परिस्थितियों की माँग के कारण अपिकोच उपन्यासों में ऐसे ही विकसित मातृ-रूप की अभिव्यक्ति हुई है । किन्तु प्रथिपिका जननी का स्वान महत्त्वपूर्ण होता है । अपनी सन्तान को वह अपने धारण संस्कारों में डाल कर उनका पालन करती है । “मुझको अपने गुण-बुद्ध का कोई विचार नहीं है । मैं तो उनके (पतिदेव) के साथ रहने में सब तरह से प्रसन्न हूँ किन्तु इन छोटे-छोटे बच्चों की क्या क्या होनी इनको बिछा कौन पढ़ायेगा नीति कौन सिखायेगा इनकी जमर कैसे कटेगी ? ” ‘परीसागुन’ के इस मातृ-रूप की भाँति ही ‘प्रथिपिका पून’ की पार्वती भी सराहनीय है । मुबती देवहूति को सन्मार्ग नामिनी बनाने के लिए वह उसे निरन्तर सचेत करती रहती है “देवहूति ! उस भीरे को देखती हो जो पति इसकी है, ठीक वही कुशानी पुरुषों की है ।”

(२) अपूर्णपरिणोता-रूप

विधवाएँ, अगाम्यी हुई मुकटियाँ तथा पति वर अपूर्ण विवाह माने वाली कुलदाएँ इसी वर्ग के अन्तर्गत आती हैं । विधवा रामो का यमारायण से अनुचित

१-२ कनकमुमुम किशोरीनाथ गोस्वामी पृ ११

३ परीसागुन श्रीनिवासदास पृ ११२-१३

सम्बन्ध है^१ सत्रायी की लड़की माँ को घोला देकर सुलहेब के साथ भाग लड़ी होती है^२ और बिदेटर की प्रबिन्दास प्रमिनेत्रियाँ उपपति भी रखती है^३ राजन्ध बर्ग की परिलीठायों के विषय में भी ऐसे कथनों का प्रभाव नहीं है कि "वे भी शायद अपने शौहर को दिस से छुमाकर निजाम पर मेहरबान हो गई होंगी।"^४

परिसीमाएँ

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दी-साहित्य में नारी के प्रति चित्रप्रचलित विनाश प्रकृतिमूक दृष्टिकोण के प्रबल संस्कार हिन्दी-उपन्यास के संक्षेप में विद्यमान हैं और मर्से भीगने से पूब ही वह काम का शिकार हो गया है। नारी के प्रति एक सम्कुचित दृष्टिकोण के प्रभाव के कारण उस में नारी-चित्रण की निम्न परिसीमाएँ प्रमुखतः परिमणित होती हैं—

१ प्रेमचन्द-पूर्व हिन्दी-उपन्यास में नारी-भावना की पर्यन्त एकावी एक प्रम्यापक प्रमिष्मक्ति हुई है। नारी रमणी-भाव ही नहीं है जीवन-क्षेत्र में उसके अनेक ग्राहस्थ्य एवं प्रेरण-क्षय भी होते हैं। इन उपन्यासों के नारी चित्रण में सब से बड़ा दोष यही है कि इन में ऐसे एक भी सजीव नारी-भाव की प्रकटारणा नहीं हुई जो पुरुष के लिए आकर्षण-भाव न रह कर विद्वस्त प्रेरणा देने और तरस रागात्मक अनुभूति के तारों को स्नेह-परस देकर नारी पुरुष को कर्तव्य की ओर प्रेरित करके उसकी भद्रता एवं प्रबलता का विषय बन सके।

२ नारी-भावों का ठनक भी मनोवैज्ञानिक चित्रण इन उपन्यासों में नहीं हुआ है। विकास एवं मनोद्वन्द्व के प्रभाव में ये पात्र अनावृत्त अथवा अंशतः आवृत्त प्रस्तर-प्रतिमाएँ बन कर रह गए हैं। प्रायः स्वेता का स्वेता-क्षय तथा श्यामा का श्यामा-क्षय ही इन में उपलब्ध होता है। श्यामा के सुभाष और स्वेता के कल्प की कल्पना ही इनमें नहीं की गई है। भूख से नहीं की गई है तो वह अरणीयता की ही प्रमिष्मक्ति बन कर रह गई है। धारसे पाठन की महानुभूति उसे नहीं मिलती।

१ दम्पित्त कुसुम वार्तिकप्रकाश नवी

राधाचन्द्र प्रबन्धन महाप

२

४ कनककुसुम विद्योतीनाथ कोल्हानी १ १४१

नाटी-बीबन की समस्याओं में इन उपन्यास-लेखकों को धाकूट नहीं किया है। बहुपरतीत्य का हम में समर्जन एवं प्रचुर वर्तन हुआ है, किन्तु धरने-धाय में भरपूर नमस्वा होते हुए भी इसे समस्या का रूप नहीं मिला है। इसी प्रकार बिबाह प्रेम बीबन-यापन धारि की किन्हीं भी घासवत घबना साधारण नमस्वाओं का उत्पादन नहीं हुआ है। नुन-अर्म की धर्मिधरि तो बहुत दूर की बात है।

४ नाटी-बाओं की अपेक्षा पुरुष-बाओं को कहीं अधिक महत्व इन उपन्यासों में मिला है। यहाँ नाटी घबना का ही पर्याय मानी गई है। नैतिक एवं शिक्षा प्रर उपन्यासों के तो नाम ही नामक-अमान हैं, किन्तु अल्प बहुसंख्यक उपन्यासों के नाम नामिका पर अचलमिधर होते हुए भी पुरुष की समतुस्या नाटी वर आजास हम में नहीं मिलता।

अस्तुत हिन्दी के प्रेमचन्द-पूर्व उपन्यास-लेखकों के उपवेदन में नाटी के प्रति परस्पर-बिरोधी मनोव्यवस्थाओं में कुछ इस तरह वर किया हुआ है कि भूमिकाओं में बिबाह-बिगल को गहित कहने पर भी वे स्वयं अह में प्रायः दूब वए हैं। अस्ते रोमांस एवं धरनीक कालों के बिना वेबे में रह ही नहीं सकते। घास के कुटपास के उपन्यास बिगल प्रकार धरसस्य पाठकों की कृति कर रहे हैं इसी प्रकार इन उपन्यास-लेखकों में अल्पे धारस्य की इतने अस्ते अउतन पर आकर कड़ा कर दिया है कि घास के पाठक के सम्मुख इनका निजी व्यक्तित्व ही धरस्यत भूमित बन कर रह जाता है। कुपई का बिचारण कुपई से कनी नहीं होता। पाठक के सम्मुख कुपई का महत्व अल्प तक अघारते आना धीर अकनी अन्तिम मंजिल पर अउके बीच प्रवेस के लिए निवेद-अंकिताओं को बिपय देने से अउ पाठक का अस्वाण अँसे हो अकता है जो अकक के साय-आव ही भीतर पहुँच गया हो। तो भी बिगल प्रकार पय-अष्ट मनुष्य की आधरनी में भी कहीं व कहीं अकछाई के बिगल मिम ही आते हैं अकी प्रकार अह हम धरने-धाय को इतना-सा बिभासा के अते हैं कि यह बीबनी अताभी नहीं थी धीर यह भी कि हिन्दी-उपन्यास हिन्दी-अस की नवीनतम बिबा है तो इन उपन्यासों के नाटी बिगल में भी अचलमिधरों के अकित कहीं व कहीं मिम ही आते हैं। हम हटि कोण से इतना ही कहा जा सकता है कि प्रेमचन्द-पूर्व हिन्दी-उपन्यास में नाटी के प्रति बिभास-अवृत्तिमूक अंकारों की प्रचुरता होते हुए भी अकका अयना ऐतिहासिक महत्व है, क्योंकि यह नाटी-आबना ऐतिहासिक हटिकोण एवं आधुनिक नाटी-रूप की बिभासक रेखा है। 'उपाकाल' की भूमिका में अजनाअव अहाय निघते हैं 'अुमे भी अचने पाठकों से भूमिका के रूप में कह कहा है कि

बब बटनापूर्व अदानीमतामय चरित्रनायी रसीली कहानियाँ पढ़ते-पढ़ते घाप लोगों का भी उन्मत्त भावें तब घाप इसे हाथ में सीबिदेगा और देखियेगा कि घाप लोगों के मन को इससे कुछ विषयम मिश्रता है या नहीं। घाप लोग कुछ सुख-शान्ति इसमें अनुभव करते हैं या नहीं।" घापें बन कर वह निश्चय है "प्राकृतिक भावों और बटनाओं का इसमें यथेष्ट समावेश है जिसमें परोक्ष रूप से सामाजिक कुरीतियों पर साधारण आलोचना की गई है। हिन्दी-उपन्यास के अठारहवें वर्ष में ऐसे रूपन भी मिल जाते हैं 'देश की स्त्रियों के अमल-बबल कीर्तिपुत्र को कल्पित रूपना से स्वयं अनुचित करना बुद्धिमानी नहीं है।' स्पष्ट है कि उपन्यास-लेखकों के नारी के प्रति दृष्टिकोण में एक परिवर्तन पतपना आह रहा था। अयोध्यासिंह अयोध्याव के दोनों उपन्यासों में अगमेश विवाह एवं यौन सम्बन्धी नारी-समस्याओं के अग्रस्फुटित संकेत भी मिलते हैं। नारी-भावना के क्षेत्र में इसे एक उपलम्बि कहा जा सकता है और निश्चय ही यह साधारण उपलम्बि नहीं है।

किन्तु सत्य तो यह है कि प्रेमचन्द का अन्तरण अमी उपन्यास-साहित्य में होना था और नारी के प्रति स्वयं सम्बुद्धि दृष्टिकोण एवं पुमान्तरकारी नारी पात्रों की सृष्टि अमी अती अविष्य के पन में थी। १

प्रेमचन्द के नारी पात्रों की सामाजिक पृष्ठभूमि

साहित्य समाज से समय रख कर भी नहीं सकता परिस्थितियों से समय रख कर पतन नहीं सकता और युग-बर्ष से बहुत दूर आकाश में उड़ानें भर कर वह जानुसृष्टिमय एवं प्राण नहीं हो सकता। नारी सही समाज का दर्बीय है अतः अनिर्धार्यत उत्-साहित्य में बलिष्ठ नारी को समाजगत नारी की यथार्थवस्था में बहुत दूर रख नहीं माना जा सकता। साहित्य की नारी-भावना से प्रभावित होने के लिए तत्कालीन नारी के सामाजिक रूप का सम्यक ज्ञान विशेष सहायक होता है और फिर बीसवीं शताब्दी तो है ही साहित्य में स्वल्प समाज के नैकट्य एवं समाज में नारी के विमुक्त रूप की पहचान का भ्रम्याव जिसके धारण में प्रेमचन्द का प्रयुक्त योगदान समाज की बेदना का ही प्रतिकल्प है। स्वयं प्रेमचन्द ने साहित्य की सर्वोत्कृष्ट परिभाषा 'जीवन की आलोचना' मानी है। ऊपर उनके साहित्य में प्रतिपादित नारी-पात्रों को रूप विवेकताओं को समझने के लिए तत्कालीन नारी की सामाजिक स्थिति का संक्षिप्त पर्यवसोचन भी आवश्यक हो जाता है।

सूत्रगत प्रेमचन्द-भूगीन नारी को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है— ग्रामीण नारी और नागरिक नारी। यह वर्गीकरण इसलिए आवश्यक हो गया है कि तत्कालीन सुधार-आन्दोलन एक युग की बदलती हुई करवटों के परिणामस्वरूप की नारी केतना उद्बुद्ध हो रही थी उसका ज्ञेय प्रायः नवरोक्त ही सीमित था। एक में बहुत-कुछ प्राचीन या तो दूसरे में बहुत-कुछ अर्ध-प्राचीन और इस हृदि स दोनों वर्गों की विशेषताएँ अस्कारो परिस्थितियों एवं प्रेरणा-स्रोतों के अनुसार स्पष्ट-स्पष्ट थी।

ग्रामीण नारी-रूप

हा धनकुनारी में 'आधुनिक हिन्दी-काव्य में नारी भावना' में सन् १९ से १९३० ई तक के काल की हिन्दी-काव्य में नारी-भावना की दृष्टि से सत्यन्त-युग (१९ १९२ ई) और परिवर्तन-युग (१९२ १९३० ई) इन दो दोषकों के अन्तर्गत विभाजित किया है किन्तु ग्रामीण नारी का यथा-

वत् एवं विशेष उल्लेख उनका भी विषय नहीं रहा है। कारण यह है कि इन चारों ब्रह्मात्मियों में नारी के किस रूप का वर्णन कविता में हुआ है उसमें नारी के सामूहिक एवं बाँझनीय रूप का गान उपस्थित किया गया है और वह रूप प्रायः शून्य किम्वत् एवं विकासोन्मुख नापरिक नारी का ही आदर्श-प्रवर्तक रूप है। प्रेमचन्द के पास हिन्दी की ही नहीं बल्कि उर्दू के 'शरधार' और 'मिर्जा रसबा' आदि लेखकों की परम्परा भी थी। इसके प्रतिरिक्त वह स्वयं भी ग्राम जीवन के पूर्ण अनुभवों से। इस दृष्टि से वह पहले कसाकार से जिनकी वृद्धि सम्प्रदाय के आचरणों को भीखी हुई ग्रामीण नारी की निरक्षण सहमी हुई, बोली-भाली मुक्ता तक पहुँची थी और यथायं तो यह है कि प्रेमचन्द की नारी जागना का आदर्श भी यही की मनोवृत्तियों की निर्ममता से प्रहीत है। इसके साथ यदि यह भी कहा जाय कि ग्रामीण नारी ही भारतीय संस्कृति के अनुकूल नारी रही है, तो वास्तविक नहीं होगी। गुहा-द्वार पर अहेरी की प्रतीक्षा में बैठी हुई विश्वासरूपिणी प्रस्तरकामीय नारी की प्रविष्टि परम्परा मात्र भी भारत के ग्राम्य आतावरण में बहुत-कुछ सुरक्षित रूप में उपलब्ध हो सकती है।

प्रेमचन्द-युग ग्राम-व्यवस्था के ह्रास का युग था। सामन्ती सम्प्रदाय की समाप्ति के उपरान्त धर्मों की धार्मिक एकता भी अस्तित्व खो रही थी स्वतन्त्र-समुष्ट ग्राम-इकाई को विवेकाभित बनाया जा रहा था। उद्योग-वर्गों पर विवेकी हथौड़ों के बल प्रहार हो रहे थे और बंधावत औद्योगिक भी परती से ही आजीविका ढूँढने के प्रयास कर रहे थे। भूमि की बसा ऐसी थी कि उसपर अक्षिणत स्वत्व की स्थापना तो हो गई थी किन्तु उसके राष्ट्रीयकरण के कारण मजदूरों की बसुली के हेतु प्रायतः जमींदारी एवं मासमुखायी के दो पात्रों में बेचारा शीतल किसान पिछा जा रहा था और जब जीवन-संबन्ध उसके लिए घसड़ा हो जाता तो उबरपुति के लिए उसे भूमि रहन रहनी घसबा से करनी पड़ती थी-बढ़ी तक कि प्रायः बेबख्त होकर उसे कर्महीन कारीगरों की भाँति ही निर्बल किसान बनकर घाबे घसबा ठिहाई पर किसी ग्राम्य की भूमि जोड़नी पड़ी घसबा मजदूर बन कर तबलों की बूल छाननी पड़ती या फिर प्रायः श्रम में भर्ती होना पड़ता था। इस प्रकार किसानों में भी दो वर्ग होते जा रहे थे—मानिक-किसान और मजदूर-किसान। मानिक किसानों की ठेकाई का आधार भी अधिकारवत् भूमि की बहुमता होने के कारण उच्च मध्य और निम्न के स्तर बढ़ी नी पिट मान थे। इसके प्रतिरिक्त धर्मोधार तो थे ही धर्मरेखी सरकार के कठमुल्ले उनके प्रतिरिक्त साहूकार, दूकानदार तथा निम्न श्रेणी के सेवकवर्गीय मजदूरों के स्तर भी नीचों में विद्यमान थे। इस तरह एक प्रकार की बात-वृत्ति आरम्भ

घ सेकर अन्त तक प्रामीण बातावरण को जकड़े हुए थी। कृपक घसलुष्ट के धीरे धीरे-धीरे एक परोक्ष जाहृति की ओर अग्रसर होना चाह कर भी हो नहीं पा रहे थे।

ब्रमचन्दकालीन प्रामीण समाज की उपर्युक्त प्रबन्धा के साधार पर प्रामीण नारी को स्तर की दृष्टि से प्रमुदत दो वर्गों में देखा जा सकता है—

१—बाह्य संघप विरहित स्त्रिर नारी-रूप

२—परिणत संघपरत नारी-रूप।

बाह्य संघप-विरहित स्त्रिर नारी-समाज के अन्तर्गत जमीदार, साहूकार, उच्च तथा मध्यवर्गीय मालिक-किसान नबोदित धर्म्यापक-धर्म एवं कतिपय चलती वाले ब्रूकानदारों के परिवारों की नारी स्थिति थी। यों तो इन परिवारों में धार्मिक अक्षमानता विद्यमान थी किन्तु नारी की स्थिति की दृष्टि से विद्वेष अन्तर नहीं था। धार्मिकता के लिए इस वर्ग की नारी को चिन्ता नहीं थी समाज में पति प्रतिष्ठा के अनुरूप ही उचका भी सम्मान था और उचका निजी क्षेत्र पर की आरबीचारी तक ही वहाँ भी विधपत पुण्य-आधना एवं निजी धानसपने को अक्षम्य देने तक ही सीमित था। इसलिये बाह्य संघप को उसके जीवन में कोई स्थान नहीं था और यदि कभी परिवार-अरुण्यताओं तथा पति की अक्षम्य कामुकता के कारण धान्तरिक संघप उठता भी तो समाज में निजी स्थान तथा अन्त बातावरण की परिफल्यता उसे स्फुरित नहीं होने देती थी। विवाह के लिए अर्ध-अक्षम्यता तथा अंधाभिमान अक्षरिबता से अधिक महत्त्व रखत थे अतः उसे धाम्य भरोसे ही संतोप करना पड़ता था। प्रायः सोलहवें वष से पूर्व ही नुबती का परिखनन आक्षयक समझ पाता था और दुर्भाग्यवध विवधा प्रायः बाल-विधवा होने पर उसके पुनर्विवाह की क्षमता को भी नुब के लिए कक्षक-आमिमा समझ पाता था और यातनाओं को तो उत बेचाठी क हाथ भी कर्मफल मोष के रूप में ही सुहीत क्रिया पाता था। धार्मिक नियमन के धामा में उससे विकृतियों की अक्षम्भावना नहीं थी। बहुपत्नीत्व के कारण इस वर्ग की नारी को कभी कभी ईर्ष्या एवं पुण्य की अक्षमता में अक्षम भी पड़ता था। धार्मिक कृदियों एवं अक्षम्यविधवाओं पर उचका पूर्ण विरवास हुआ करता था और इनी विवधासामुक्षमता के कारण ही बहु उर्वंवा पति का ही अनुगमन करती थी। देव-अक्षि से अधिक अक्षम्य अक्षम्य सम्मान अक्षि की और उसे अक्षम्य होना पड़ता था और इसमें कोई अक्षम्य नहीं कि देव अक्षम्यी स्वतन्त्रता-अक्षम्य प्रायः इसी वर्ग द्वारा अक्षम्य समझी गई थी। अक्षम्यों में सुधार-अक्षम्यताओं के प्रभावानुरूप बहु नारी की अक्षम्य की ओर अक्षम्य अक्षम्य

से अपसर की वा रूही धी धीर बह भी तब जब शिक्षा के साधन घर में ही पुटा दिए जाते थे। स्वयं तो वह इस प्रकार प्रायः पत्र-स्यबहार तक की ही शिक्षा प्राप्त कर पाती किन्तु अपनी सन्तान की शिक्षा को वह आवश्यक समझने लगी थी। इस प्रकार वह नारी-रूप यदि भौतिक उपलब्धियों में प्राकृत या तो दूसरी धीर अपनी ही अपर्याप्तियों के प्रतिबिम्ब देखकर नैतिक एवं राष्ट्रीय विद्यास की धीर शिक्षा का ही दृष्टि से देख भी रूहा था। प्रेमचन्द ने इस प्रकार के स्त्रिय तथा धात्म-विरोधी नारी-रूप को बहुत कम रचनाओं में प्रापाम्य दिया है। जहाँ दिया भी है वहाँ भी इस दूसरे पक्ष पर ही बल दिया है धीर उसके 'मायबी' 'ममोरमा' तथा 'विद्यावती' के परिमार्जित उपयोधी एवं मानव-ब्राह्मण रूप को ही पहचान किया है। इन दृष्टि से उन्हें समय से बोझा धाये भी निकल कर सोचना पड़ा है यह धीर बात है उन लोगो के लिए, जो प्रेमचन्द को स्रष्टा मानते हुए भी यथार्थ जीवन द्रष्टा नहीं मानते।

परिणत संपर्कत नारी-रूप का विषय प्रेमचन्द की कृतियों में सर्वाधिक सद्भावपूर्णपूर्वक हुआ है। इस नारी-समाज के अन्तर्गत शरीर रूपक शरीर माणिक्य-विमान साइकलीम बुकानवार एवं टेबल-बर्ग (धस्सूरय) सम्बन्धी उच्च स्त्री-रूप की स्थिति की जहाँ नारी केतों में शारीरिक श्रम करती थी घर में बकरी बसाती थी बुकान पर बैठने में भी हर्ष नहीं समझती थी तथा बनी परिवार की सेवा भी विविध प्रकार से करती थी। इस नारी का संपर्क बहुत कुछ बाह्य वा धीर इसकी निजी समस्याएँ पुरुष-समाज से प्रायः एक-रूप होने तथा प्रत्येक दृष्टि से स्वयं पुरुष की सम्पृक्ति होने के कारण उसकी निजी धात्मिक समस्याओं के उठने का अवकाश ही नहीं था। बाह्य अज्ञान ही रूपक-व्यपत्ती को हम नहीं सेने देती थी। रोटी के लाने पड़े हुए थे धीर तिस पर राज्य-कर्मचारियों की धाय-बिन की बेपारें उसके जीवन को निराशाचक्ष्म किये दे रही थी। पुरुष अकेला जब धात्रीविका के जगजन में समर्थ नहीं होता तब नारी को शारीरिक श्रम के प्रत्येक क्षेत्र में उसका हाथ बँटाना पड़ता था। रोटी बनाकर हल के पीछे ले जाने मजाम पर बैठन सूटी हुई फलम को बीजने बकरी पीसने पशुओं की देख-रेख करने अपने पापने धीर कूड़ा-जर्कट उठाने तथा इस प्रकार पहर रात तक व्यस्त रहने के अनरन्त बन्धे पैदा करने के अस्तित्व मनोरञ्जन ने इस नारी के अन्तर्बिह्य पर बेचना की पहन छाया डाल रखी थी धीर वह मनजाने में ही भाग्य को स्वीकार करती हुई यथा कदा कीर्तन मजम करती हुई भगवान् के मन्दिरो में धन्याय को देखती हुई भी जीवन से बूझने का प्रयत्न कर रही थी। वह पूर्ण-रूपेण पतिपरायण थी

पुनर्वसुला भी क्रिष्णु धार्मिक दृष्टि से सम्पन्न धनवा ऊँचे वर्ग के घोड़ों की दृष्टि उस पर भी गड़ जाती थी और इस प्रकार की धनेक फिससनों में से होकर उस जीवन-यापन करना पड़ रहा था। तिस पर भी पति की धनेक दृष्टियों एवं जीवन की सभी विभीषिकाओं से उसने धनमाने में ही जन्मजात समझीता कर रक्ता था। ऐसे धनेक उदाहरण मिलते हैं जबकि विधवा धामी को बेधर को पति मागना पड़ता था धाछूती बहन को प्रीड़ कुचासी से बाँध दिया जाता था धोर कई पुत्रों वाली माता को पुत्रहीना के संकटों का सामना करना पड़ता था। पुरण की दृष्टानुसार नारी बिक नी धामा करती थी। बड़ बहू मही थी क्रिष्णु परिस्थितियों के विभिन्न पाषों में धन कर बकड़ी हुई थी। धिजा प्राप्त करने की सामर्थ्य बहू भी रक्ता थी क्रिष्णु पेट की समस्वा धमी हस मही हुई थी। धमठवू तियाँ उसकी भी बागूत रहना चाहती थी क्रिष्णु रहन सहन की धार्मिक दुत्थियों में उसे धरपण्ट सीमित कर रक्ता था। धीर इस प्रकार उसन धपने धारे में जैसे धोचना ही धोच दिया था। धपनी 'पहमी रचना' में ही प्रेमचन्द नारी के इस रूप की धोर धाङ्कट होकर धपने माधा तक का उपहास कर चुके थे। यही मही धपनी सम्मूण रचनाओं में उन्होंने नारी के इस नागरिक चेतना से विभिन्न तर्कहीन धासबाधान् एवं स्वतःपुर्ण रूप का सर्वाधिक विधाय करते हुए गान्ता 'सुभागी' 'विधासी' 'समीनी' तथा 'मुनिया' से धहानुभूति बर्तते हुए 'मुन्नी' एवं 'धनिया' के धमर रूप की प्रतिष्ठा की है।

नागरिक नारी रूप

प्रेमचन्द-रूप भारत में नमरी एवं नागरिक गम्भता के विकास का पुन था। धंगरेज धाकक इस धोर विधेय ध्यान से रहे ध। मार्क्स के इस रूपन का कि "दम्नीक को भारतधर्य में दुहरे उद्देश्य को पूरा करना है एक महाधरमक दूधरा निर्माणधरमक"—यही धने धा कि धाम-ध्यबन्धा धादि क पुचतन सामाजिक दधि क संहारोपधरमक धंगरेजों को भारत में अधिधी समाज के धीतिक धाधार की स्थापना' करनी थी। यह बहू पुन था जब ब्रैजानिक धर्मों धादि के धागमन-स्वरूप भारत में पृथीवाधी ध्यबन्धा प्रेमचन्द क धर्मों में 'महाधनी सम्भता' का पुर्खागमन हो रहा था। पृथीवाध के विद्वध साम्यबाध भी बड़ पकड़ रहा था धीर इन धोरों के बीच मध्यधर्य का रक्कन स्थिर हो रहा था। दूनरी धोर सत्य एवं धहिमा क धाध्यातिक मानधवाधी दृष्टिकोण

को लिये हुए श्रीमतीबाबू 'ट्रस्टीसिप' के सिद्धान्त पर बल दे रहा था। इस प्रकार से स्तर की दृष्टि से नागरिक क्षेत्र में पूर्वीपंथी बाबर बकीस धारि देशेतर लोग मध्यवर्गीय सौभाग्य तथा मुकामदार, सरकारी कर्मचारी तथा मजदूर वर्ग धारि के प्रमुख स्तर स्थिर हो चुके थे।

यों तो पूर्वीपंथी-परिवार, मध्यवर्गीय परिवार एवं मजदूर-परिवार में नारी की सामाजिक स्थिति पृथक्-पृथक् की थीर उसे उसी प्रकार से देखा जा सकता है वैसे कि हम धार्मिक नारी-रूप को देख चुके हैं धर्मात् मजदूर-वर्ग तथा मध्य वर्ग के उत्तरार्ध के स्तर को परित्र नारी-रूप के अन्तर्गत तथा श्रेय को बाह्य अर्ध-विरहित नारी-रूप के अन्तर्गत रख सकते हैं। किन्तु यहाँ नागरिक नारी रूप से धर्मिप्रय प्रमुखतः उस नारी-रूप से है जो प्रायः नागरिक क्षेत्र में ही एक नूतन चेतना को पकड़ रहा था और जिसके कारण समाज में उसकी स्वतन्त्र उत्कृष्ट तथा अनिर्धार्य सत्ता की स्थापना हो रही थी।

प्रेमचन्द-काल में सामाजिक सुधार-सम्बन्धी सभी आन्दोलन स्त्री-सुधार पर विशेष बल दे रहे थे। पत्नी प्रथा-निवारण बाल-विवाह को हतोत्साहित करने विधवा-विवाह को उन्नाहित करने तथा नारी को वैदिक आध्यात्मिकता के धारणों की ओर उन्मुख करने में धर्मसमाज विशेष रूप से प्रयत्नशील था। बीस वर्ष के मजदूरक प्रमचन्द ने भी 'विधवा-विवाह संस्था' तथा 'प्रसिद्ध भारतीय स्त्री-सभा' के विषय में मुना होगा और सन् १८९९ में शैले केचन कर्षे द्वारा पूना में स्थापित 'हिन्दू विधवा गृह' में उनकी दृष्टि से प्रोत्साहन गहीं रहा होगा। हिन्दू-परम्पराओं के विरुद्ध कर्षेजी ने एक विधवा ब्राह्मणी से विवाह किया था। स्वयं प्रेमचन्द ने भी विधवा शिवरानीदेवी का परिणयन किया था और इस प्रकार स्त्री-सुधार-सम्बन्धी आन्दोलन में सक्रिय योगदान किया था।

बाल-विवाह वैधवायी तथा सती धारि नुप्रपाथों को हतोत्साहित करने में सुधारक ही नहीं अपितु राज्य-सत्ता भी ध्यान दे रही थी। १९३ का 'गारवा चाइलड मरिज बिल' इसी का परिणाम था जिसके फलस्वरूप किसी भी लड़की का १४ वर्ष की आयु से पूर्व का विवाह धर्मेण बोधित किया गया था। १९२५ में डा. मधुमधमी रेड्डी धारि क मगीरज प्रयत्न क फलस्वरूप पीनस कोड के से नियम को नाबालिग व्यवसाय को धरता निरिधत करते हैं वैधवासियों पर भी लागू किये गए^१। परिणामस्वरूप इन नुप्रथा का अन्त हो गया। इस

^१ आधुनिक इतिहास-ग्रन्थ में नारी-धारणा टा सैतकुमारी पृ १०-१६

प्रश्न में हमसे पूछ की राजा राममोहन राय की सहायता से सार्ड ब्रिजियम बेटिक द्वारा की गई सती प्रथा उन्मुक्त एवं राजस्वान में वारिष्क-व्यवस्था का निवारण करने वाली सुधार-व्यवस्था भी उन्मुक्तनीय है।

इस बुद्ध में स्त्री-विद्वान् की घोर भी विरोध ध्यात दिया जा रहा था। स्वामी विवेकानन्द की सबसे बड़ी सुधार-धारणा यही थी कि अधिष्ठित समाज में कोई भी समाज-सुधार सम्भव नहीं हो सकता। नहीं है वे सोच या सुधार चाहते हैं? यह बड़ा करते थे 'पहले उन्हें तैयार करो समाज-सुधार के लिए प्रथम कर्तव्य है लोगों को विधित करना और जब तक यह कार्य सम्पन्न नहीं होता तब तक प्रतीक्षा करनी ही पड़ेगी।' ^१ ब्रह्म-समाज भी जैसे तो इस तथ्य को समझ रहा था किन्तु स्वामी विवेकानन्द की यह विरोधता थी कि वह धातुल संस्कार एवं सुधार में विश्वास रखने से घोर विधवा-विवाह धारिष्क की दृष्टि में एकानि सुधार थे। 'यहाँ (भारत) की भूमि विधवाओं के धानुषों से कभी-कभी तर होती है तो पारजात्य देशों का बाहुपञ्चल धविवाहित स्त्रियों की धातुं स भरा रहता है। घोर फिर 'विधवा-विवाह की समस्या से स प्रतिष्ठत भारतीय नारियों का कोई सम्बन्ध नहीं है 'इस प्रकार के सब धानुष्कानों का सम्बन्ध भारत के केवल उच्च वर्गों से ही रहा है जो जन-साधारण के मन पर स्वयं विधित हुए हैं। इन लोगों ने अपने-अपने पतों को माफ करके एवं धर्मदोषों के सम्मुख अपने को मुन्दर दिखाने में कोई कसर नहीं रखी। वर यह ता संस्कार नहीं कहा जा सकता संस्कार करने में हमें नीच के भीतर उनकी बड़ तक पहुँचना होता है। इसी को मैं धातुल संस्कार कहता हूँ। ^२ इन प्रकार स्वामीजी भारतीय धारियों में पनी हुई भारतीय विधित नारी के धारिष्क रूप की सराहना करते थे घोर पारजात्य देश में उनका ऐसा जाना समाज के लिए उत्तरदायक समझते थे। संघेष्ठ समाज सुधारकों में स्त्री-विद्वान् की धलन्ध धारिष्कता धनुष्य की विभके परिष्ठान स्वयं पूना में 'महिना विद्यालय' प्रयाय में 'कन्या-पाठशाला' तथा मद्रास कनकता बनारस घोर दिल्ली धारिष्क प्रतिष्ठ नगरों में विधवाओं के विद्या-केन्द्रों तथा वारिष्कधार्मिकों के लिए विद्यापीठों की स्थापना इत नति से होने लगी। इनमें बहून्-से विद्या-केन्द्र ऐसे भी थे जिनमें परीक्षा की दृष्टि में ही नहीं धनिष्क नारी का सुदृष्टिणी बनाने की धिशा भी दी जाती थी।

१ मैरी सगर-जीनि, स्वामी विवेकानन्द पृ ३१

२ मैरी सगर-जीनि स्वामी विवेकानन्द पृ ३२

प्रमथम् के गारी-मात्रों की सामाजिक पृष्ठभूमि

समाज-सुधार आन्दोलन गारी के समाज-वैदिक-रूप को भी प्रष्टि कर रहे थे। पहले-पहल हमें विद्वानों की ही सत्या प्रष्टि होती थी किन्तु बाद में इसका क्षेत्र घोर भी विस्तृत होता जा रहा था। १८८६ में स्थापित 'पूना सेवा-सदन' के महात्मक गोपालकृष्ण देवदार ने लिखा था "ब्रह्म में संयुक्त मान्य में अकाल-उद्योग कार्य म बना हुआ था मेरी धारणा बनने लगी कि राष्ट्रीय उन्नति के विविध क्षेत्रों में भारत को पुराणों के ही समान प्रमथ स्त्री कार्यकर्ताओं की भी आवश्यकता है। पूना वापस आने पर मैंने कई बार मित्रों-स्त्रियों तथा पुराणों—की योष्टियों की धीर इसका फल हुआ प्राधा दर्जन स्त्री बाधों को सामाजिक कार्य-कर्मियों के रूप में परिचित करने का प्रयत्न। १ महात्मा गांधी ने भी गारी के इसी रूप का अपने प्राधर्मों में संचार किया था। हिन्दू कुलीना धीर पूजा दोनों उनके लिए समान थी धीर उनकी प्रबल धारणा थी कि परिवार में गारी के मान-रूप का प्राधान्य होने पर समाज भी उसके कुछ अपेक्षा रखता है। वह प्रयत्ना नहीं है धीर कोरी भावुकता का परिणाम भी नहीं। मैत्रिणीधरण गुप्त को लिखे गए 'वाक्य'-विषयक विचार उनकी इसी धारणा को परिपुष्टि करते हैं।

प्रमथम्-गुण में नापरिक गारी का एक प्रमथ प्रबल रूप भी विकसित हो रहा था। वह था पण्डितवादी रूप। गारी का यह रूप सुधारयुक्त गारी का ही विकसित रूप था जिसमें उसकी राय एवं उसाह की कृतियों को प्ररणा हो गई थी धीर वह पुरुष के ही समान विदेशी गारताओं को सहृदी हुई स्वतन्त्रता संघाम में सहयोग है रखी थी। यह वह युग था जिसमें महाराणी विक्टोरिया की मृत्यु के उपरान्त महात्मा गांधी अफीका के प्रथम को लकर राजनैतिक क्षेत्र में महिला के धम्भ सहित उतर पड़े थे। संय-संय धीर उसके परिणाम स्वरूप 'मिथो माले रिजार्मस' हो चुके थे हिन्दू-मुस्लिम एकता में बैममत्स्य का विष्य बोला जा रहा था ताब हाकिम पर बम पड़ना था पुका था बम्पारज में नील की मेठी करने वाले कृषकों पर क्रिये गए प्राधकार महात्मा गांधी को पाबाध दे रहे थे १८९८ के महानुष्ठ की समाप्ति पर रीमट देवट मागू हो गया था सत्याग्रह बोर पर था बनियौबाला बाय का भीषण हत्याकाण्ड मृत्युता को पार कर चुका था बांसस बोगा पकड़ रही थी होमकल की मीग की बा रही थी योरप में महानुष्ठ हो रहा था पहला विन्-बुड हो चुका था

१ आधुनिक हिन्दी-साहित्य में गारी-भक्तता का सौन्दर्यमयी पृ ३
(१ न दखिये) ४ माघ १९१९ से १९२०)

धीरे द्वितीय की तैयारी हो रही थी। बंबई-यात्रा हो चुकी थी। हिन्दू-मुस्लिम एके हो रहे थे। इंग्लैण्ड में राउण्ड-टेबल कान्फ्रेंस हो चुकी थी। भारत में गुप्त रूपेण हिंसात्मक काण्ड हो रहे थे। गांधी-बहिन समझौते के उपरान्त महात्मा गांधी इम्फैल से सीटने पर घतघन रह चुके थे। धीरे १९३६ में कांग्रेस मन्त्रिमण्डल की स्थापना हो रही थी। देश की इस हमलपुर्ण अवस्था में नारी अविचलित न रह सकी। धीरे अनायास ही उसने घर की चारदीवारी को पार कर राष्ट्रीय धाम्नेतनों में भाग लेना आरम्भ कर दिया। यह कांग्रेस की घरेलू बगने लगी। चन्ने एकत्रित करने लगी। गांधी-प्राथम्य में चन्ने की घोर लौटने लगी। अत्याग्रह में भाग लेने लगी। बिदेसी माल बेचने वाली तथा अरब की दुकानों के आगे पिकेटिंग करने लगी। धीरे कहीं-कहीं अन्धकारियों के समक्ष में भी खिचने लगी। खेल जाना ही नहीं देना के लिए प्रत्येक त्याग करने पर यह उत्तर हो रही थी। यहाँ तक कि प्रायः राज्य-सत्ता के अन्तर्गत काम करने वाले पति का सुभारग पर जाने की अघमर्षता में उसके प्रति उपेक्षा तक के दृष्टिकोण को धनना रही थी। धीरे पत्नी से अधिक माँ तथा बहिन का कल्याण निभा रही थी। इस सब के परिणामस्वरूप उसकी राजनैतिक अविचार-सम्बन्धी माँ में भी स्वाभाविक ही थी। अत्यन्त ही सरसारेरी शौचरानी। हँसा मेहता रमा बाई रामाई अरुणा आसफ़ाली अरोबिनी नाबडू भीमती ऐनी बीसेट तथा बिजयामात्री पञ्चित आदि के नाम इस अवधि में उल्लेखनीय हैं।

नारी के इस नवीन रूप की निर्मिति में भारतीय साहित्य के योगदान को भी विस्मृत नहीं किया जा सकता। यह प्रभाव परीक्ष्य था धीरे साब ही अविचार-स्वाधी थी। भारत भारतीय के मीठ साधारण जनता में जाये जा रहे थे। अरब तथा रबीन्द्र के अनुवाद बढ़ाबढ़ हो रहे थे। धीरे नारी के गम्भीर रूप की प्रतिष्ठित हो रही थी। विस्मृत तथा 'इकबाल' उर्दू में 'अनुकुटी बीरेस मिहम्' तथा 'भी भी' आदि तत्काल में 'अस्मूद' धीरे 'अन्नापोल' आदि मलयनाम में तथा आई बीरविह आदि पंजाबी में भारत का नीरव-मान कर रहे थे। साय ही हिन्दी के क्षेत्र में अज्ञा 'यसोवत' तथा 'गुलाब कुमा' आदि अरिषों की रचना नारी के दुर्लभ्य एक विस्तार रूप की स्थापना कर रही थी। ऐतिहासिकीन मांसलता अद्यावधि अज्ञाता में परिणत हो रही थी। अन्तःपुर-समाज बीरे-बीरे नारी के अरक रूप को समझ रहा था। देश के प्रति उसके कर्तव्य को अर्ह्य ग्रहण कर रहा था। धीरे उसके प्रति अन्तःपुर पर अन्तःपुरों की अविचार करता जा रहा था।

पश्चिमी अविचारों की नींव एवं साहित्य के प्रभाव-स्वरूप इस युग में नारी

प्रेमचन्द के नारी-गात्रों की सामाजिक पृष्ठभूमि

का एक चौदरेजी-गसन्द रूप की नागरिक क्षेत्रों में समित हो रहा था। इसमें बिदेसी ईसाई मत में ईमान लाने वाले भारतीय एवं स्वतन्त्रता-विरोधी ब्रिटिश नाटो-रूप भारत की प्रत्येक बस्तु को मापसन्द करता हुआ भारतीय समाज एवं संस्कृति से मनोनीत विरोध मान कर चलता था। इस वर्ग की नारी के लिए बहुमूल्य भोजन शक्ति के बरत तथा धर्मकृति के निरन्तर सापन ही बीजन था। शिक्षा को भी वह विभिन्न बाधनाओं की समूर्ति के रूप में ही बहण करती थी। संक्षेपतः प्रति सम्य होते हुए भी यह नारी संस्कृतिहीन की धीर उसके इसी रूप के विरुद्ध हमारे समाज-सुधारकों ने धाबाज उठायी थी। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रेमचन्द-कालीन भारतीय समाज में चौदरेजी सम्पदा के प्रसार, विभिन्न समाज-सुधारों स्वतन्त्रता-सम्बन्धी राष्ट्रीय धाम्दो ननों तथा साहित्य में नवीन शोकमांसिक इच्छिकोण के प्रसार के प्रभाव-स्वरूप नारी धाबना का सम्मुत्थान हो रहा था। नागरिक क्षेत्रों में यह परिवर्तन ग्रामीण समाज की धयेया धीप्र जोर पकड़ रहा था। नागरिक नारी धपनी विदाब-यात्रा पर चल रही थी धीर ग्रामीण नारी जिनायापूर्ण दृष्टि से उस निहार रही थी। एक तो यात्रा का पूर्ण पाषेय उसके पास नहीं था दूसरे वह मोली धीर धीभी-सावी थी धायर डर रही थी कि नवीनता कही धारस हीनता का वर्णय ही न रह पाय।

प्रेमचन्द की नारी-भावना

‘भाईबाग ! सिर्फ़ रुपया कमाना ही धादमी का उद्देश्य नहीं है। मनुष्यत्व को ऊपर उठाना और मनुष्य के मन में उँचे विचार पैदा करना भी उसका कर्तव्य है। धरम यह नहीं तो धादमी और पशु दोनों बराबर है। और जिसके हाथ में भगवान् ने कलम और कलम में साहीर दी है उसका कर्तव्य तो धीर भी बड़ जाता है।’^१ निस्सर्विह प्रेमचन्द के पास कलम भी जिसमें उससे भी अधिक साहीर बिबभान थी—धोर प सुदर्शन के प्रति उनके उच्च कथन की कारणा से ही यह स्वयच्छिद्र हो सकता है कि उनके साहित्य की नींव ही उनके पूर्ववर्ती मध्ययुगीन तथा उसके प्रभावस्वरूप आगत साहित्य के अति-कल्पनिक आभार तथा निपट मनोरंजनारमक उद्देश्य दोनों के विपरीत उपयोगिता एवं लोक-संयम की भावना से भरी गई है। (प्रेमचन्द की नारी-भावना की भी सर्व प्रमुख विशेषता यही है कि उसका चित्रण रमली के शुभारम्भ्य विनाशात्मक आकर्षण के हेतु नहीं अपितु ‘मनुष्यत्व को उँचा उठाने और मनुष्य के मन में उँचे विचार पैदा करने’ के हेतु हुआ है) समय की माँग साहित्यिक प्रगति कीलता समाजोपयोधी भावना तथा निम्नी व्यक्तित्व की संपर्कमयी गरिमा के प्ररखास्वरूप प्रेमचन्द की नारी भावना ने हिन्दी कथा-साहित्य में एक युगान्तर प्रस्तुत किया है। पत्नीत्व की धोर दृष्टिपाव करते हुए प्रेमचन्द सोचते हैं ‘अब तक साहित्य का काम केवल मनबहुलाव का सामान जुटाना केवल सोरिवाँ गा-मा कर गुनाना केवल घाँसू बहा कर पी हरका करना या तबतक उसके लिए कर्म की धादक्यकता न थी। वह एक बीबागा या जिसका यम दूधरे जाने के मयर हूँ साहित्य का केवल मनोरंजन और बिसाछिठा की सामग्री नहीं समझते। हमारी कमीटी पर बही साहित्य खरा उतरेया जिसमे उच्च चिन्तन हो स्वापीनता का भाव हो नीरव्यं का सार हो मूजन की धारणा हो पीवन की उँचाइयों का प्रकाश हो वो हममें कठि संवर्ष धीर बचैनी पैदा करे मुसाये नहीं क्योंकि धब धीर शयादा मोना मृत्यु का मछल

प्रेमचन्द की गारी-भावना

है।^१ इसी भावना के धनुस्वरूप उन्होंने अपने गारी-पत्रों का सूजन किया है और ऐसी भावस्य धनुस्त्रेणा को अपने अपने के लिए जिस आत्मस्वातन्त्र्य की जिस निस्वाम जीवन की और जिस प्राणवला की आवश्यकता होती है वह प्रेमचन्द के जीवन में घल-घटाघल विद्यमान थी।

एक स्वान पर प्रेमचन्द ने पुरुष को 'गारी की प्रम-शक्ति का विकास मात्र' माना है। इस भावना की धाष्प्यात्मिकता में न वह उलझे है और न कदाचित् मुलझे ही है किन्तु प्रमरुपा स्वाममयी गारी को उन्होंने पुरुष से कभी अधिक महती प्रबन्ध माना है। इस सम्बन्ध में पहली कड़ी उन्हीं बासना और सामसा की मानी है। उनका विचार है कि 'गारी चरित्र में प्रबन्ध के साथ मानुष्य का मात्र हृद होता जाता है। यहाँ तक कि एक समय ऐसा घाटा है जब गारी की दृष्टि में युवकमान पुत्र-मुस्य हो जाते हैं। उसके मन में विषय बासना का सेष भी नहीं रहता। किन्तु पुरुषों में वह प्रबन्ध कभी नहीं घाटी बनती कामेन्द्रियाँ शिष्याहीन मने ही हो जायें पर विषयबासना सम्भव और भी बमबती हो जाती है। पुरुष बासनाओं से कभी मुक्त नहीं हो पाता- यस्कि ज्यों-ज्यों प्रबन्ध बढती है त्यों-त्यों प्रीप्स्यन्तु के मन्दिम काल की मीति उसकी सहाय मने को भी प्रस्तुत हो जाता है।^२ 'प्रेमामम' का ज्ञानप्रकाश 'निर्मला' का लोलायम और 'मृत' कहानी के 'पंडितजी तथा 'गोबान' के मि खन्ना और मोला प्रेमचन्द के इस कथन की परिपुष्टि करते हैं। गारी पुरप से बड़ी है— प्रेमचन्द के धनुस्वर इसकी बूछरी कड़ीटी यह है कि गारी जितनी ही स्वाममयी है पुरप उतना ही संघायबसम्पी एवं स्वार्थसायक है। प्रमा ने दाननाब के लिए क्या नहीं किया "पर दाननाब को धन भी यही घंका बनी हुई थी कि प्रमा को धनुस्वरप से प्रम है। प्रमा जाहे दाननाब के लिए प्राण तक निकाल कर रखे पर इस घंका को उनके हृदय से नहीं निकाल सकते।^३ मनोरमा साक्षात् गहनघोतता है लेकिन धमेक-मलीक राजा साहब के मरिह के कारण ही एक दिन वह रूप की मक्की^४ बम जाती है। मोक्षिय देवी ने पातिबध की किस

१ साहित्य का बरो लव प्रेमचन्द— प्रमतिरीत लेखक संघ में भाषण मे
 २ कथाकल्प पृ २२

३ 'मृत' कहानी, मानसरोवर भाग ४ पृ १०३
 ४ मनिषा पृ ७२
 ५ कथाकल्प पृ ११४

सीमा का स्पर्श नहीं किया किन्तु पति द्वारा उसे निरन्तर यातनाएँ ही मसीब होती हैं। सुभागी ने अपने सूरदास को भास भाई की निमाह से देखा हो मैरों निरन्तर अविश्वास का ही घासरा सेठा है। अतथाहे मनीराम से बाँधी गई मना को तो उसके पाठिपठ सं भी गिराने के यत्न किये जाते हैं। निर्मला के मासूर पर बार-बार ठोकाराम के संदेह-जसक की छिड़कन होती है। कुपाली पति के कारण ही विद्या विपनात करती है। उठन क्यों बकील साहब से अधिक महानुमति पीपती है आसपा की अरिजसक्ति रमा को क्यों प्राकृत कर सेती है 'प्रम की वेदी' की उमा और जैनी क्यों योगराज से कहीं बन्धी मयती है राजदबरी के बिना 'संधाम' क्यों बमसान कीकता है ?—इसीलिए कि इन अरिजों का निर्माण नारी की पुरप से अधिक महत्ता के प्रतिपादन के हेतु हुआ है। 'निर्वासन' कहामी की मर्यादा 'भूत' की बिन्देस्वरी 'सोहाग के घब' की मुभदा 'लाक्षण की वेदी' 'स्त्री और पुरप' की घासा 'रानी सारम्बा' की सारम्बा विद्या की रानी' की हमीदा 'मर्यादा की वेदी' की प्रेमा तथा 'बेटों बानी विजवा' की विजवा माँ घादि घनेक नारी-प्राण पुरप से महान् इसलिए मगठे हैं कि "पुरप म बोड़ी पशुता भी होती है जिसे वह इरादा करने पर भी हटा नहीं सकता। वह पशुता उसे पुष्प बनाती है। विकास के क्रम में वह स्त्री से पीछे है। जिस दिन वह पूरा विकास को पहुँचिमा वह भी स्त्री हो जायेमा। आत्मस्य स्नेह कोमलता क्या इन्ही पाधारों पर कृष्टि बनी हुई है और ये स्त्रियों के गुण हैं।" १ फिर भी 'स्त्रियों को संसार प्रबन्धा कहता है—किन्तु बड़ी मूर्तता है। मनुष्य जिस वस्तु का प्राणों से प्रिय समझता है वह स्त्री की मुदड़ी में है।" २ इसीलिए जिस माकती को मेहता से ही प्रेरणा मिलती है उसी को एक दिन प्रमचन्द मेहता स भी बड़ी बना देते हैं। 'गोदान' के बीमेश्वर जीव में विद्या गया महता का तो सम्पूर्ण भापण ही नारी की अघेसाकृत महत्ता के खोज मार्ग निवोधित किया गया है। प्रेमचन्द के अनुसार पुरप से नारी इसलिए भी खेल् है कि वह अहिमा और धान्ति की प्रतिमूर्ति है किन्तु वासनिकता तथा अज्ञानिकता से अनुप्राणित होते हुए भी "पुरपों की रबी हुई इन मस्कनि में धान्ति बड़ी है सहयोग बड़ी है?" ३ मेहता के चर्यों में प्रेमचन्द ही बोलते हैं "ये प्राणियों क विकास में स्त्री के पद को पुरपों के पद से अल्ट समझता हूँ

१ कर्मभूमि पृ २१२

२ " " पृ २०३

३ 'दान' पृ १११

प्रेमचन्द की नारी-भावना

उसी तरह जैसे प्रेम त्याग और भद्रा को हिंसा संग्राम और क्रम से
 खेपे समझता है। १ 'स्त्री पुरुष से उठती ही खेपे है जितना प्रकाश सीधे
 से।' २ किन्तु यह स्वीकार करते हुए भी जब स्त्री-गुण्य के घसामजस्य की
 समस्या उठती है तो प्रेमचन्द को निष्कपत इस पारलगा को प्रमय देना ही
 पड़ता है कि नारी और पुरुष दोनों को मूल नामा बाहिए कि एक के बिना दूसरे
 का अस्तित्व सम्भव है पुरुष का सम्पर्क पाकर ही नारी ऊपर उठती है। नारी
 में सेवा और संगम और कृतस्य बही सेवा कर सकता है। अगर उसमें इन बातों
 का अभाव है तो नारी में भी अभाव खोया। ३ अथ प्रेमचन्द के अनुसार सर्व
 वास्तविक ही एक-दूसरे को अपने से महान् समझे। पुरुष-स्त्री का
 स्वामी है तो स्त्री-पुरुष की स्वामिनी है—ये वाक्य प्रेमचन्द-साहित्य में अनेक
 सराहनीय समझें। जीवन ऐसे ही प्रसर होता है। उसी प्रकार नैतिक एवं
 शौर्यकारिक सामंजस्य भी प्रेमचन्द के अनुसार उत्कृष्ट होता है क्योंकि वह उस
 सर्वोत्कृष्ट मानिक सामंजस्य तक से जाता है जो भारतीय संस्कृति की 'अर्थ
 नारीरत्न' की कल्पना में साकार हो चुका है और जिस 'विस्तार' कहानी 'रघुमूर्ति'
 की सोपाना एवं 'पारम-संगीत' कहानी में जिसके दोनों सोपान क्रमशः स्पष्ट
 होते गए हैं।

प्रेमचन्द की नारी-भावना का अत्यन्त आदर्श है 'एक ही स्वान पर त्याग
 सेवा और पवित्रता का केन्द्रित होना। त्याग बिना फल की प्राप्ति के हो मना
 सर्वत्र बिना संशयोप प्रकृत किये हो और पवित्रता सीद्ध की पत्नी एही हो
 जिसके लिए पछताने की आवश्यकता न पड़े।' ४ उनके अनुसार तो नारी का
 कर्तव्य है सेवा देना नहीं। उसके हृदय का सम्पूर्ण वासस्य सम्पूर्ण विरबास
 और भद्रा सम्पूर्ण कहलाए एवं सहनशीलता इसी उद्देश्य की ओर प्रवाहित होत
 है। 'वरदान की भावनी हो या 'प्रपापम की पापनी 'रघुमूर्ति' की सोपाना
 रघु हो या बाह्यकी 'कायाकल्प' की मनोरमा हो या 'सेवासदन' की सुमन
 'नवम की बालपा हो या 'कर्ममूर्ति' की सुनबा 'गोदान की गोविंदी पनिया
 हो या मासती—नारी में इन आदर्श की स्थापना के बिना प्रेमचन्द रूढ़ ही नहीं

१ गोदान पृ १६

२ " ४ १६२

३ " ४ १६६

४ का अन्तर्गत मदान को मिलान पृ ५३ में।

सकते' यहाँ तक कि इसके लिए उन्होंने कई बार मनोविज्ञान के धाँधल को छोड़ना और धारोचकों के धारोच-संबंधों को प्रकट करना भी स्वीकार किया है। उनके अनुसार प्रेम का स्वाभाविक 'सोफ़ी' बैसी पवित्रता में होता है। पवित्रता का व्यापक रूप समोगमा-बैसे त्याग में परमपता है और उसी त्याग का भावार्थक रूप 'गुहदा' की ऐसी सेवा-भावना में प्रेम हीमा को पहुँचता है। त्याग का सुन्दरतम रूप जीवन से निवृत्ति नहीं अपितु सेवा है। 'रमणी का हृदय सेवा के सूत्र परमाणुओं से बना होता है उसका प्रेम भी सेवा है उसका अधिकार भी सेवा है यहाँ तक कि उसका क्रोध भी सेवा है। यही कारण है कि प्रेमचन्द्र की विद्या 'एक पक्षीमा धर्मनिष्ठा सन्तीय और त्याग के भाव्यों का पालन करने वाली महिमा है। पद्यपि पति की स्वार्थभक्ति से उसे दूर है पर इस भाव को बहु धरती पति-सेवा में बाधक नहीं होने देती।'^१ प्रेमचन्द्र के सम्मुख ध्या 'एक बैसी क रूप में बड़ी मासूम होती है उसकी मुखभी एक विमलक्षण ज्योति से प्रदीप्त है त्याग और अनुराग की विराट मूर्ति है जिसके कोमल नेत्रों में शक्ति और प्रेम की किरणें प्रस्फुटित हो रही हैं।'^२ 'वायत्री' का जीवन की संभ्रमे पर 'त्याग और पक्ष्यात्ताप पर समर्पण' होता है। तुमको भी यही उपदेश मिलता है 'यद्यपि तुम अपने लिए जीती थी यद्यपि दूसरों के लिए जिबो।'^३ 'धामुपण-प्रिय 'आमपा' 'विष्ठासिनी-रूप में कमल प्रेम के धारण के दण्ड कर सकी परन्तु त्यागिनी बन कर बड़े उसका धरती रूप बैचती है।'^४ यही कारण है कि नटराज धारि नारी के शैथिक अधिकारों की समस्या प्रेमचन्द्र को व्यर्थ ही सपती है। 'सद्यार में सबसे बड़े अधिकार सेवा और त्याग से मिलते हैं और वे नारी काचित को मिले हुए हैं।'^५ मनुष्य का 'साध धम्यात्म और योग एक तरफ और नारिकों का त्याग एक तरफ होता है।'^६ परन्तु बिना का दूसरा पक्ष भी प्रेमचन्द्र की दृष्टि से धोचक नहीं है। उन्हें ज्ञात है कि 'त्यागी दो प्रकार के होते हैं। एक वे जो त्याग में धान्य मानते हैं, जिनकी धारमा को त्याग में धान्य और सन्तीय और पूर्वता का अनुभव होता है जिनका त्याग में उदारता और तीव्रता है। दूसरे, वे जो विमलमे त्यागी होते हैं जिनका त्याग धरती परिरिपिठियों से बिरोह-भाव है जो अपने स्वापप पर चमके का सादान संसार से सेते हैं जो शुद्ध जलते हैं इसलिए दूसरों

१. कथाकल्प १० १२३

२. मेमात्म ५ ३३

३. " ५ २२६

४. सेनामदन १ ५४

५. गहन ५ ३२

६. बोदान ५ १६२

७. बोदान ५ २६३

प्रेमबन्ध की गारी-भाबना

को भी बताते हैं।^१ धरणी गारी-भाबना में प्रेमबन्ध ने प्रथम प्रकार के त्याग को ही महत्त्व दिया है। धरणी पुरुष-विभ्रण में उन्होंने दूसरे त्याग का निबन्धन भी किया है। समरकांठ और विनय इनमें उदाहरण-स्वरूप लिये जा सकते हैं किन्तु वहाँ भी अन्ततः त्याग को उन्होंने प्रथम भेरी के त्याग की ओर धरणी किया है। इस धारणा भाबना में विश्वास के परिणामस्वरूप ही तो उन्होंने गारी के उस धारण रूप की कल्पना भी कर ली है जो न केवल समय से बहुत प्रागे है अपितु समाजानुपमम्ब भी है। वहाँ पहुँच कर वह कहते हैं 'इस योमिनो को किसी ने हँसते या बोसते नहीं देखा उसे न किसी बात का हर्ष या न किसी बात का बिषाद। जिस मन में कामनाएँ न हों वह क्यों हँसे और क्यों रोवे। उसका मुखमण्डल मानन्द की मूर्ति या' उस पर दृष्टि पड़ते ही बसको क नेत्र पवित्र मानन्द से परिपूर्ण हो जाते थे।'^२

स्त्री-पुरुष के प्रेम का धरणीय उगुणित रूप प्रेमबन्ध की रचनाओं में उपलब्ध होता है। शब्द ही की भाँति उनही गारी भाबना में संकेत का प्राधान्य नहीं है। गारी का रूप एवं संकेत भी उपेक्षणीय नहीं है। इस उच्च की ओर उनही कहानी 'गया विवाह' इंगित करती है। परन्तु प्रेमबन्ध यह मानते हैं कि "प्रेम का संकुर रूप में है पर उसको पस्तमित और पुष्पित करना सेवा ही का काम है।"^३ विवाह से पूर्व का प्रेम प्रायः व्यक्ति-सीमित होता है और उसमें सामाजिक भावना का स्वल्प विचार मातृकता के प्रारंभ के कारण कम हो किया जाता है। यही कारण है कि इस प्रेम का विभ्रण प्रेमबन्ध ने बहुत कम किया है और वहाँ किया भी है वहाँ उसे समाज-सापेक्ष ही रखा है। वस्तुतः प्रेमबन्ध प्रेम को धर्म से पृथक् नहीं मानते। धर्म लोकममल का बाहक होता है और प्रेम की समाज-निरपेक्षता भी धर्मयत्न का नाश करने में बहुधा समर्थ नहीं होती। यदि परिस्थितियों इस प्रेम में कोई सामाजिक भावना बाधे वह मान्य कदा ही क्यों न हो विरोध-स्वरूप या उपस्थित होती है तो प्रेमबन्ध उस प्रेम में एक ऐसे दर्ब की सृष्टि करते हैं जिससे गारी सब-कुछ सहन करती हुई, परम्पराओं का उत्तर त्याग से देती हुई लोकसेवा प्रवृत्ति बीजन की किसी धर्म विरुद्ध भावना की ओर उन्मुख हो जाती है। विरजत मनोरमा प्रेमा तथा प्रेमा का और किसी सीमा तक सोझी का प्रेम इसी प्रकार का है।

१ कर्मभूमि पृ १२१

२. वरदान पृ १७६

३ दो लक्ष्मी भावरोचर भाग ४ पृ १२२

इनका अपराध इतना ही है कि विवाह से पूर्व ही वे प्रेम कर बैठती हैं, और चूँकि वह प्रेम इनके अन्दर तक नहीं घा पाता प्रेमचन्द इन्हें आदर्श की ओर मोड़ देते हैं और सब उनकी गीरी को भी एक विस्मया मित खाता है जब विवाहोपरान्त वह समझती है कि सच्ची आर्य रमणी कुल-प्रतिष्ठा पर मर मिटने वाली होती है। उसके प्रेम का अर्थ ही है पतिप्रेम। और यदि वह ऐसा नहीं समझ पाती तो त्याग एवं सेवा के मार्ग पर चलती हुई भी कल्पान्त को प्राप्त होती है। और इन्होंने तो समाज की दृष्टि से अपराध किया है किन्तु मुमिना विद्यावती निर्मला इन्तु तथा गोविन्दी ने तो यह अोजस का कार्य नहीं किया फिर भी उनका जीवन क्यों विमुग्ध अर्थात् एवं यातनापूर्ण है? विश्व वैवाहिक जीवन के द्वारा उन्हें प्रतारणार्थ ही प्रतारणार्थ मिलती है उसका उत्तरवाचित्त किसके ऊपर है? प्रेमचन्द ने इस वैवाहिक समस्या पर विचार किया है और वह समझते हैं कि मूलतः सामाजिक अद्यतनता ही इस अद्यतन अर्थ एवं इन अद्यतन विवाहों का कारण है और ऐसे समाज की स्त्री ही यह अनुभव करती है कि 'स्त्री पुरुष की कितनी अधीन है मानो स्त्री को विवाह ने इसीलिए बनाया है कि वह पुरुषों का अधीन रहे।' १ वह बार बार सोचते हैं कि हिन्दू समाज की वैवाहिक प्रथा इतनी दूषित इतनी अस्वाभाविक इतनी अर्थकर हो गई है कि कुछ समझ में नहीं आता उसका सुधार क्याकर हो?" २ बहुत सार खपाने के उपरान्त 'उद्धार' कहानी में उन्होंने एक निष्कर्ष की ओर इशारा किया है। वह यह है कि 'वर तथा वधु के माता पिता यदि उनके पारस्परिक सम्बन्ध तथा सामंजस्य की ओर ध्यान न देकर उन्हें बुरे में डकेलते हैं तो वे 'लड़की के वधु हैं कसौड़ी हैं, बहिक हैं इत्यादि हैं' और यदि समाज भी उन्हें बण्ड नहीं देता तो न सही वधु भी यदि स्वाभाविक संकोच-मर्यादा को विवाह से पूर्व पार नहीं कर पाती तो न सही— किन्तु माँही पति तो अपनी स्थिति स्पष्ट कर सकता है और वह उठे करनी चाहिए। इसीलिए अय-योगी हजारीलाल विवाह के दिन लापता हो जाता है और अम्बा का उस 'श्रेयता' का कारण उद्धार हो जाता है। किन्तु उच्च मानवीय मूल्यों पर आधारित होने पर भी समाज की सामाजिक दशा में यह हम कोई हल नहीं है। समाज में अयरोनी ही नहीं अत-निष्ठा के योगी रूप-मोह

१ प्रतिपा ५ ४२

२ वैराज तथा मानसरोवर भाग ३ पृ ३५

३ उद्धार मानसरोवर भाग ३ पृ ३८

प्रेमचन्द की मारी-भावना

के रोगी शारीरिक व्यापार के रोगी तथाकथित मान-मर्यादा के रोगी तथा मानसिक शोर्बस्य के रोगी भी होते हैं और यह भी निश्चित है कि ये रोगी बेबता नहीं होते। अतः प्रेमचन्द को पुनः मारी के त्याग एवं सेवा-कर्म को निश्चित आबाह लपानी पड़ती है और अत्यन्त परिस्थितियों में भी उसके समस्त पति मरिच का आशय-वाग प्रत्यापना पड़ता है। परिस्थितियों की अत्यन्तता को प्रेमचन्द न समझते हों ऐसी बात नहीं है। वह जो कुछ लिखते हैं अपनी भावना के अनुभवों के आधार पर तो लिखते ही हैं साथ ही अपने आदर्श पात्र के त्याग का साथ धारि कहानियों तथा मनोरमा एवं गोबिन्दी धारि पात्रों के माध्यम से समझाया है कि मारी को बन नहीं अपितु विद्वस्त प्रेम पर आधारित सम्बोध की आवश्यकता होती है और यान्त्रिक 'बद-बमाई' युद्ध की रात 'सिकार' धारि कहानियों में यह भावना भी अतिव्यक्त की है कि युद्ध और स्त्री एक-दूसरे के सुलभ होते हैं। साथ ही वह यह भी जानते हैं कि "स्त्री को जीवन में प्यार न मिले तो उसका अन्त हो जाना ही अन्त है।" किन्तु विवाह-सम्बन्ध में फिर भी वह मारी को यही सम्मानयुक्त उपदेश देते हैं कि 'मारी! तुम मारी हो त्याग सेवा क्षमा और बलिदान की प्रतिमा हो। पुरुष से तुम बहुत बड़ी हो। बेको कोशिश करो कि तुम्हारा पति तुम्हें समझे।' "अपने तुम्हें अपनी बातें पचाने नहीं पाती तो कोशिश करो कि पचाने पावें। वह तुम्हारे पतिदेव हैं। तुम्हारे लिए उनकी सेवा से उत्तम और कोई पथ नहीं है।" "निष्काम कर्तव्य कभी निष्फल नहीं जाता।" यदि कोई महत्त्व प्रेमचन्द की इस निष्काम-भावना के आधार पर उन्हें कठिनायी उद्घाटता है और संका उठाता है "तुम्हें तो बं विचार तो साम पिछड़े हुए मान्य होते हैं यही सेवा और कर्तव्य धारि" तो प्रेमचन्द तुरन्त बोल उठते हैं "आपको ये विचार तो साम पिछड़े हुए मान्य होते हैं। तो क्या करके अपने ताबे विचार बतलाइये। बम्पती कैंसे मुझी यह सकते हैं। इसका कोई ताबा तुम्हारा आपने पास है?" और जब उत्तर में केवल निश्चिन्ताजनक मिलता है तो उन्हें पुनः कहना पड़ता है "आपको ज्ञात नहीं कि दुनिया में ऐसी बहुत-सी बातें हैं जो

१ शान्ति सम्मरोचर वाग १ ५ ११२

२ रंजनी ५ २१५

३ गोदान ५ १५२

४ " ५ १५२

पुत्रपत्नी कमी हो ही नहीं सकती। समाज में इस प्रकार की समस्याएँ हमेशा उठती रहती हैं और हमेशा उठती रहेंगी।

✓ प्रेमचन्द की नारी भावना का सुन्दर एक सरसतम रूप बहो उपलब्ध होता है। बहो साम्यत्व जीवन में नारी पुरुष की प्रेरणा स्फूर्ति एवं पूति बन कर पाती है। मैमावली सुमहा माया बिलासी और बनिया कृष्ण ऐसे ही प्रार्थक पात्र हैं जो पुरुष को विकास की घोर मजबूत होने में प्रेरणा देते हैं और उसके प्रहृष्ट प्रार्थक साम्यत्व मानते हैं। सुमहा को पाकर पचासह को लगता है कि 'स्त्री सन्तानहीन होकर भी पुरुष के लिए शान्ति और धान्य का धरिभर स्रोत है।' साम्यत्व भाव का सुन्दरतम रूप गोदान की बनिबा में परिलक्षित होता है। संभवों में पिछा हुआ होरी लकड़ी संभालता हुआ कहता है 'साठे तक पशुओं की मौत ही नहीं घायली बनिया इसके पहले ही चल देते। बनिया परचा टाप करती है 'घण्टा रहने को मठ घसुम मुह से निकालो। तुम से कोई घण्टी बात भी करे तो लगते हो कोसले।' होरी कन्धे पर साठी रख कर धर से निकला तो बनिया द्वार पर पड़ी उसे देर तक देखती रही। उसके इन बात किया था। वह जैसे अपने नारीत्व के सम्पूर्ण तप और तप से अपने पति को प्रमयवान है रही थी। उसके अस्त-करण से जैसे प्राचीनार्थों का झूठ-सा निकल कर होरी को अपने अन्दर छिपाये मिला था। विपन्नता के इस प्रवाह सागर में सोहाय ही वह तूण था जिसे पकने हुए वह सागर को पार कर रही थी। सच ही पाठक के लिए यह सरसता एवं प्रार्थक समरता का एक साव निमज्जन है। किन्तु प्रेमचन्द यह भी सावधान कर देते हैं कि प्रार्थक दम्पती से भी धारीरिक दौन विकृतियों-सम्बन्धी सम्भावना रहती है। और कमी-कमी तो राज के सम्बन्ध-माध्यम से उन्हें प्रार्थक दम्पती को स्वल्प कामपूति का उपदेश दिया है।

प्रेमचन्द के अनुसार नारी का सतीत्व उसकी सबसे बड़ी सम्पत्ति है। स्त्री-पुरुष के वृषित सम्बन्ध को वह व्यक्त तथा समाज दोनों के लिए हानिप्र

१ गोदान	१ १९२-२९
२ मैमावली	१ २२२
३ गोदान	१ ६

मन्त्रों हैं। शास्त्र-सम्मान के सुन जाने पर वह सर्वस्वहीन हो जाती है और अपनी ही दृष्टि में पतिता हो जाती है। मुन्नी न्यायामय में कहती है मैं बिन प्रवत्ता। मुझे इतना याद है कि कई महीने पहले मेरा सर्वस्व सूट लिया गया और उसके सूने जाने के बाद मेरा जीवन बूबा है। मैं उसी दिन मर चुकी।^१ गोबिन्दी (गोदान) सतीत्व-गरिमा से इतनी लकी हुई है कि सामने खड़े हुए पुरुष की धोर उसकी पलकों एक बार ही उठती है और फिर मुकी रहती है। 'बहिष्कार' कहानी की गोबिन्दी का बिनाम तो सतीत्व के भ्रष्ट हो जाने की प्रत्यक्ष-मात्र से ही हो जाता है। ऐसे ही 'प्रेमाश्रम' की मायत्री की भी कुबिचारों के ही कारण ^२ वह वस्तु मुट गई जो उसे जान से भी अधिक प्रिय थी उसके मान की रसक प्रालम्बीरक की पोपक धैय का पावार और उसके जीवन का प्रवत्तक थी।^३ 'सती' कहानी की मुमिया की धोर उसके देवर ही की समजायी दृष्टि पड़ती है तो वह कहती है 'तुम उनके देरों की दूत के बराबर नहीं हो सता। सबसे कपड़े धोर चिकने मुपड़े से कोई धारमी मुखर नहीं होता। मेरी माँको में तो उनके बराबर कोई दिखायी नहीं देता।'^४ 'दो छिद्यो की जन्मा भी ऐसी ही सतीत्व-मंडिता है। 'कायाकल्प' की बामीरकी भी प्रहस्या को सतीत्व का ही अपदेश देती है। मनोरमा तो मानो सतीत्व की देवी ही है। वह कहती है 'उनकी सुखी की नहा तो फिर किसकी सुखी की परबाह करेगी? जो तपी प्रपते पति से जिते में कीता रहे उसे बिय बाहर माण के देना चाहिए। हमारा धर्म कीता रचना नहीं समा करला है।^५ प्रेमचन्द का यह धारदा बिबबास है कि जिते पाठिबन वैसे साधन मिस गया है उसे और जिन्ही साधन की क्या प्रावश्यकता! इसमें मुख सम्भोष और शान्ति सब-सुख है।'^६ प्रच्छाई को दिवाने के लिए जित प्रकार बोड़ी-सी दुराई दिधाना भी प्रावश्यक होजा है उसी प्रकार 'ज्वालामुखी तथा 'धर्म-संघट' एवं 'नवा बिबाह धारि कहानियों में प्रेमचन्द ने सतीत्व भ्रष्ट होने के क्या पक्ष पर भी बिचार किया है। और सतीत्व को नारी का सर्वस्व मानते हुए भी प्रेमचन्द की यह धारणा है कि "मानव चरित्र न बिस्तुत क्यामन होता है

१ कमसूनि पृ ६

२ प्रेमाश्रम पृ ७१

३ सती, मानसरोवर भाग ५ पृ १५५

४ कायाकल्प पृ १३१

५ विवाहचक्र पृ ११२-११३

न विष्णुम श्वेत । इस में दोनों ही रंगों का विभिन्न सम्मिश्रण होता है । स्थिति अनुकूल हुई तो वह श्वेत-सुन्दर हो जाता है । प्रतिभूल हुई तो गणधम । यह प्रपनी परिस्थितियों का सिलौना-भाष है । ^१ यही कारण है कि कोई बहुत कम सही किन्तु नारी-चरित्र की दुर्बलताओं का प्रकट भी उन्हीं किया है । नारी की धाम्नीय-प्रियता को उन्हीं उनकी संस्कारगत दुर्बलता उद्घाटित है और ईर्ष्या का दुर्बल भाव तो प्रेमचन्द के प्राम् प्रत्येक नारी-पात्र में खुला बिक प्रकटा प्रकट-अप्रकट रूप में मिस ही जाता है । यह भी नारी का स्वामन पक्ष ही है जो 'श्वेत' की ओर इतिष्ठ करने के हेतु चिहित हुआ है । किन्तु सतीत्व के दूषित हो जाने से अधिक नारी में स्वामनता की कल्पना प्रेमचन्द नहीं कर सकते । यद्यपि यह पर्यन्त है तो भी परिस्थितिवश यदि नारी पतिता हो जाती है तो प्रेमचन्द पुन्य से नहीं बोड़ी उबारता एवं त्याग की माँग करते हैं; क्योंकि एक बार ही की कर्क-कालिमा का वह (मुभी की नस्ति) प्रायश्चित्त करवाना चाहते हैं और इसके बिना तो कोई भी सुभार सम्भव नहीं हो सकता । जब यह नारी पीत्कार करती है 'मैं स्त्री हूँ प्रकटा हूँ धोषी हूँ । तुम पुण्य हो बलवान् हो साहसी हो । मैं कभी तुम्हारी भी (तुम्हें धीर बिना या) और यद्यपि समय मुझे तुम से बलव किये देता है किन्तु मेरी साज तुम्हारे हाथ में है । तुम मेरी रसा करो !'—तो प्रेमचन्द भी पिन्न जाते हैं । 'तजा हरबीम' और 'नरीया' कहानियाँ भी प्रेमचन्द की सतीत्व भावना की दृष्टि में महत्त्वपूर्ण हैं ।

सतीत्व के स्वामन पक्ष से जुड़ा हुआ वैरवा-रूप भी है । 'सेवाशून' तथा 'शबन' उपन्यासों और 'बा कब' मायावीछा तथा वेस्वा' आदि कहानियों में प्रेमचन्द ने इस पहलू पर पर्यन्त सहानुभूतिपूर्वक विचार किया है । वस्तुतः नारी स्त्री भी हो, प्रेमचन्द ने उसके प्रति कठोर हुना सीधा ही नहीं । वैरवा भी इसका प्रपचार नहीं है । वह यह कभी स्वीकार नहीं करते कि समाज के इस उरुन की मरत नहीं जा सकता' क्योंकि सनधी प्रकल कारण है कि यह भारतीय नामूर नहीं है । हमारी सलतिमा से ही यह भाव लया है । 'सिकों रिषयों जो हर रीज बाजार में झरोखों में बँटी दिखायी देती है किन्हीं धरती लम्बा और सतीत्व को प्रष्ट कर दिया है । उनके पीन्न का उरुनाउ करन बाँध हमी

प्रेमचन्द की नारी मावना
 लोम है। १ प्राचीन ऋषियों से इन्द्रियों के दमन करने के दो साधन बताये हैं—
 एक राय दूसरा वैराग्य। पहला साधन अत्यन्त कठिन और दुःसाध्य है। लेकिन
 हमारे मागीरिक समाज ने अपने मुख्य स्थानों पर 'भीताबाजार' सजा कर इसी
 कठिन मार्ग को ग्रहण किया है। उसने गृहस्त्री को बीचड़ का बमल बनाता
 बाहा है। २ वासना की दृष्टी देकर हमने बिपत्ती मायिनो की पुष्टि की है।
 यह पापोत्तेजना नहीं है तो पीर क्या है? 'हम म प्रायवोरब का इतना
 प्रभाव क्यों है? हमारी निर्जीवता का क्या कारण है? 'हम म प्रायवोरब का इतना
 कृना नहीं कइलाता हमें प्राय बिदुलवास 'अंधी घबुलबघ' और प्रो
 रमेसबत जैसे बैस्या-सुधारकों की प्राबल्यता है। हमें बैबयापा को प्राबाबी स
 दूर रखना चाहिए और वहीं स उनके उखार के सतत प्रयत्न करने चाहिए।
 यह नहीं ममधना चाहिए कि उन में सत्य की शक्ति मर चुकी है' बहु सो मर
 गई है केबल उसे जयाने की प्राबल्यता है। उनके संस्कारों को मिटाना होगा।
 देखो तो 'वेबासवन की मुमन बबल गई है 'दबन की जोहरा बबल गई है
 यहाँ तक कि उनके 'भीब्रम्य और निष्कपट व्यवहार न रमानाय की प्राबिं भी
 खोस की है। 'भागपीछा' की कोकिला तो स्वयमेव ही बबल गई है। प्राकिर
 हम क्यों नहीं समझते कि 'हर कीम मे एक ऐसी बीच होती है जिसे समझी
 पात्या कह सकते हैं। प्रसन्न त्रिगुस्तानी तहजोब की घारमा है। ४ इसमिए
 बैदयाघों के लिए सेबासदन खोलो- घबाय कस्याघों को शिखा दो उन्हें बतुर
 इहिणिया बना दो। ठीक है कि समाज को उन्हें पपताने में हिचकिचाहट होमी
 किन्तु जब मबिष्य में संदा गत ही नहीं रहेया तो बरम स्वयमेव ही मर
 जायेगा। हाँ यह और बात है कि मरने की बेला मे बमन अधिक तीव्र हो
 जाती है किन्तु उसके लिए हमें अपने नामूनो को काटकर रखना होगा। बैबें
 फिर जैसे यह बरम नहीं मरना—यही है सुधारक प्रेमचन्द का पविता नारी क
 प्रथि घाघाबाओ एवं महानुभूतिमय इष्टिकोण।
 जिन प्रेमचन्द को इकबाल की यह भावना अत्यन्त पमन्र है कि मैं प्राबाज
 हूँ और इतना ह्याबार हूँ कि मुझे इमर्गो क निपरे हुए पानी के एक प्याम मे

१	विवाहदल	१	१५८
२	"	१	७२
३	"	१	७१
४	गोदान	१	३१

मारा जा सकता है^१ यह बहुत स्वभाविक ही है कि वह नारी में धार्मिक उत्पान एवं कुलधीम को धर्मिणार्थ समझे और इस दृष्टि से भारतीय नारी को पाषाणकालीन नारी से अलग समझे। भारतीय नारी के त्याग मनस्तुष्टि सीमता एवं संकोचशीलता आदि धारम-नारिमा के गुणों का उन्हें पाषाणकालीन नारी में समान-सा ही बीजता है। वास्तव में उनकी धार्मिक-कल्पना सुगन्धित नारी की है, धर्मिणार्थ प्राकृतिकता की नहीं। प्रेमचन्द के अनुसार परिचय में तो 'आराम' को कुलना जाता है स्वार्थ-सेवा एवं निष्ठासिद्धा के मित्य-नये सामनों का धर्मोपस किया जाता है। काम और धर्म ही वही जीवन है उनका धर्म भी निष्ठा है और उनका धर्म्यात्म भी नीतिक संस्तुष्टि है। फिर भी यह दावा है कि हमारी शिक्षा और सम्यता विचार-स्वातन्त्र्य के पोषक हैं। इनकी उदारता धर्मार्थ में विकस-सुस्पष्ट है।^२ धार्मिक धर्मिण के स्वान पर वही की नारी में धार्मिक तुष्टि की लक्षणता एवं उज्ज्वल कुलधर्म विद्यमान रहती है। इसीलिए छोटी हिन्दू न होते हुए भी हिन्दू धर्म पर बान बेठी है। वह कहती है, 'जो धार्मिक धर्मिण मुझे और कहीं न मिली वह गोपियों की प्रेम-कथा में मिल गई। और गोपियों की प्रेम-कथा क्या है? एकनिष्ठता सहनशीलता निरक्षमता सर्वस्व-त्याग एवं बचना की उदारता गाथा ही न! यही पर प्रेमचन्द दोनों नारी-समाजों में धर्म्य मानत है। परिचयानुसारी पंडितेबस नारी-धर्म को भारत में देख कर प्रेमचन्द को कहना ही पड़ता है, "मुझे खर है कि हमारी बहनें परिचय का धार्मिक से रही हैं वही नारी से अपना पर लो दिया है और स्वाभिनी से निर कर निष्ठा की बरतु बन गई है। परिचय की स्त्री स्वच्छन्द होना चाहती है इसलिए कि वह धर्मिक से धर्मिक निष्ठा कर लके। हमारी माताओं का धार्मिक निष्ठा कभी नहीं रहा। उन्होंने केवल सेवा के धार्मिक से लईक बहनें का संभालन किया है। परिचय में जो जीव धर्मिणी है वे उनसे नीचिये (उदाहरणस्वरूप 'दुष्ठा' प्रहमल में परी प्रया का निवारण धर्मिणार्थ समझ गया है)। संस्कृति में सर्वैक आदान-प्रदान होता थाबा है, किन्तु धर्मिणी महल तो मानतिक दुर्बलता का ही लक्षण है। परिचय की स्त्री धर्म्य प्रहस्ता

१ मदन आचार्यन जगिता धर्मन कि मल

की लगी कुलधर्म व बक धर्मिणी कुलधर्मिणी

— प्रगतिशील लेखक संघ में दिये गए भाषण से।

२ दसमूहि, १ ३३

३ ४ १ १६३

स्वामिनी नहीं रहना चाहती भोग की विदग्ध भावना ने उसे उन्मुख बना दिया है। वह अपनी लज्जा और गरिमा को जो उसकी सबसे बड़ी विभूति की संभलता और धामोद-प्रमोद पर होम कर रही है जब मैं वहाँ की सुविभित वासिन्धवों की अपने रूप का या भरी हुई गोल बाँहों या अपनी मन्मता का प्रदर्शन करते बैठता हूँ तो मुझे उन पर दया आती है। उनकी कालछाओं ने उन्हें इतना पराभूत कर दिया है कि वे अपनी लज्जा की भी रक्षा नहीं कर सकतीं। नारी की इससे अधिक और क्या प्रयोगिता हो सकती है? 'कबी' कहानी में 'उम्मा' कहानी में 'आप' कहानी के बिबेसी बटोही के कथन में तथा 'प्रेम की बेटी' की बेनी के प्रारम्भिक रूप में और 'मोदान' के देहता की बचपुता में प्रेमचन्द की इस भावना के विघटन दर्शन किये जा सकते हैं। 'यामि' कहानी तो इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। यही बाबूजी जो अपनी सुदृष्टिहीन पत्नी को पश्चिम के बुलबुल-रूप में शपथ चाहते थे अन्त में स्वतः ही मानसिक रोगों में अस्त हो जाते हैं और वापना करते हैं, "मैं फिर तुम्हें नहीं पहने की-सी सलज्जा नीचा खिच रखने वाली पूजा करने वाली समापण पढ़ने वाली घर का कामकाज करने वाली बरखा कातने वाली ईश्वर से डरने वाली पति-भङ्गा से पूर्ण रूपी बेचना चाहता हूँ।" यही नहीं उस नारी की अपनी धारणा भी साक्षात् बेटी है— 'तूने अँधल और बस्त्राभूषण में प्रबन्ध उपति की है तूझ में अपने स्वार्थों का मान हो गया है, तूझ में जीवन के कुछ जोगने की बोध्यता अधिक हो गई है तू अब अधिक पबिली इङ्-हृदय और विद्या-सम्पन्न भी हो गई है, लेकिन तेरे धार्मिक बस का बिलाल हो गया है क्योंकि तू अपने कर्त्तव्य को भूल गई है।' १

पश्चिम के प्रभावस्वरूप आगत समाज की समस्या भी आधुनिक नारी की विपत्त सन्स्था बनती जा रही है। अपने सम्पूर्ण साहित्य में प्रेमचन्द ने इस पर साक्षात् कोई रचना अथवा प्रसंग-विशेष नहीं लिखा है। कारण यह है कि वह उस सर्वहारा नारीक तथा निर्यन वर्ग की अधुनूतियों के विचरकर्ता हैं जिसमें बाह्य संघर्ष एवं मसककियत के कारण समाज का प्रश्न ही नीपस रूप में उपस्थित नहीं होता। ता भी हा इन्द्रनाथ मदान को लिखे एक पत्र में इस पर उन्होंने अपने विचार प्रकट किये हैं। वे लिखते हैं 'सर्वहारा-वर्ग में समाज

१ गोदान, ३ १६१-६४

२ साहित्य मासिकरोचर भाग ७ : ३ ६६

३ १० ६२

साधारण-सी बात है। केवल तब तक पित उच्च वर्ग में ही उसने जब रूप धारण कर लिया है। अपने श्रेष्ठतम रूप में विवाह भी एक प्रकार का समझौता और समपण ही है। यदि कोई बम्पती सुधी होता चाहते हैं तो उन्हें एक-दूसरे के लिए मुआवज़ रखनी चाहिए। जैसे ऐसे भी लोग हैं जो पच्छी परिस्थिति में भी सुधी नहीं रह सकते। स्वच्छन्द प्रेम और सभी प्रकार के संबंधों की छूट होने पर भी अमरीका में तसाक कम हो ऐसी बात नहीं है। चाहे स्त्री हो या पुरुष उनमें से एक को मुझने के लिए तैयार रहना चाहिए। मैं यह नहीं मानता कि बोप केवल पुरुष का ही है बहुत-से मामले ऐसे हैं जहाँ स्त्रियाँ एकदम पैदा करती हैं और काम्यनिक दुर्घटों की सृष्टि कर लेती हैं। जब इस बात का निश्चय ही नहीं है कि तसाक हमारी वैवाहिक बुराइयों को दूर करेगा मैं उसे समाज पर लादना नहीं चाहता। हाँ कुछ मामलों में तसाक आवश्यक हो जाता है। लेकिन मेरी समझ में धमकने की बड़ एक-दूसरे की जेबों को छोड़ कर और कोई नहीं है। यही स्त्री को बिना कुछ बुझाये तसाक दिया जाय यह माँग केवल कुत्सित व्यक्तिवाद के परिष्कारस्वरूप की जाती है। समानता के आधार पर निर्मित समाज में इस माँग को कोई स्थान नहीं है।^१ अपनी 'कुमुम' कहानी में प्रेमचन्द तसाक शब्द तो खान पर नहीं लाये किन्तु कुमुम का लोभी पति जन-जातसा के कारण जब उसकी जेबों करता है, तब कुमुम का आत्मसम्मान बाह्य हो जाता है। उसे पता है कि उसका पति दुसरी धारी करने जा रहा है किन्तु वह अपने पिता को फिर भी समके विनाशत जाने का प्रबन्ध नहीं करने देती। खान का विषय है कि यहाँ लेपक द्वारा उसके पुनर्विवाह का भी कोई निर्देश नहीं दिया गया है अपितु उसे त्याग के अज्ञात आगरे पर छोड़ दिया गया है। वस्तुतः मिलने को तो प्रेमचन्द ने का खान को लिख दिया है कि कुछ परिस्थितियों में तसाक आवश्यक हो जाता है किन्तु यथार्थतः वह इसे ठमिक भी पसन्द नहीं करते यहाँ तक कि इसका कहानी-रूप में चित्रण भी उन्हें नायवार गुजरता है।

बहुविवाह को तो प्रेमचन्द ने छोड़े हाथों लिया ही है किन्तु अन्तर्जातीय समाजवादीय अथवा अर्ध-समाजवादीय विवाहों से सम्बन्ध उनके सभी प्रयास प्राप्त हुए हैं। इस विषय से सम्बन्ध 'कायर' 'घाना-गीघा' दो कब्र धारि कहानियों तथा 'रंगभूमि' पर यदि दैनी दृष्टि डाली जाय तो स्पष्ट शक्त हो जाता है कि व्यक्तिगत रूप में तो प्रेमचन्द इसके विषय में नहीं हैं किन्तु एक

१ का शब्दावली मरदान को लिये एक कब्र में है।

तो सामाजिक परिस्थितियों की प्रतिक्रमता में ऐसे विवाहों को बँधे ही दुस्ताइस से कम वह नहीं समझते बुरे वह मानते हैं कि इन सम्बन्धों में पुरुष से स्त्री को अपेक्षाकृत अधिक ठोकरे खानी पड़ती है। सामाजिक मर्यादा-रूपी ढाल जब नारी के ऊपर से उठ जाती है तब यही भावना बनी रहती है कि जिस पुरुष के लिए उसने आत्मोत्सर्ग किया होता है वही कहीं स्वाभाविक पक्षपातक सामाजिक सम्बन्ध की असन्तुष्टिबध संशयबध धमका नारी उद्धार के लक्ष्य के धीरे-धीरे उतरने पर 'बो कब' के रामेन्द्र की भाँति कह न दे 'तुम्हारे ही कारण मुझे "माँ कायर" कहानी के केसब की भाँति सामाजिक परम्पराओं के धागे बंधक होकर खेबनाच न प्रकट कर दे—'पुरानी बातों को भूल जाओ उस समय मैंने इन बातों की कल्पना नहीं की थी'—और परिणामस्वरूप 'रूप' की भाषा न देखनी पड़े। यही कारण है कि बिनम और छोपी को प्रेमचन्द मृत्यु-बन्ध देते हैं और 'आमाकल्प' की प्रजात-कुलसोमा ग्रहस्था' पर भी राजा विशालसिंह की पुत्री होने की मोहर उन्हें जपानी ही पड़ती है। अस्तु प्रेमचन्द ने ऐसे विवाहों की बाख्यानस्वा के पृष्ठ खोल कर इस समस्या को धाने वाले पाठक-समाज पर छोड़ दिया है और अपनी अभिव्यक्ति के परिणामस्वरूप एक उदार समाज की ओर इतिग्त मर कर दिया है।

प्रेमचन्द रिखा देता चाहते हैं कि विधवाओं के भी दिन होता है और उन्हें भी हक उठा पड़ती है। इसलिए वह विधवा-विवाह के पक्ष में है। स्वयं उन्होंने विधवा शिवरानी देवी से विवाह किया था। किन्तु सभी प्रकार की विधवाओं के परिश्रम की राय वह नहीं देते। इसके लिए उन्होंने निम्न और उच्च दो प्रकार के समाज-वर्गों की ओर ध्यान दिया है। निम्न वह जो प्रायः ग्रामीण हैं पशुधित हैं जीवन की विभिन्न विधवाताओं के कारण जिसकी विवाह-सम्बन्धी परम्पराएँ सिबिल पड़ चुकी हैं और जहाँ नारोत्स के द्वार पर पति के रूप में रसक की आवरणता बनी रहती है। ऐसे समाज में प्रतिप्रीति विधवाओं को छोड़ कर बाल-विधवा किछोटी विधवा नव-जीवना तथा प्रोधा आदि श्रेय धनी प्रकार की विधवाओं का विवाह प्रेमचन्द अनुचित नहीं मानते क्योंकि यहाँ की नारी में शिशा का प्रसार एवं तर्जम्य विषद तथा कुमगतक धर्म्यन द्वारा आगत मानसिक मुत्थियों का प्रभाव होता है और न ही पड़ोसी सम्मता की छाप उस पर पड़ी होती है। अतः पुनर्विवाह में उसकी विधेय निजी भाषा उपस्थित ही नहीं होती। विवाह की धर्म्यात्म के स्तर पर ले-

जाकर समझने धीरे उसकी भाव के सहारे बिगरी काटने की समझ भी उसमें नहीं होती। अथवा यों कह लीजिये कि उसकी वह सम्मस्त नहीं होती। यही कारण है कि 'अलम्बोष्ठा' कहानी की दो बच्चों वाली विधवा मुनिया का विवाह केदार से हो जाता है। विवाह की बात सुनते ही 'बैमध्य' के शोक से मुरझाया हुआ उसका पीठ बदन कमल की भाँति धरलु हो उठता है। इस बर्षों में जो कुछ उसने खोया था वह इसी कारण में मानों ध्याब के साथ उसे मिल जाता है। वही भावध्य वही विकास वही धार्क्यण वही शोक फिर आ जाता है। 'स्वामिनी' कहानी की विधवा प्यारी का विवाह प्रबस्या की विन्ता दिये बिना ही उसके हसबाहे जोशु से हो जाता है। 'सुमागी' कहानी की बामबिबबा के परिचय एवं समय पर ता जमींदार सजलसिंह इतने मोहित हो जाते हैं कि जाति-कुजाति की भावना को किनारे रख कर उसे अपने पुत्र के लिए चुन लेते हैं। 'भोवान' की मुनिया की बिकतावस्था से पूर्व ही गोबर से उसका पति-रूप में शारीरिक सम्बन्ध हो जाता है। 'बालक' कहानी का पंगू गमिली धोमठी से प्राप्त पुत्र को अपनाता हुआ कहता है 'मैंने एक बीया हुआ खेत मिया तो क्या उसकी फल को इसलिए छोड़ दिया कि उसे किसी दूसरे ने बीया था ?' किन्तु प्रेमचन्द की विवेकता यह है कि इस निम्न बर्ष में भी विधवा-विवाह के धारण को उन्होंने बना रखा है। यदि पुरुष विधवा नाटी की मानुस्व-शक्ति का तिरस्कार करके केवल हो-चार बिल की शारीरिक मूस की शक्ति के हेतु ही उससे पहला अथवा दूसरा विवाह करना चाहता है तो 'मूठ' कहानी की मुनिया तथा 'कर्मभूमि' की मुनी की भाँति वे उतना विधवा-रूप ही अधिक श्रेयस्कर समझते हैं। दूसरा बर्ष है 'अन्ध बर्ष'। यह बर्ष विदित है ऐश्वर्यशुक्त है किन्तु परम्पराओं का बाध है। इस बर्ष की विधवा कहती है "कुछ जानूँ भी तो हो संसार मुझसे क्या चाहता है। मुझमें जीव है, चेतन है, जड़ बर्षोंकर बन जाऊँ ! मुझमें यह नहीं हो सकता कि अपने को अनामिनी दुनिया समझूँ और एक टुकड़ा रोटी खाकर पड़ी रहूँ" मैं अपने सम्मान की रक्षा धान कर, सक्ती हूँ। मैं इसे अपना धोर अपनाता समझती हूँ कि पत-गम पर मुझ पर धंका की भाव-मिस्व कोई चरबाहों की भाँति मेरे पीछे लाठी लिये घूमता रहे कि किसी शेष में न जा पड़े। यह बर्षा मेरे लिए

१. अलम्बोष्ठा मानसरोवर भाग १ पृ. ३४

२. बालक, मानसरोवर भाग १ पृ. ३३२

घसड़ा है।^१ इस वय में विधवा-विवाह की बात करना एक टेढ़ी सीर है। तो भी विधवा के पास तथा किछोरी-रूप का पुनर्विवाह यहाँ प्रेमचन्द प्रावश्यक समझते हैं। इस दृष्टि से उनकी कहानी 'नैराश्य लीला' यथार्थ का सुन्दर पुट लिये हुए है। जेताजी को पता ही नहीं विवाह क्या वस्तु है, और वह विधवा हो जाती है। उसे सोच से बाण बिसाने के लिए घामोद-शमोद, सेवाधन्यास प्रावि साधनों को बर्ता जाता है किन्तु उसकी माँ को बाहिर मही जगता है कि 'बिना माँझी के नाब पार सगना कठिन है, बिबर हवा पाटी है वह पाटी है' और उसके पिता भी मही कहते हैं कि 'इसका बस एक ही उपाय है पर उसे बबान पर नहीं जा सकता'। इस प्रकार की अवस्था में प्रेमचन्द विधवा-विवाह को प्रावश्यक समझते हैं। हाँ ऐसी अवस्था में वहाँ कि विधवा मुबतों हो धनवा प्रौढ़ा किन्तु पति प्रेम तथा बासना की निस्सारा का एक बार सन्तुष्ट अनुभव कर चुकी हो प्रेमचन्द विवाह की अपेक्षा उसे किसी अन्य धारमजिन्म पर छोड़ देते हैं। वह माबार होता है पुन धनवा पति की पुनीत स्मृति का जिसे यह विधवा कसकित नहीं करना चाहती। 'माँ' कहानी की करणा का चरित्र इस दृष्टि से दर्शनीय है। प्रेमचन्द का विश्वास है कि 'धोत-बिलास' सीर-समासे से प्राप्ता उसी मति सन्तुष्ट नहीं होती जैसे कोई बटनी धनवा धनार साकर धननी दुबा को शास्य मही कर सकता। जीवन किसी तय्य (माबार) पर ही टिक सकता है।^२ ऐलुका के जीवन में वह माबार है पसुप्रेम करणा सोना पूरुा मुबामा के पास वह धापार है मातृत्व तथा पति की सुमधुर स्मृति। धायभी के पास भी ऐसरा ही माबार होता है जिसके दिर जाने पर वह जीवन से गिर जाती है। प्रेमचन्द जानते हैं कि माय का धनजन्म सेना अत्यन्त कठिन होता है, किन्तु ताय ही उनकी सतीत्व-रूपता भी तो धरल नहीं है। कहते हैं, 'प्रतिज्ञा' के प्रथम संस्करण में उन्होंने विधवा पूरुा का पुनर्विवाह कर लिया था किन्तु दूसरे संस्करण में उसे इसलिये काट दिया गया कि उससे सतीत्व को चोट पहुँचती थी। वस्तुतः हम फिर वही कहेंगे कि उस नारी से जो सतीत्व को धनीपति समझती है प्रेमचन्द पुनर्विवाह की अपेक्षा सतीत्वार्चना की ही अधिक अपेक्षा रखते हैं।

प्रेमचन्द चाहते हैं कि समाज-सुधार तथा राष्ट्र-सेवा के पथ पर ही नारी

१ नैराश्य लीला आनसरोवर जग ३ पृ ६४

२ कर्मभूमि, पृ १६

किन्ती से पीछे न रहे। घर से बाहर निकल कर ही नहीं घबिस्तु घर-दुहस्वी का सवामम करती हुई भी वह राष्ट्र के प्रति अपने कर्तव्य को निगल सकती है। 'रंगमूमि' की बाह्यकी 'बिककार' कहानी की बूढ़ी पुजारिन तथा 'अप्यान' की मुशामा की भाँति वह बीर-असू हो सकती है नहीं तो अपने ही हाथों उसका यत्न भोंट सकती है। 'रंगमूमि' की सोझिजा प्रेमामम की थडा 'सती' कहानी की बिल्ला 'मा' की कससा 'धनुवन की बेबीबी' प्याप का अलिङ्गण की बजलन्विनी और 'जिहाद' की शमाग की भाँति वह बीर-परिणीता हो सकती है 'सोहाय की साड़ी' की दोष की भाँति वह बिदेयी वस्तुओं का बहिष्कार कर सकती है इन्तु की भाँति बन्ना दे सकती है, वह बर्बाद कात सकती है—वह क्या नहीं कर सकती ? घर से बाहर निकल कर तो उनकी प्याप बाबना के राग एवं सरसाह-नम और भी मुहड़ हो सकते हैं। 'बेल' कहानी की मुदुवा की तरह सम्पूर्ण परिवार का बसिदान हैकर वह 'बेल' को भी 'सम्पान और भलि की रेखा' भाव सकती है मोद्यायी की भाँति 'परनी मे पति' बन सकती है 'बाराब की बूफान' की निसेज लकसता की तप्ट बिकेडिज कर सकती है 'पुसुय की मिट्टनबाई' की भाँति वह घड़ीदों के परिवारों को बिलासा दे सकती है और 'कर्ममूमि' की मुदुवा सफीता तथा मुग्नी की भाँति बेल के लिए बुदपों से भी अधिक बीरव का विषय बन सकती है। राष्ट्रीय समस्याओं की और ती उसका सहज स्वीक्रीत स्वभाव स्वत ही बसा जाता है। वह कह सकती है "घाल मेरे पुज्य किता है मैं घालकी सेवा करूँगी लेकिन घालको दूसरों का लुन न बूसने दूँगी इसे बूबुसण नहीं करते। यह बोरी भी नहीं है। यह केवल मुर्द और जिज का समाया है।" "बहन बाहे से घर बाहों पर इन ठरीबी को मिटा कर छोड़ पी।" "इम प्रकार वह 'मुक्तया' की भाँति किन्ती भी बड़े से बड़े बुदप नेता के मोरव को प्राप्त कर सकती है सेवायम धादि की नीव रखना तो उसके लिए मामूली बात है।

बहज प्रभा परी प्रभा एवं बहु बिबाह को प्रेमबन्ध नाधि के बिकाम में बाबाओं सममठ है। 'एक पाँच की कठर' 'बिहोही' 'बुरापा' (प्रहमन) धादि में तथा मुवन निर्मला तथा जगोरया धादि बरिजों के माप्यम से उन्मूनि यह स्पष्ट कर दिया है कि न केवल ध्याति घबिस्तु समाज की इफाई पर भी इनका अत्यन्त अत्यन्त प्रभाव पड़ता है। बिस समाज म बिबाह धारिपक बिबाठ

का साधन नहीं उसका नैतिक ह्रास प्रत्यग्ग्राही है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रेमचन्द की नारी भावना में साक्षात्-सा व्यापकत्व प्रकाश-मन्त्र-सा आदर्शात्मक चरिता की-सी निःस्पृह व्यावहारिकता एवं उपयोगिता मानव-मुक्तन चिन्तन सिंहास की तरङ्गन-सी सहानुभूति—ये सब इन प्रकार से विद्यमान हैं कि वह कहीं भी धीर कमी की स्त्री और पुरुष के हृदयों को एक तार में बाँध सकती है और उसके द्वारा नारी के प्रति जो एक यथा की भावना उद्बुद्ध होती है उससे वह तथा गम्भीर भोक्तृमंगल की कल्पना इस हाव-भास के समक्ष में सम्भव नहीं हो सकती । वह ही सास पुण्णी मने ही हो किन्तु बीरुं नहीं है उसमें न्यून वर्कामित समाधानों की-सी उमभी हुई नहूतता मने ही न हो किन्तु वह हमारे हृय एवं वीरव को कमी नहीं घीगती ।

एक बात धीर, यह ठीक है कि 'विश्वास' की मित बोधी तथा संवाचन' की मुमन आदि कुछ नाटी-नाकों के बिचण में आदर्श की बनावे रखन के कारस्य प्रेमचन्द ने कहीं-नहीं मनोविज्ञान की परबाह नहीं की है किन्तु इतनी-सी बात को धीर उनकी नाटी-भावना पर आक्षेप नहीं किया जा सकता । ऐसे भी रोग होते हैं जो घातक एवं सन्नामक होते हैं । रोगी के घामे वहाँ रोप का पोषा शोभ कर नहीं बैटा जाता अपितु उसे दितासा दिया जाता है, स्वस्व होने का विश्वास विनाया जाता है और ऐसा विश्वास किसी भी औपधि से अधिक बसर रखता है । प्रेमचन्द को अपने पात्रों से प्यार है उसी प्रकार जब एक निर्बन पिता अपने पुत्र को 'राजा बटा' कहता है । उमभी नारी भावना पर यह आक्षेप भी कि उमूने विवाह आदि नाटी-बीजन की समस्याओं का कोई समाधान नहीं दिया है, प्रेमचन्द की नाटी-भावना को न समझता है । एक तो ये समस्याएँ बिरुत्तन हैं और इनका बिरुत्तन समाधान प्रेमचन्द न दिया भी है दूसरे समस्याओं को प्राधुनिक बधिकोष उपग्यासों की तथाकथित मनोवैज्ञानिकता की ली में घनकी नारी-भावना को देखना भी सब से बड़ी घनती है । भाव हम मनोविज्ञान को अत्यन्त व्यक्तिपरक तथा घमांगतिक कुष्ठाओं के रूप में अपने कथा-साहित्य में ग्रहण कर रहे हैं । यह प्रकृति निर्मात्मात्मक नहीं है । प्रेमचन्द ने समस्याओं को सबेदनाओं के रूप में ग्रहण किया है और वे प्राधुनिक बनावानों की घनेता कहीं अधिक समाज की सहानुभूति को खींचती है । धीर फिर प्रेमचन्द की नारी भावना का बहसब तो इस हृष्टि से अधिक है कि उसने हिन्दी-उपग्यास में पुगात्तर उपस्थित किया है प्रारम्भ से लेकर अन्त तक वह निबिचस्य एवं निबिकार रही है और उमने हिन्दी-साहित्य में नारी के

प्रति विरूपकसित विश्वास-मूर्तिमूसक तथा निवृत्तिमूसक हो आत्यन्तिक दृष्टि-कोशों को मध्यम मार्ग दिया है उसने समाज में नारी की प्रतिष्ठा को स्वायत्त प्रदान किया है और साहित्य-साधकों के लिए विचार भूमि को समतल बनाया है ।

प्रेमचन्द के नारी-पात्रों का वर्गीकरण

जो तो चरित्र प्रकार तथा चित्रण-विधियों के अनुसार ही पात्र-वर्गीकरण के भी अनेक प्रकार हो सकते हैं जैसे बर्ष और व्यक्ति का आधार यादों और यथार्थ का आधार, यति तथा स्थिरता का आधार और विस्मयकारक तथा नाटकीय प्रतिक्रियाओं का आधार किन्तु प्रेमचन्द के जिस व्यापक नारी चित्रण की कक्षा पीछे हो चुकी है उसके वर्गीकरण के लिए जो ही स्पष्ट आधार सामने आते हैं—प्रकृतियों अथवा गुणों पर आधारित नारी-रूप का आधार तथा समाजगत धार्मिक स्तर-वैषम्य का आधार। इन दोनों में भी धार्मिक आधार को ग्रहण करना सर्वथा नासमझी का ही परिणामक होगा। कारण यह है कि एक तो पुरुष के परे नारी की धार्मिक काम की वृत्त मरस्य प्रायः होती नहीं बूझते, अपनी सम्पूर्ण रचनाओं में प्रेमचन्द आधोपान्त धार्मिकता नारी के एक ही आधार को मान कर बसे हैं और उनका यह ध्यान देना तथा प्रेम की भावनाओं से अनुप्राणित धार्मिक समाज की धार्मिक सीमाओं से बहुत घाते हैं। उनकी नारी सामील अथवा नागरिक होने से बहूते शारीरिक-सामान्य की धार्मिक भावना है। न तो प्रेमचन्द ने धर्म को प्रायः शारीरिक-सामान्य के मूल में ग्रहण किया है और न ही अपने नारी-पात्रों के चित्रण में वैयक्तिक विशेषताओं से धार्मिक महत्त्व उन्होंने यथार्थ परिस्थितियों को रखा है। उनकी नारी जो भी हो कहीं भी हो प्रायः सहनशीलता त्याग तथा सेवा धार्मिक दामन पकड़े हुए परिस्थितियों का सामना करती है और कई बार अपने रिश्ते ही भी उनसे बहुत ऊपर उठी रहती है। संक्षेपतः उनकी नारी धार्मिक नारी है जिसके विवेचन में वर्गीकरण का धार्मिक आधार अत्यन्त धर्मगत है। हाँ पूर्वाग्रह की बात बूझती है।

देखा जाए तो चरित्र और वर्गीकरण भी दो परस्पर-विरोधी से शब्द बीच पड़ते हैं। चरित्र का धर्म ही है उन विशेषताओं का उल्लेख जो एक व्यक्ति को बूझते व्यक्ति से वृत्त करती है। अतः अनेक चरित्र (विशेषतः प्रीति-सिद्धि पात्र) स्वभावतः बूझते से कहीं न कहीं किन्तु होना ही। देखी दशा में तो विठने चरित्र उतने ही प्रकार होते हैं किन्तु बात ऐसी नहीं है, ऐसा इन केवल

अभावार्थक (मानव श्रुतियों पर आधारित) दृष्टिकोण से ही सोचते हैं। सत्साहित्य में एक सत्यान्वेषी जीवन-दर्शन अनुस्यूत होता है। साथ सर्वत्र एक ही होता है। यतः जो भी अरिज सतोमुख पर आधारित होंगे अथवा जिनके चित्रण का समय मानव-संघन होगा उनमें तत्सम्बन्धी विशेषताओं के प्राधान्य के कारण एकस्यता अतिवर्धित विद्यमान होगी। यह 'प्राधान्य' ही बर्णनकरण में काम करता है। नारी जननी है, ममिनी है और प्रेमिका भी है; किन्तु नारी केवल प्रेमिका है, जननी अथवा ममिनी नहीं—यह यथार्थ है। बर्णनकरण में जब हम कुछ पात्रों को प्रेमिका-रूप अथवा मातृरूप अथवा कामिनी-रूप के अन्तर्गत रखते हैं तो उसका तात्पर्य यही होता है कि अल्प-रूप-विशेषताओं के होते हुए भी अमुक में रावतत्व की प्रधानता है अमुक में वास्तव्य सर्वप्रधान है और अमुक में पारिस्थितिक तृप्ति के हेतु काम-दाह की प्रमुखता है। प्रवृत्तियों अथवा रूप-विशेषताओं के प्राधान्य के इसी आधार पर प्रेमचन्द के नारी-पार्श्वों का निम्न प्रकार से बर्णनकरण किया जा सकता है प्रकृत यह भी रहा है कि उनके सम्पूर्ण नारी-पात्र इसमें कहीं न कहीं स्वाभाविकता पा ही जायें—

प्रेमिका-रूप

प्रेम से तात्पर्य मूलतः दो युवक युवयो (स्त्री और पुरुष) के पारस्परिक स्पर्शपूर्ण से ही होता है। यह स्पर्शपूर्ण वाचनार्थक होता है किन्तु युष्माक्यही होकर ही अकल्पिता को प्राप्त होता है। प्रेमचन्द भी प्रेम का मूल रूप में स्थित मानते हुए इसी प्रेम को महान् मानते हैं जो पारस्परिक विकास तथा स्वाभाविक समिधान एवं विदबाध आदि मानव-सूक्ष्मों को अन्तर्भूत करके जनपदा है। पुरुष को धरणा नारी को प्रेमपात्र के रूप में वह समिक एकनिष्ठ, पवित्र तथा स्वयं अमासीय समझे हैं। इसी कारण उनकी कृतियों में नारी के प्रेमिका-रूप का बर्णन अत्यन्त परिमापूर्वक हुआ है। (यहाँ पुनः यह स्पष्ट कर दिया जाता है कि यह धारणा नहीं है कि प्रेमिका परिणीता अथवा ममिनी न हो। जिस पात्र में जिस प्रवृत्ति तथा जिन गुणों का प्राधान्य होना उसी रूप के अन्तर्गत उसे रखा जायेगा।) प्रेमचन्द द्वारा बर्णित प्रेमिका-पार्श्वों के पल्लवित होने में दो कारणों ने काम किया है—परिस्थिति-निरपेक्ष निजी गुणों और परिस्थिति-मापक वातावरण ने। यतः निजी गुणों तथा परिस्थितियों के आधार पर इस प्रेमिका रूप का उत्पन्नकरण किया जा सकता है। निजी गुणों के प्राधान्य के आधार पर प्रेमचन्द के नारी-पार्श्वों में दो प्रकार के प्रेमिका-रूप स्पष्ट-रूप से

यें घाते हैं —

१ राग प्रधान प्रेमिका रूप—इस रूप के अन्तर्गत वे प्रेमिकाएँ आती हैं जो जीवन में एक ही की होकर रह सकती हैं। परिस्थितियाँ कहीं भी हों पति तथा प्रेमपान की पुत्रक रूपना इन्हें प्रसन्न है। ये प्रायः भोली-भाभी हैं और इनका धर्म इनका समाज इनका सर्वस्व वही एक है जिसके प्रति इन्होंने हृदय समर्पण किया होता है। उसके साथ वे एक झूठे पार में बँधी होती हैं और उसके लिए बड़े से बड़ा त्याग भी कर सकती हैं यहाँ तक की अपनी खुशी के हेतु उससे भी विभक्त रह सकती हैं किन्तु प्रसन्नबिहीन अपना तिरस्कृत होकर जीवन से प्रायः किसी प्रकार का सम्पर्क नहीं कर सकतीं। इनकी सबसे बड़ी विशेषता यही है कि वे एकनिष्ठताएँ अपने और अपने प्यार के प्रति बहुत सखी हैं। अलेपतः वे प्रेमबन्ध की इस धारणा को प्रभाव देती हैं कि 'स्त्री को जीवन में प्यार न मिले तो उसका अस्त हो जाना ही अच्छा है। 'रंगभूमि' की सोफिया इन्में प्रतिनिधि पात्र है। उसके प्रतिरिक्त 'कापर' कहानी की प्रेमा 'सैता' की सैता 'कामना-रस' की जन्मा 'दारम-अंबीत' की मनोरमा 'एक्ट्रेस' की लारा; 'क्योति' की कपिला 'हार की बीत' की जन्मा 'आपावीक्षा' की अज्ञा तथा किसी सीमा तक 'पोरान' की विविमा यादि माटी-पान की स्त्री रूप के अन्तर्गत आते हैं।

२ उत्साह-प्रधान प्रेमिका-रूप—इस रूप से सम्बद्ध बीरामनाएँ एको ग्नुकी अथवा एकनिष्ठाएँ तो हैं किन्तु भोली भाभी एवं सरल नहीं हैं। उन से अधिक इनकी उत्साह-वृत्तियाँ बाहुल्य हैं। अपने प्रेम-पान की धर्म के प्रति लोक-सेवा के प्रति देश-रक्षा अथवा धारम-सम्मान के प्रति विमुक्तता को वे कायरता समझती हैं और यही कारण है कि धारम-सम्मान के उपरान्त मृत्यु ही इन्हें सर्वाधिक मिय है। 'त्रिहास' कहानी की स्वामा 'सती' की विमला 'मर्यादा की बेटी' की प्रभा तथा किसी सीमा तक 'दिल की रानी' की हबीब ऐसी ही प्रेमिकाएँ हैं।

परिस्थितियों द्वारा प्रधानतः निर्मित प्रेमिका-रूप के उपर्युक्त के अन्तर्गत भी दो प्रकार के प्रेमिका-रूप आते हैं —

१ परिशुभ-प्रधान प्रेमिका-रूप—इस रूप से उन नारी-पार्श्वों का सम्बन्ध है जिन्होंने कौमार्यवस्था में जाने अथवा अज्ञान ही कभी किसी को हृदय समर्पित कर दिया था किन्तु अब इनका प्यार राख बन कर रह गया है। परिस्थितियों से विशोह न करके इन्होंने अंधों पर होने डाल रखे हैं क्योंकि प्रेम-पान नहीं किसी अर्थ को इन्हें पति-रूप में स्वीकार करना पड़ा है। तो

नी ये परिस्थितियों से ऊपर उठी हुई हैं क्योंकि पूर्व-प्रेम का धालोक इनकी त्याग श्रद्धा एवं कर्तव्य की भावार्थ भावनाओं को धाधाधित भर करता रहता है। सब से अपनी सम्पूर्ण कर्तव्य-भावना को पति की धोर उन्मुख कर चुकी हैं और इससे जाने जाने में अपना तथा लोक का कल्याण भी नहीं समझती। इस प्रकार से प्रेमिकाएँ पूर्व प्रेम के प्रति सच्ची हैं पति के प्रति सच्ची हैं और समाज के प्रति भी भूखी नहीं हैं किन्तु अपने प्रति क्या हैं—यह एक राख है जिसका राख बना रहता ही प्रेमचन्द को पसन्द है क्योंकि वह धावरमक नहीं समझते कि धावर्य नारी स्वार्थवश अपने प्रति भी 'कुछ' हो ही। कामाक्ष्य की मनोरमा 'बरदान' की बिरजन 'प्रतिज्ञा' की प्रेमा 'कर्मभूमि' की सकीना और किसी सीमा तक नैना भी इसी कोटि में धापी हैं।

परिणामातीत भावोन्मुख प्रेमिका-रूप—इस प्रेमिका-रूप के धन्तर्गत वे निर्मित्थाएँ धाती हैं जो परिस्थितिवश धमिबाहिता हैं किन्तु जिन्होंने प्रेम की स्मृति मात्र को ही जीवन का धाधार मान लिया है और उन्ही के द्वारा पति के पावन सहवास के इन्धियातीत धानद क्य धनुभव करना चाहती हैं। अपनी सम्पूर्ण बाधनाओं को इन्होंने सेवा-मार्ग किसी धम्य बिराद् धावना धववा प्रेम-मात्र की धावर्ष-मूर्ति में धाम दिवा है। इस प्रकार की नारी धावना की धमिधमिलि प्रेमचन्द ने बहुत कम की है क्योंकि एक तो बाधना के उन्मूजन की धपेधा इसका धयुधिभूमक जवातीकरण धधिक स्वाभाविक होता है दूसरे, समाजगत ध्याबहारिकता की दृष्टि से धालयत स्वत्व भी नहीं। 'बरदान' की माववी के धतिरिक्त 'सेवानार्थ' क्हाणी की धारा तथा किसी सीमा तक प्रेम की बेबी' (गाटक) की धैनी के धरिध का उत्तरधर्ष इसी रूप में धमाहित होते हैं। 'मोदान' की माववी भी यैहता से धालयत परिणवा तीत धिध भाव ही जो धेय जीवन का धमधम्य मानती हुई सेवा-मात्र की धोर धाधर होती है।

परिणीता रूप

इस वर्ग के धन्तर्गत प्रेमचन्द के वे नारी-मात्र स्वान पाते हैं जिनकी रैधार्थ पत्नी-रूप में धधिक जमरी है। परिणीता-रूप को पाँच प्रकार से धेया जा सकता है—

१ धावर्ष पत्नी रूप—इस नारी-रूप के धन्तर्गत वे सहनजीत एवं धालय-बिरोध-रहित पत्नियाँ धाती हैं जो उतीत्व-धरित से धाधाधित हैं तथा

प्रेमचन्द के नारी-पात्रों का वर्गीकरण

पति की प्रकृत चरित्रता होने के साथ ही साथ पति प्रपञ्च पर-मुद्रण-सुधाशिका भी हैं। जिस विवाह को प्रेमचन्द धारम-उत्पान का साधन मानते हैं वे उसी सामान्य मादना की धारण करणतारें हैं। प्रेमचन्द के नारी-पात्रों में सम्भवतः इन्हीं की संख्या सर्वाधिक है। 'रंगभूमि' की कुसूम 'शेवा-सदम' की सुमन 'प्रमाथम' की बड़ा विमाठी और सीममणि 'आयाकल्प' की महत्या 'यवन' की कामया 'राजा हरदोल' कहानी की कुशीला 'रानी सारथा' की सारथा 'बो छबियाँ' की बड़ा सती की मुसिया 'भ्याय' की बंनक तथा 'गोवान' की बनिया और मिसेज पन्ना धारि प्रमेक नारी-पात्र इसी कोटि में आते हैं।

२ साधारण पत्नी-रूप— इस नारी-रूप के अन्तर्गत आती हैं वे पत्नियाँ जिनका पतिव्रत तो पण्डित नहीं है किन्तु जो सम्पूर्ण बरेष्टु स्वाधो संकीर्णताओं एवं अन्धविश्वासों से युक्त हैं। इनका एक सीमित दायरा है जिसमें त्याग तथा सेवा नाम की बस्तु समझ से बाहर होती है। पारिवारिक धारिपत्य इनका प्रायः पति से भी अधिक होता है। 'बरदान' की प्रेमवती 'शेवा-सदम' की जाहूनी 'निमना' को रेंदीतीबाई 'यवन' की मानकी तथा 'बागेरबरी' 'रंगभूमि' की मिसेज सेबक 'जोसल' कहानी की माया 'मिमगल' की सोना 'बूढी काकी' की रूपा तथा 'अंशुम' (माटक) की चम्पा धारि नारी-पात्र इसी रूप से सम्प्रत्य हैं।

३ सपत्नी-रूप— बहुत कम सपत्नियों का चित्रण प्रेमचन्द ने किया है और वे भी साधारण सारलीर से ऊपर उठी हुई हैं। पतिव्रताएँ वे सभी हैं किन्तु ईर्ष्या एवं मान भावना पर बरा इगका नहीं है। बेटे त्याग तथा सेवा से भी इनका परिचय है। 'आयाकल्प' की रोहिणी रामप्रिया और बनुमती 'सोत' कहानी की गाराबरी और मोमती तथा 'अग्नि-समाधि' की विमल और विमिया धारि सपत्नियों में गाराबरी अविमल तथा रोहिणी को तो किसी भी अन्य नारी-पात्र के समझ इगका नहीं बड़ा या सदा।

४ तिरस्कृता रूप— पत्नी पति के सम्पूर्ण प्रेम तथा विश्वास की भूषी होती है। पति बुझाती हो प्रबन्धा के अनुसार प्रबोध्य हो प्रपञ्च योग्य होते हुए भी उसे समझने की सामर्थ्य न रखता हो या प्रत्यक्षतः मने ही यह जीवन के साथ किसी प्रकार का समझौता कर से किन्तु सब ता यह है कि भीतर से वह अपने को पण्डिता एक तिरस्कृता ही समझती है। प्रेमचन्द ने अपने तिरस्कृता चित्रण में अपने नारी पात्रों को निरीह तथा परिस्थितियों से दूरके बाग बन में ही प्रायः रहना दिया है और इन तिरस्कृत या कारण कमी व्यक्ति (पुरुष) में हुई है तो कमी सामाजिक प्रसमानता में। 'प्रमाथम' की

विद्यावती 'निर्मला' की निर्मला तथा सुभा 'योदान' की योविन्दी देवी, 'प्रतिज्ञा' की सुमित्रा 'गवत' की रतन 'सेवासदन' की सुमन 'कर्मभूमि' की मुन्नी 'रमभूमि' की इन्दु, 'कृष्ण' कहानी की कृष्ण (बिछे पठा नहीं क्यों, या सत्येश ने विकृत भाग पर चलने वाली कह दिया है) 'वेरमा' की लीला 'सोहाम का घब' की सुमित्रा 'निर्वासन' की मर्यादा संध्या (गाटक) की मानी तथा 'योदान' की सोना आदि ऐसी ही बेकमूर विरम्भकार्य हैं जिन्हें विवशताओं को स्वीकार करते हुए उनके सुभार की प्रतीक्षा घपवा करणाम्भ पर छोड़ दिया गया है ।

५ भाव-परिणीता रूप—इस रूप से हमारा तात्पर्य प्रेमचन्द के उन होने गिने नारी-पात्रों से है जिनका विवाह सामाजिक रीति-रिवाज के अनुसार नहीं अपितु मनीषित भावनाओं के अनुसार घनायात ही परस्परकर्षण के कारण हो चुका है । समाज पहले तो इस रूप पर टिप्पणियाँ करता है किन्तु धीरे-धीरे इनकी विवाह-सत्ता को स्वीकार कर जाता है क्योंकि कुछ भी तो इन्होंने समाज से कुछ नहीं रखा होता । इसमें तन्वेह नहीं कि ऐसे नारी-पात्रों को घाबीवन संघष तथा मानसिक इन्द्र भेजने पड़ते हैं किन्तु ये इसका कारण समझते हैं तथा परितुष्ट रहने का प्रयत्न करते हैं । चूंकि इन्होंने जीवन से बहुत धनुष्य लिये होते हैं घत इनके घावर्ष भी बायबी तथा सोखने नहीं होते । घमूणें प्रमचन्द-साहित्य में 'आयाकल्प' की लीली ही इस दृष्टि से प्रमुख स्थान रखती है ।

मातृ-रूप

मातृरूप से तात्पर्य यहाँ केवल घीरघ पुत्रघटी-रूप से ही नहीं है अपितु नारी का वह सहाज मातृ रूप है जो किसी भी पुत्र को देख कर भंडित हो उठता है । प्रेमचन्द के नारी-पात्रों में तीन प्रकार के मातृ-रूप की घक्ति घ्यक्ति हुई है—

↗ सहाज वत्सल मातृ-रूप—पुत्र केसा भी हो इस रूप में स्थान पाने वाली सहाज वत्सलघाएँ उठे जाहूटी हैं क्योंकि इन्होंने उठे वय्य दिया होता है रक्त द्वारा उठका पालन दिया होता है घीर घपने घाघे में घसके वत्सलित होने की बायना की होती है । यही नहीं इन पात्रों में कुछ ऐसी पुत्रहीना विघराएँ मातृरूपघा वैविघाएँ तथा विघाघाएँ भी हैं जिनका वत्सल्य किती भी घाँ के पुत्र को देख कर घोष घटना है 'यह भी किती का पुत्र है ।' 'आयाकल्प' की निर्मला

प्रेमबन्ध के नारी-नाबों का वर्दीकरण

‘कर्मभूमि’ की सलीमी ‘यवन’ की बुद्धिमत्ता ‘ईदगाह’ कहानी की घनीना ‘माता का हृदय’ की माधवी ‘ममता की बुद्धिया ‘मन्दिर’ की सुधिया ‘बेटों वाली बिपदा’ की पूज्यमती ‘संध्या’ की सलीमी ‘विमाता की मन्दा ‘मलयोन्म’ की पन्ना ‘दूध का दान’ की मूनी तथा ‘महातीर्थ’ की कैलासी धारि पात्र इसी रूप में समाहित होते हैं।

२. विधिष्ठ मातृ-रूप—इस रूप के अन्तर्गत वे माताएँ स्वान पाती हैं जिन्होंने सर्वाङ्गीय पुत्रों से प्रेम करना नहीं सीखा है। अपने सपूतों से वे अर्थस्य साहस तथा वेध प्रेम की माँग करती हैं उच्छ्रुतक तथा स्वच्छन्द प्रेम प्रसवों की नहीं। ‘अर्धला की भूमिका में तबबिबाहित बहक की माँ कहती है ‘मी स्वाहम कि मण प्रथ बुनेकुर धरकते वि ही लाहीरे कि प्रथ पिस्ताने मन कुरबई बर तो हुकाल परब’—अर्थात् मेरी इच्छा है कि तू अपने रक्त का एक गूँट मुझे दे ताकि यह दूध जो तुने मेरे स्तन से पिया है पुत्र पर हुनाल हो जाये। इन सभी माताओं की लयमय ऐसी ही माँग है और यदि उसकी पूर्ति नहीं होती तो वे पुत्र का न होना प्रथवा मर जाना ही अत्यन्त समझती हैं। ‘कर्मभूमि की बाहूनी ‘बिकार’ कहानी की पुकारिण तथा ‘बरदान’ की पुत्रामा इसी विधिष्ठ रूप में पाती हैं।

३. यथाविभूत विमाता रूप—विमाता कभी स्वमाता प्रथवा सुमाता नहीं होती—नारी के इस दृष्टबाहक रूप को ‘इदगाह’ कहानी की देवप्रिया में देखा जा सकता है। प्रमबन्ध ने माता क इस समागतिक रूप का बिभण अपनी प्रधान कृतियों में तो किया ही नहीं कहानियों में भी बहुत कम किया है।

राष्ट्रसेविका-रूप

प्रेमबन्ध के नारी-नाबों में राष्ट्रसेविकाओं के दो रूप उभरे हैं।
१. कर्मप्रधान राष्ट्रसेविका रूप—इसके अन्तर्गत वे नारी-नाब स्वान पाती हैं जो केवल सैद्धांतिक दृष्टिकोण से ही नहीं अपितु राष्ट्र-सेवा के व्यापक और विविध क्षेत्रों में भी पुरणों से पीछे नहीं हैं और बरसू बाजारखण से बाहर प्रत्येक अन्तर्गत भी सक्रिय योगदान देते हैं। त्याग तथा बलिदान की प्रतिनिधि पात्र हैं। ‘कर्मभूमि’ की सुपदा का भी यही कहानी की मृदुला इस है। इसके अतिरिक्त ‘अराध की हुकान का भी यही रूप सर्वाधिक उभरा नौदरी तथा ‘पत्नी से पनि की गोदावरी भी इसी अन्तर्गत में पाती

विद्यावती 'निर्मला' की निर्मला तथा सुभा 'बोधान' की योकिन्दी बेबी, 'प्रतिष्ठा' की सुमित्रा 'पद्म' की रत्न 'देवासदन' की सुमन 'कर्मभूमि' की मुन्नी 'रंजभूमि' की इन्दु, 'कुसुम' कहानी की कुसुम (जिसे पठा नहीं गयो था सत्येन्द्र ने विद्वत् माग पर चलने वाली कह दिया है) 'देव्या की लीला 'सोहाय का घर' की सुमित्रा 'निर्वाण' की मर्यादा संध्या (नाटक) की शानी तथा 'बोधान' की सोना धारि ऐसी ही कैफ़ूर तिरस्कार्य हैं जिन्हें विवशताओं को स्वीकार करते हुए उनके सुधार की प्रतीक्षा प्रथम कफ़लान्त पर छोड़ दिया गया है।

५ भाव-परिणीता रूप—इस रूप से हमारा तात्पर्य प्रेमचन्द के उन इने-गिने नारी-पात्रों से है जिनका विवाह सामाजिक रीति रिवाज के अनुसार नहीं धरितु मनोनीत भावनाओं के अनुकूल बनाया गया परस्परकर्षण के कारण हो चुका है। समाज पहले तो इस रूप पर टिप्पणियाँ क्लृप्ता है किन्तु धीरे-धीरे इनकी विवाह-सत्ता को स्वीकार कर लेता है क्योंकि कुछ भी तो इन्होंने समाज से मुक्त नहीं रखा होता। इसमें सन्देह नहीं कि ऐसे नारी-पात्रों को धार्मिक संघर्ष तथा मानविक इन्द्र भेजने पड़ते हैं किन्तु ये इसका कारण समझते हैं तथा परितुष्ट रहने का प्रयत्न करते हैं। चूंकि इन्होंने जीवन से बहुत अनुभव लिये होते हैं, अतः इनके प्रारस भी बायबी तथा सोझने नहीं होते। सम्पूर्ण प्रेमचन्द-साहित्य में 'कायाकल्प' की लीला ही इस दृष्टि से प्रमुप स्थान रखती है।

मातृ-रूप

मातृरूप से तात्पर्य यहाँ केवल पौरुष पुत्रवती-रूप से ही नहीं है धरितु नारी का वह सहज मातृ रूप का रूप है जो किसी भी पुत्र को देख कर मंत्रित हो उठता है। प्रेमचन्द के नारी-पात्रों में तीन प्रकार के मातृ-रूप की धर्म शक्ति हुई है—

➤ सहज बल्लस मातृ-रूप—पुत्र कैसा भी हो इन रूप में स्थान पाने वाली सहज शक्तियाँ उसे चाहती हैं, क्योंकि इन्होंने उसे जन्म दिया होता है रक्त हाथ उठका पालन किया होता है और अपने साथ में उसके वस्त्रित होने की कामना की होती है। यही नहीं इन पात्रों में कुछ ऐसी पुत्रहीना विधवाएँ मातृरूप का शक्तिपूर्ण तथा विनाशपूर्ण भी हैं जिनका बाल्यत्व किसी भी माँ के पुत्र को देख कर लोभ उठता है, 'वह भी किसी का पुत्र है!' 'कायाकल्प' की निर्मला

‘कर्मभूमि’ की सलीमी ‘गबन’ की जूझियो ‘ईलाहा’ कहानी की घसीना ‘माता का हृदय’ की माधवी ‘ममता’ की दुर्दिना ‘मन्दिर’ की सुखिया ‘बेटों वाली बिधवा’ की पुष्पमती ‘सुप्रभा’ की सलीमी ‘बिमाता’ की धम्बा ‘असम्योच्छ’ की पन्ना ‘दूध का दान’ की मृती तथा ‘महावीर’ की कंसासी प्रादि पात्र इसी रूप में समाहत होते हैं ।

२ विशिष्ट मातृ-रूप—इस रूप के अन्तर्गत है माताएँ स्वयं पाती हैं जिन्होंने अर्वाक्यीय पुत्रों से प्रेम करना नहीं सीखा है । अपने सपूतों से ये कर्तव्य चाह्य तथा बेस प्रेम की भाव करती हैं उच्चतुल्य तथा स्वच्छन्द प्रेम प्रसंगों को नहीं । ‘कर्मता’ की भूमिका में सबविवाहित बहूब की माँ कहती है “भी क्याहम कि मरा घब बूनेबुर शरबसे दि ही ताधीरे कि घब पिम्तामे मन बुरपई बर तो हलास परवद” —अर्थात् मेरी इच्छा है कि तू अपने रक्त का एक बूँट मुझे दे ताकि यह बूब जो तूने मेरे स्तन से पिया है तुम्ह पर हलास हो जाये । इन सभी माताओं की लगभग ऐसी ही भाँव है और यदि उसकी पूर्ति नहीं होती तो वे पुत्र का म होना मन्ना मर जाना ही अत्यस्कर समझती हैं । ‘रूपभूमि की बाह्यी ‘बिस्कार’ कहानी की पुष्पारिमा तथा ‘बरदान’ की सुभामा इसी विशिष्ट रूप में पाती हैं ।

३ यथाविद्युत विमाता रूप—बिमाता कभी स्वमाता अथवा सुमाता नहीं होती—मापी के इस इहवाहक रूप को ‘इहवाह कहानी की बेनप्रिया में देखा जा सकता है । प्रेमचन्द ने माता के इस अमानसिक रूप का चित्रण अपनी अनेक कृतियों में तो किया ही नहीं कहानियों में भी बहुत कम किया है ।

राष्ट्रसेविका-रूप

प्रेमचन्द के नाटी-नाचों में राष्ट्र-सेविकाओं के दो रूप उभरे हैं ।

१ कर्मप्रधान राष्ट्रसेविका-रूप—इसके अन्तर्गत है नारी-भाज स्वयं पाते हैं जो केवल सैद्धांतिक दृष्टिकोण से ही नहीं अपितु राष्ट्र-सेवा के व्यावहारिक क्षेत्र में भी पुरणों से पीछे नहीं है और अनेक आतावरण से बाहर आकर उनसे भी सक्रिय सक्रिय योगदान देते हैं । रघुप तथा अतिहास की प्रत्येक सम्भव क्षमता इनमें भरी पड़ी है । केस कहानी की मृदुला इनमें प्रतिनिधि पात्र है । ‘कर्मभूमि’ की सुखिया का भी यही रूप सर्वाधिक उभरा है । इनके प्रतिरिक्त ‘घरघर की बूबान’ की पितैत्र अकसेना ‘अमरपाना’ की कृष्णा गौहरी तथा ‘पत्नी से पति’ की मोरारवी भी इसी रूपवर्ग में पाती हैं ।

२ विधवारप्रधान राष्ट्रसेविका-रूप—इस उपवर्ग के अन्तर्गत उन नाटी नाचों को रखा गया है जिनमें राष्ट्र के प्रति राग उत्साह एवं त्याग की भावना तो विद्यमान है किन्तु गार्हस्थ्य परम्पराओं अथवा धर्म विधायताओं के अन्तर्गत उनका कमराज भर तक ही सीमित रहता है। 'आन' कहानी की धम्मा तथा 'सोहान की साड़ी' की गौरा एमी ही राष्ट्रसेविकाएँ हैं।

विधवा-रूप

प्रेमचन्द के विधवा-नाचों को दो उपवर्गों में विभाजित किया जा सकता है—

१ धाजीवन विधवा-रूप—जो नाटी-नाच जीवन भर वैधव्य भोगते हैं वे इस नाटी-रूप के अन्तर्गत जाते हैं। ये नाटी नाच भी दो प्रकार के हैं—

(अ) प्रौढ़ाएँ—इन नाचों का विषय ही प्रौढ़ावस्था का हुषा है अतः पारंपरिक भूख अथवा पुनर्विवाह का तो प्रश्न ही इनके विषय में नहीं उठता। वे विधवाएँ प्रायः ऊँचे परतों से सम्बन्ध रखने वाली हैं और पति-स्मृति पुत्र प्रेम अथवा अद्वैतमूर्ति धारि जीने के सुसंरक्षित धाधार भी इनके पास विद्यमान हैं। 'कावावर' की नाकीरबरी 'निर्मला' की बत्पाणी तथा 'कर्मभूमि' की रेणुका धारि ऐसी ही विधवाएँ हैं। इनमें 'रत्नभूमि' की अंतक तथा रक्षिया धारि ऐसी भी हैं जो ईर्ष्या एवं मोम को ही जीवन के अद्वैत-रूप में ग्रहण करती हैं।

(ब) वैधवावस्था की लक्ष्मीवन्ताएँ—इनके मामले समस्या है कि वे जियें भी तो बितके लिए। इनमें अविवाहता ऐसी है जिन्हें विधवा होने तक पति के वास्तविक स्वरूप का परिचय तक नहीं मिला होता और ऐसी भी हैं जिनका पति चन्द रोज का मिहमाग रह कर उनमें विधवा को सरा के लिए उक्त अर्थात् स्मृति को छोड़ गया होता है जो कि उनके अर्थात् जीवन का धाधार बनने में असमर्थ रहती है। 'अमावस' की धामनी 'विधवा' की धानी और 'नैऋत्यनीमा' की अनाथनुमाटी ऐसी ही विधवाएँ हैं। बहुत अस्वाभाविक नहीं है कि वे प्रायः दुःखान्त को प्राप्त होती हैं।

२ पुनर्विवाहिता-रूप—इस रूप के अन्तर्गत विधवाओं का 'गौरान' की मुनिया तथा 'रवापी का प्रेम' की धामनी की भाँति अथवा पुनर्विवाह भी हो सकता है तथा 'मुमारी' की मुमारी 'अतस्योक्त' की पुनर्विवाहिता अथवा 'रवामिनी' की लक्ष्मीवन्ता प्यारी तक का परिणयन भी सम्भाव्य है।

कामिनी-रूप

(कामिनी शब्द ही उस रमणी का द्योतक है जिसकी अलक्षणीयता तथा बाह्य लक्षणाओं पर कामभावना एवं तन्मय उत्कण्ठिता राज्य करती है। जैसे तो ऐसी नारी कभी बहुत-कुछ महान् भी हो सकती है किन्तु वृत्तियों की अस्थिरता के कारण उसे अस्थिर कभी नहीं कर पाती। प्रेमचन्द के नारी-पात्रों में दो प्रकार से कामिनी-रूप को देखा जा सकता है—

१ पाश्चात्य अथवा पाश्चात्य सम्प्रदाय से प्रभावित नारी रूप— नारी के इस लयात्मित सम्बन्धीय साकार लक्षण-स्वीते बाहुर से भङ्गीने तथा भीतर से जोसने—बीसवीं शताब्दी के फलानेवम रूप के अन्तर्गत 'दो सखियाँ' की बहना 'वर्मसंघट' की कामिनी 'हंसी' की हीनेन 'उम्माद' की खनी 'बिनोद' की कुसी तथा 'गोदान' की सरोज आदि नारी-पात्र आते हैं।

२ उत्कट कामपीडिता-रूप—'ज्वालामुखी' की सुन्दरी तथा 'नया बिकानेर' की सीता का तो अन्तिम प्रमाण तक उत्कट कामपीडिताओं का-सा ही रहता है। सम्पूर्ण प्रेमचन्द-साहित्य में वही दो पात्र अथवाद-स्वरूप में चित्रित हुए हैं।

धूप—'बरदान' की शिवली तथा 'कायाकल्प' की रमणा आदि ममिबियाँ 'निर्मला' की मुनी तथा 'कायाकल्प' की सुजराती आदि साधारण सेविकाएँ लक्ष्मण की रानी 'धामुपल' की शीतला 'मरक का मार्ग' की प्रधान पत्नी 'गोदान' की मोहरी तथा 'अनासदन' की घोली आदि विद्वत् पत्नियाँ 'सेवासदन' की जोहराबाग महसूबबाग सुम्बरबाई रामप्यारी 'बेव्या' की मावली तथा 'गदब' की जोह्य आदि सुभारोमुखी बेव्याएँ एवं 'गोदान' की सीतल पुवली आदि प्रसंगपर्यन्त आगत नारी-पात्र अत्यन्त पीछे पात्रों की श्रेणी में आते हैं। प्रेमचन्द की नारी-जातना के विकास में इनका विशेष महत्त्व नहीं है।

प्रेमचन्द के विशिष्ट नारी-पात्रों का चरित्र-चित्रण

(क) प्रेमिका-रूप

प्रेमा

यद्यपि 'प्रतिज्ञा' उपन्यास के नारी-पात्रों में से सुमित्रा ने ही अधिकतम आलोचक-दृष्टियों को आकर्षित किया है तथापि इसमें संदेह नहीं कि प्रेमचन्द की नारी भावना के अनुकूल आदर्शतम और पात्र-विकास की दृष्टि से सर्वाधिक विकसलशील पात्र यहाँ वही प्रेमा है जिसके नाम पर ही उपन्यास का पहला नामकरण हुआ था। सुमित्रा और पूछी में तो नारी जीवन की एकान्ती प्रतिबन्धि हुई है। एक में मान ही मान और संश्लेषित निरिच्छता है तो दूसरी में स्वयमेव कर्म की फिस्सलनों के सुरक्षित बंध निकलने की जानक्य समता नहीं है। प्रेमा ही एक ऐसा पात्र है जिस में यति है संघर्ष है और जीवन के सम कीर्ति की व्यापक समता विद्यमान है।

प्रेमा मूलतः प्रेमिका ही है। अपनी बीबी की मृत्यु के उपरान्त सम्भवतः उसके पूर्व ही से वह अमृतदास की ओर आकृष्ट है। अमृतदास के मित्र बलनाथ के उसके विवाह की बन्धी अमृतदास की विवाहितत्वता में भी बन्धी की ओर यह अत्यन्त स्वाभाविक था कि उसकी दृष्टि उस ओर केन्द्रित होती किन्तु ऐसा नहीं हुआ। विदुर अमृतदास ही जब उसके दृष्टि-विन्दु है और जहाँ के साथ उनका क्रौमल पत्र-व्यवहार भी चलता है। प्रेमिका के साथ-साथ ही वह उनकी पंक्तिर भी बन जाती है। पर सहाय्य में विवाह होने की संघारिमा ही ही रही होती है कि मायुके और आशंकाही अमृतदास किसी समाननुपारक की बन्धुता के प्रभाव-स्वरूप सहसा किसी विधवा से विवाह करने की प्रतिज्ञा से लेते हैं। 'प्रेमा किन्ती विचारशील है यह उन्हें मान्य था। उनके सरसाहल का समाचार सुन कर वह उनका विरस्कार नहीं बलितु और भी सम्मान करेगी यह भी उन्हें शाय था। उपर प्रेमा का हृदय काँप उठता है। "तीन साल अमृतदास को अपने हृदय-मन्दिर में स्थापित करके वह पूजा करती बनी माई थी उस मूर्ति को उसके हृदय से कौन निदान सरसा था!" किन्तु उसे मानना ही पड़ता है कि उसके मरणान् सती के मरणान् है और बहना ही पड़ता है

“नहीं यन्मा भी आपके वरों पढ़ी हैं आप उनसे कुछ नहीं कहियेगा। उन्होंने हमारी बहनों की खातिर तो यह प्रतिज्ञा की है। हमारे यहाँ कितने ऐसे पुत्र हैं, जो इतनी बीरता बिखा सकें? मैं इस युग कार्य में बाधक न बनूँगी। परिणाम-स्वरूप उसकी प्रेम भावना में त्याग भावना का समावेश होता है और उसका सप भीषण उसी प्रेम के कष्टकित्त मार्ग में सेवा-स्नेह से त्याग-रूपी शीपक को दामोदित करने में लगा रहता है।

त्यागिनी प्रेमा कुल-श्रमा पर मर-मिटने वाली सभी धार्य रमली है। “उसकी चतती तो वह अविवाहिता ही रहना पसन्द करती किन्तु कुल-प्रतिष्ठा भी उससे त्याग की माँग करती है। ऐसी अवस्था में उसके लिए सभी पुत्र्य समान के वह किसी क साथ भी जीवन का निर्वाह कर सकती थी।” परिणाम-स्वरूप दाननाथ से उसका विवाह हो जाता है।

प्रेमा विलासिनी नहीं है। वह धार्य हिन्दू पत्नी है। पति क बर बाकर वह पति की हो जाती है। “मम धमृतराव उसके लिए कबल एक स्वप्न की भाँति थे जो उसने कभी देखा था।” पति को कर्त्तव्य ही नहीं धविनु प्रेम भी देती है। पृहस्वी की अवस्था में उसके प्रापमन से बहार था जाती है। बेचक दामनाथ बनी नहीं है किन्तु प्रेमा को बन से मोह नहीं है। बने हुए बने वह घास के हाप में रख देती है जिससे उस वृद्धा को पृहस्वामिनी होने का धान्य तो मिसता ही है। अपनी सुसुहिणी बहू पर नाब भी कम नहीं होता।

प्रेमा का सतीत्व बर में है किन्तु उसकी करणा उसकी कोमलता उसकी नमता और उसकी सेवा-भावना बर से बाहर भी है। मम पर लड़ी होकर वह विद्युत् जनता में बनिता-भवन जोलने का समर्थन करती है। एक दर्शक द्वारा जब व्यंग्य होता है कि दाननाथ नी तो इसके विरोधी हैं तो वह कहती है “पिता हो पति हो दबबा भाई हो मरि उसने इस समा में बिघ्न डालने का कोई प्रयत्न किया है तो मैं उसके इस काम को हेय समझती हूँ।” वह दिखा देती है कि सार्वजनिक परमार्थ के लिए व्यक्तिगत स्वार्थों को ताक पर रख देना ही श्रेयस्कर होता है।

यह सब कुछ ता है किन्तु प्रेमा के व्यक्तिगत जीवन में उद्वेग भी कम नहीं। दाननाथ को जब भी यही शंका बनी हुई थी कि प्रेमा को धमृतराय से प्रेम है। “बार-बार प्रेमा को उनकी यह सावना चुमती है। वे बाँतें जो हरय को मचते रहने पर भी उसके मुख से न निकलने पाती थीं—कर्त्तव्य और शंका जिन्हें धमृतर ही बबा देती थीं—धामू बन कर निकल पाती थीं। किन्तु वह त्याग एवं प्रतीक्षा का दामन नहीं छोड़ती। और एक दिन जब

दाननाथ धाकर उससे कहते हैं 'तुज्जाने मेरी बुद्धि पर क्यों ऐसा पर्व पड़ गया कि अपने धर्म्य पित्र पर ऐसे सम्बन्ध करने लगी' तो प्रेमा का मनोमासिन्धु कह जाता है। वह जान जाती है कि त्याग ही वह धर्म है जो हृदय पर विजय पा सकती है। जब तक प्रेमा ने दाननाथ का जो स्वस्म देखा था वह एक इच्छा पूर्ण विचारहीन कुटिल मनुष्य का था। मगर वह चरित्र देख कर भी वह दाननाथ का धारण करती थी तो इसका कारण वह प्रेम का जो दाननाथ को उससे था। धारण उसने उनके कुछ अन्तःकरण की भक्तक बेसी। वह मुँह से कुछ न बोली पर उसका एक-एक शब्द पठि को घ्राणीबन्ध से रहा था।

प्रेमा जब धारण भी है सम्पुष्ट भी किन्तु एक रहस्य का घोर प्रतीक तक उसे नहीं मिला। वह यह जान गई है कि प्रेम का धर्म ही पति धर्म है और यह भी कि प्रेम को धर्म त्याग और सेवा ही परिपुष्ट करती है किन्तु धर्मतराय से प्रेमका कौन-सा नाता है—यह एक रहस्य है। इस रहस्य में बहुत परिचयता है फिर भी वह बार-बार उसे सोचता है। यह धीरे धीरे कि धर्मतराय अपनी स्वाभाविक त्यागागुणप्रसिद्ध भावना के ही कारण दाननाथ की पत्नी हुई प्रतिष्ठ को वापस माने के लिए उस पर सख्त लिखते हैं, परन्तु उस सख्त का एक-एक अक्षर प्रेमा के हृदय में ऐसी कल्पनाओं को क्यों उबारता है जिन्हें वह चाहती है कि न उठे। वह पत्र के टुकड़े-टुकड़े क्यों करती है और क्यों सोचती है कि 'जो पत्र पत्नी को पाल के नीचे बिखरे हुए दानों की घोर से जाव उनका उपद्रव जाना ही धर्म्य है।' अस्तु प्रेमा यह विस्मृत कर देना चाहती है कि बिनाइ से पूर्व उसने कोई सुहाना स्वप्न देखा था। किन्तु अब तो वह है कि उसी के सहारे ही उनका पतिप्रेम बनपता है, उसी की प्रेरणा से ही वह त्याग एवं सेवा की घोर उन्मुख होती है और उसी के आशोक में ही वह कर्तव्य पत्र पर मगलक पत्रों से जतने में लयबद्ध होती है। कहने का तात्पर्य यही है कि प्रेमा मूलतः प्रेमिका ही है और उसके चरित्र की घोर व्यापकता इसी एक भावना का प्रसार-भाव है। इस प्रकार के चित्रण में सख्त की धार्मिक प्रवृत्तता तो कई स्थानों पर स्पष्ट दीख जाती है किन्तु इसकी विशेषता यह है कि इसी के द्वारा प्रेमा विरजन करीना मैना और मनोरमा के चरित्रों में एक विभाग का अद्भुत तात्पर्य बँप जाता है।

विरजन

‘प्रतिज्ञा की प्रमा की क्विण् परिष्कृति ही ‘विरजन’ की विरजन है। प्रेमचन्द की तथिक भावनाओं को यहाँ पहुँच कर मनोविज्ञान का पुनः मिलने लगता है साथ ही स्त्री-धिसा-सम्बन्धी तत्कालीन युग की भाँव भी यहाँ प्रतिबिम्बित हुई है।

लैंगिक से ही विरजन में सेवा-संस्कार विद्यमान है। अपने सेलकूत के साथी प्रदान की सगु माता की सेवा अत्यन्त उन्मत्ता से वह उस व्यवस्था में करती है जबकि उसे ‘उठ को ओकर मोह म उठा कर पर म आठा है। तभी की सेवा भावना ही एक भूत के रूप में प्राचीन उस पर संचार रहती है। साथ ही विद्या की घोर भी वह प्रथम से ही आकृष्ट है। एक नन्हें पत्र में अपने पिता की को वह लिखती है ‘मनुष्य को चाहिए कि विद्या मन-मन से एकत्रित करे। विद्या से सब कुछ दूर हो जाते हैं। एक तीमरी भावना की कोमलता भी बचपन से ही विरजन के मन में पर किने हुए है—प्रताप को वह बहुत चाहती है। उसे नहीं पता, वाचना क्या होती है, उसे अभी वह भी पूर्णतः मात नहीं कि विवाह क बन्धन कैस होते हैं किन्तु वह सोचती प्रवश्य है कि ‘जब प्रदान से मेरा विवाह हो जायेगा तबे धान्य से रहूँगी’। इन तीनों भावनाओं का धान्य तथा परिस्थितियों के अनुसार प्रसार ही है विरजन का चरित्र।

विरजन की सेवा-भावना ही धान्य जीवन के प्रति उस व्यापक सहानुभूति देती है। वहाँ धान्य जीवन की निरक्षरता एवं प्राकृतिक शोभा उस आकृष्ट करती है वहाँ वास्तविकता को जान कर उसे कुछ भी होता है कि ‘क्या मुनती की घोर क्या देखती है। दूरे दूरे फूम के भोजन मिट्टी की बीमारों, बरों के सामने झूड़-करकट के बड़-बड़े डेर कीचड़ में गिपटी हुई भैंसें बुल गायें—ये सब दृश्य देख कर भी चाहता है कि नहीं बसो बाल। मनुष्यों को देखो तो उनकी सोचनीय क्या है। हड़िनी निकली हुई हैं, “वे विपति की मूर्तियाँ और दृष्टता के बीषित विष हैं। किनी के घरीर पर एक बछ्वा बस नहीं है और कंचे साम्यहीन कि रात-दिन पसीना बहाने पर भी कसो भरपेट रोटियाँ नहीं मिलती।” धान्य सेवा-संस्कारों के कारण ही वह मुसीबा मावरी की घोर आकृष्ट होती है और उसके चरित्र में त्याग विरवास तथा सेवा का संचार करती है इन्हीं के कारण बालाजी के प्रति उसकी सदा प्रभावशाली करिता के रूप में उमड़ पड़ती है और मावरी से ही सेवाव्यपारिणी को उनके उपहार के रूप में तैयार करती है इन्हीं के कारण वह दूधल दूध-बपु की सफलता

को प्राप्त होती है और इन्हीं के कारण ही उसमें उठ सहनशीलता का संघा होता है जिसके सहारे वह एक कुलीन विधवा का धारण जीवन-यापन करती है।

विरजन के मन में जब प्रताप से विवाह करने की इच्छा उठी थी उस सामान्य सम्बन्ध उसके समस्त स्पष्ट नहीं था किन्तु जब जब कि उसकी धारणा भी वह नहीं रही और प्रताप से नहीं अपितु कमलाचरण जैसे विविष्ट व्यक्ति से उठका विवाह हो जाता है तो उसे 'स्मरण हो जाता है कि एक मपराम मुम्हसे ऐसा हुआ है जिसकी कालिमा को मैं मिटा नहीं सकती।' जब तक वह सुखदात न आयी थी तब तक उसकी दृष्टि में हिन्दू पतिव्रता के कर्तव्य और धारण का कोई नियम स्मरण न हुआ था किन्तु जब उसे "जात हुआ कि मैं मौन हूँ और मेरा क्या कर्तव्य है मेरा क्या धर्म है और क्या उसके निर्वाह की रीति है। यह सोचकर विरजन प्रेम की पहली बातों को स्वयं मान कर कर्तव्य को उससे ऊपर रख कर देखती है और धीरे-धीरे अपनी सम्पूर्ण मातृ नामों को भी बलि ही की धोर उन्मुक्त करती है। प्रताप के प्रति प्रेम से जो प्रकृत हैवना उसे मिलती है उसी के अन्तराल से वह स्वयं की प्रेरणा ग्रहण करती हुई पूर्ण पतिव्रता बन जाती है। वह जानती है कि उसके पति ने ही घर में खोरी की है किन्तु महाराजिन द्वारा वह उसका विद्योत नहीं पिटने देती प्रेम-शक्ति द्वारा ही वह पति के बहुल-से दुर्मन्तों का निवारण करती है। उसके प्रेम की विशेषता यही है कि वह धर्म और कर्तव्य की नींव पर स्थित है। 'एक (कमला) प्रेम का दास है तो दूसरी (विरजन) कर्तव्य की दासी है।' किन्तु विरजन के प्रेम का दूसरा पक्ष भी है जो इतना पावन है कि पक्ष पर उठका कोई बंध ही नहीं चलता। प्रताप उससे क्या इष्ट होता है मानो जीवन ही उससे उठ जाता है। वह प्रताप की महा उँचा उठते ही देखना चाहती है और निस्संदेह प्रताप के चरित्रोत्थान के घूम में विरजन का प्रेम ही विद्यमान है। वस्तुतः विरजन प्रताप के प्रति भी उठती ही मन्वी है जितनी कि पति की और पतिव्रता और विरजन के चरित्र की गरिमा भी इसी में निहित है।

विधवा विरजन वीरव्य के उच्छ्वसन धारण की संघामे रगती है। पति के बोधे ही विधवा के बाह्य जब दस्तुर भी चल बैठे हैं तो उसे ऐसे अर्थ भी सुनने पड़ते हैं कि 'तुम्हारे बिछने रूप ने मुझे छत्र लिया मैं क्या जानती थी कि तुम्हारे चरण इनने धनुष हैं।' किन्तु विरजन को तो मात्रापूर्व सह कर भी जाना है। पति की मातृ नामाजी के प्रति भद्रा प्रवृत्ता करिष्ठा की वरुणा-स्वामी उसे बही पता कि सीनों में मौन-ही शक्ति उसके प्राणों को पामे हुए है। उठे तो

इतना ही पता है कि "अपने पीसे बदन पर एक ऐसा ठेक रहना है। इष्टि में एक पवित्रता मरी रहनी है जो दुरबेष्टाओं को जण-मान में भस्म कर दे। प्रताप के लिए, मावधी के लिए अथवा किसी भी अन्व के लिए शुभकामनाओं अथवा सद्प्रेरणाओं के अतिरिक्त और उसके पास है ही क्या !

विरजन 'विदुषी कृष्णानी' भी है। मन का बोझ हल्का करने के लिए उसकी अभिव्यक्ति अनिर्वास्य हो जाती है। विरजन को वह आचार कविता के रूप में मिलता है। "अस्य कवियों के मनों में मित्रों की बाह-बाह और काव्य-प्रेमियों के छात्रुवाद से उत्साह पैदा होता है पर विरजन अपनी बुद्ध-रूपा अपने ही मन को मुनाती है।" उसकी कविता हृदय की सच्ची अनुभूतियों की स्वास्त मुखाय अभिव्यक्ति है जिसमें ऊँचे विचार हैं 'भाषा' है भावोत्कर्ष है और 'एक राज्य में नवविकसित पुष्पों की शोभा और हिमकणों की शीतलता विद्यमान है जिसके सम्पर्क में घाटे ही हृदय के दुःख की एक बार और प्रेम रहस्य की एक कला स्पष्ट हो जाती है। उसकी कविता में लोक-संयम की भावना का समावेश है।

घार्ष्णिहिन्नु नारी होते हुए भी विरजन को अन्ध-मरम्भराशों से मोह नहीं है। धाम-जीवन की प्रकृति में अन्धविश्वासों को वह एक बहुत बड़ी बाधा समझती है। धाम-जीवन की प्रकृति में अन्धविश्वासों को वह एक बहुत बड़ी बाधा समझती है। "कैसी मूर्खता है ! कैसी निष्पत्ता शक्ति है ! वह सोचती है 'ये भावनाएँ इनके हृदय पर बध्नीक हो चुकी हैं। बालक बीमार हुआ कि भूत की पूजा होने लगी। बेत जलियाँ में भूत का घायल प्याह आदि में भूत का माव जहाँ देखिये भूत ही भूत बीखते हैं। यहाँ न बेबी है न देवता भूतों का ही छात्रान्य है। यमराज यहाँ चरण नहीं रखते बत ही बीजहरण करत हैं। इन भावों का किस प्रकार मुपार हो ?"

इस प्रकार विरजन का चरित्र मानवीय मूल्यों पर आधारित है किन्तु साथ ही युग-परिस्थितियों का बोझ-बहुत संकल करने का प्रयत्न भी प्रमचन्द ने यहाँ किया है। सेवा रयाव प्रम और पातिष्ठत मानवीय मुख्य हैं तो स्त्री-विद्यया की आवश्यकता अथवा-जीवन की चरित्रता तथा अन्धविश्वासों का सम्भूजन तत्कालीन-समरपाएँ हैं।

सोक्रिया

'रूपभूमि' की निरंमता में कवितामयी सोफी घार्ष्णि के आकर्षक क्यारों में मानवता की दिशा में प्रवाहित होने वाली रसबन्धी है। सोक्रिया शब्द का

साधारणिक धर्म हेत्वाभास से घपना ब्यापुक्त होने से सम्बन्ध हो सकता है किन्तु नामकरण म गृहानुरूपता प्रेमचन्द के नामों में प्रायः नहीं है। मध्यधर्म एवं शारीक समाज नहीं सोचते यह सब। युग-धर्म ही प्रेमचन्द की कृतियों में बहुत प्रतिबिम्बित हुआ है। स्वयं प्रेमचन्द का कथन है तथा बहुत सम्भव भी है कि सोक्रिया की प्रेरणा उन्हें एनी बेसट से मिली ही।

सोक्रिया के चरित्र के विषय में बहुत मत भेद है जिसका कारण पूर्वाग्रह अधिक सहृदयता मूल और गवेषणात्मक विचार-शक्ति की निष्पक्षता मूलभूत है। यदि उसकी स्वतन्त्र सत्ता का विनय का स्त्री-संस्करण^१ मात्र बहू कर प्रत्याख्यान कर दिया गया है तो प्रेमचन्द के नारी-नामों में 'उर्ध्वविक्रम स्पष्ट एवं रोचक'^२ तथा 'आर्य ब्राह्मिका'^३ भी सोझी को ही ठहराया गया है। चरित्राङ्गल में जब इन भेदक की कारणों उसकी अनुकृतियों उसकी परिस्थितियों एवं विमल-विशेषताओं से बिरक्त होकर अपने ही मान-बन्धों के आधार पर पात्र के गुण-दोषों का विशेष-विश्लेषण करने पाते हैं तब उसका परिणाम हमारी अपनी भावनाओं का ही उपस्थापन-मात्र होता है—उसमें वस्तुपरकता नहीं रह जाती।

इसमें कोई संशय नहीं कि रंगभूमि में सोक्रिया की स्वतन्त्र सत्ता की छाप विद्यमान है। विनय की प्रतिक्रिया-मात्र बहू नहीं है। इतना ही कहा जा सकता है कि कल्पना प्रचलता की दृष्टि से प्रभु सबक से साम्य होने पर भी उसकी चरित्रिक विशेषताएँ धर्म पात्रों की धर्मना विनय के बहुत-बहुत समीप हैं। कारण यह है कि दोनों का दृष्टिकोण नारी-मुक्ति मानवतावादी है। धर्म हो या प्रेम समाज हो या व्यक्ति—सभी के प्रति सोझी की अपनी माय्यताएँ हैं जो सभी प्रकार से प्रेमचन्द ही की भाँति व्यापक है। विनय के सम्पर्क में जाने से पूर्व भी सोक्रिया मूरदास के प्रति बँसी ही उदानुभूति रखती है जिसकी कि बाद में। तब भी उसे अहिंसा एवं मानवीय सममानता दुःखर प्रतीत होते हैं उसकी धर्म-भुक्ति की धारणा तब भी तर्क-भूम्य नहीं थी धारण-स्वतन्त्र तब भी बहू इनकी थी कि इसक हेतु पर भी पुटन ही उसे सहा नहीं होती। विनय-विमल से पूर्व भी वेद प्रेम क विहाग म योगदान की उसकी दृष्टि बाधुन होती है और इन्हीं परिस्थितियों म घनाबास ही जब बहू विनय क सम्पर्क में जाती है

१ मध्यधर्म मूल रंगभूमि पर कर दृष्टि (विमल)

२ अत्रारवधाय हिन्दी उन्मत्त-नाटिका

३ विमलचन्द्र ओरंगर हिन्दी-उन्मत्त

प्रेमबन्ध क विशिष्ट नारी-प्राज्ञा का करिज-विजय

तो स्वाभाविक साम्य ही दोनों को बाँध लेता है। प्रेम में जो विषयासक्ति निहित होती है सोझी के प्रेम में प्रारम्भिक आकर्षण का कारण वह नहीं है। विनय से मिलने से पूर्व भी वह विर से पाँच तक बेतना-ही-बेतना की पद का कहीं आमास तक न बा और प्रसन्न तक उपन्यास की यह बेतना पाठक के ऊपर छापी रहती है। हृदय-समपण उठने किया है प्रारम्भ-स्वातन्त्र्य नहीं। विनय की भर्त्सना भी नहीं करती है। बस्तुतः विनय मूढा है तो सोफो प्यासी है—यही साम्य और यही प्रसन्न है दोनों में।

सोझिया के करिज का अत्यन्त सबल पक्ष है उसका मानववादी दृष्टिभोग का यत्न-साध्य न होकर बिबद्ध साम्यजन एवं समकामीन विनय परिस्थितियों के कारण स्वयमेव ही उसके सहज-सरस व्यक्तित्व में संस्कार-सा बन गया है। मानवतावादी का दावा मौलिकता का नहीं होता। मानव-कर्मण्य एवं मानवीय समानता के हेतु वह बिबद्ध-नर की सञ्ज्ञाश्रयों को विराट स्तर पर समझ देकरना चाहता है। हिंसात्मक शाक्तों को वह हैय समझता है। प्राणा की ओर से बाँधी हुई ऐश्वर्य की बल्पना उसे अनुपाहित करती रहती है। पारश्चात्य मानवतावाद पहले मानसिक नहीं था। पापीकी ने इन्कर प्रभ्यात्म का पुट देकर उसका मरकार किया। प्राभ्यात्मिक मानवतावाद के इसी पुन की उपज है सोझिया। उसके व्यक्तित्व में साम्बन्ध है बचन और कर्म का धारसं और यथार्थ का शरीर और प्राण का। व्यक्तित्व रूप में उसने हृदय और बुद्धि में सामंभस्व रखने का भी भरसक प्रयत्न किया है। धर्म का प्रश्न उठता है तो सोझी सोचती है कि जो सत्य है वह शाश्वत है प्रत्येक समय प्रत्येक स्थान पर समान है। ईश्वर स्वयं सत्य-स्वरूप है। एक ही प्रात्मतन्त्र जब समस्त प्रह्लाद में अनुसूत है तो प्राणि-जोक से असमानता क्यों ईसाई ईसाई में अन्तर क्यों ईसाई-हिन्दू में अन्तर क्यों और हिन्दू हिन्दू में अन्तर क्यों? जब तो प्रत्येक का कर्त्तव्य है करलीय है। और सोझिया की जाठ होता है कि असमानता की इन प्राचीनों का कारण साम्प्रदायिकता है धर्म-संकीर्णता है। कट्टर जन्मिदियों के धर्मविद्वानों ने महात्माओं के उपदेशों में घटंगत व्याप्यार्ण मर दी है। इसलिये 'सोझिया सत्यानन्द के निरूपण में सर्वत्र रत रहती है। धर्म-तरणों को बुद्धि की कसौटी पर कसना उसका स्वाभाविक पुण्य है और जब तक ठरु-बुद्धि स्वीकार न करे वह केवल धर्म-धर्मों के प्राधार पर किसी सिद्धान्त को नहीं मान सकती है। स्वयं कहती है वह 'महात्मा ईसा के प्रति मेरे मूँ से कोई अनुचित पद नहीं निजसा' मैं उन्हें धर्म-स्याय और सञ्चार का प्रवतार समझती हूँ लेकिन उनके प्रति भय रक्षने का यह धायय नहीं है कि नलों न

उनके उपदेशों में जो धसंवत बातें भर भी हैं या उनके नाम से जो विद्वृत्तियाँ प्रसिद्ध कर रखी हैं, उन पर भी ईमान साठें। कृष्ण की नीलाघों के प्रति जिस उम मावना से वह घाहृष्ट होती है वहाँ भी व्यक्तिगत सीमा से वह ऊपर उठी रहती है। 'ईसा धीर कृष्ण मे कितमी समानता है, पर उनके अनुचरों में ऐसी विभिन्नता' — ऐसा सोच कर ही वह उस हिन्दुत्व की सराहना करती है कामना करती है जिसमें व्यापकत्व है। कृष्ण की गोपिकाओं के प्रसंग का वही विचार निर्मल एवं घाहृणाकारि रूप उठे मान्य है। प्रेमचन्द के समय कदाचित् 'शीता-रहस्य' से पूर्व की गीतासम्बन्धी निवृत्तिमूलक व्याख्याओं का दुष्परिणाम रहा होना धीर रही होनी उन भारतीय ईसाइयों की घसकन भाषा जो धान्त दुष्प्रभाव के कारण न हजर के रहे वे धीर न उपर ही के।

धर्म का उपयुक्त स्वरूप ही सोशियल के प्रेम-भाव की पृष्ठभूमि है। सोशियल का प्रेम भारतीय समाज की प्रत्येक छत को पूरा न करते हुए भी मूलतः भारतीय ही है। सृष्टि की इस बिरलतन एवं प्रादि-वाक्ति की स्वाभाविक स्वच्छन्दता को भारत धारम्भ ने ही धारण के साथे मे डालता धामा है। हमारे यहाँ प्रेम को एक प्रकार से सम्मूलित मानसिक सम्बन्ध माना गया है भौतिक व्यापार नहीं। वही कारण है कि समाज से दूर वहाँ प्रणय धीर परिणय की पूषक-मुषक बनाना में भी व्यथस्या नहीं की गई। इन प्रकार सारीरिक भूष को नैतिक धाररल दे दिया गया है। प्रणय व्यक्तित्व धर्म है धीर परिणय सामाजिक। सोशियल के जीवन में एसा लो कुष भी नहीं है जिस पर साधारण भारतीय समाज परिणय धसना प्रणय भी मुहर बना सके— किन्तु प्रेमचन्द ने प्रणय को पालीबता से ऊपर उठाने का भरतक प्रयत्न किया है धीर वह बलाध्य भी है। विनय के प्रति सोशियल का प्रेम धनिन्द है धकमुष है। उठे धपनी धाषा धपने विश्वास एवं धारण के धनुकुल पात्र धिलने पर जिस मधुर मावना का प्रस्फुरण होना है उनक प्रति वह सज्जित नहीं है। "वह मुझे धपने प्रम के योग्य धनम्भे हैं यह मेरे लिए गौरव की बात है — सोश्री की इस धारणा के प्रति प्रनु सैषक द्वारा धर्म-धिरूप की धारणका उठायी जाती है लो वद ठक देती है कि 'ये विचार उन लोनों के लिए हैं जिनके प्रम बासता से मुक्त होव है। प्रेम के लिए धर्म (बाति) की विभिन्नता कोई बन्धन नहीं है ऐसी बाधार्य उस मनोभाव के लिए है जिसका धन्त विधाह है। बलुत धाम न प्रत्येक धानुक धारणकारी प्रेमी वही सोचता है कि प्रेम का धर्म विधाह नहीं। लोनी के धनुनार की प्रेम का धन्त विधाह नहीं किन्तु उठे कटु धनुनव भी हृषा है कि प्रम की धरम सीमा त्याग एवं धनिराग होवे हुए भी उठनी प्राप्ति का

प्रमत्त के विघटित तारी-पारों का चरित्र-चित्रण

सफ़्त माध्यम बिबाह ही है इसके बिना जीवन-क्षेत्र में सफलता हाथ नगती है और सफ़्त के सफ़्त बलिदान को दबोचित माध्यमता भी नहीं मिलती। रानी को बचन देकर भी सोफ़ी व्हाक से बिबाह क्यों नहीं कर पाती? याव मात्र के सहारे ही बिन्धी कटने की भाषा होती तो क्यों लेती है गपा की परण बह? इसका समाधान तो सोफ़िया के पास पहले ही था। 'साहू' के बड़ा भोला जाया। पहले के समझ या उनसे केवल प्राध्यात्मिक प्रेम बर्कपी। निस्सन्देह सोफ़ी के उपभेद में समय से बिबाह की सुखर कल्पना बिधमान है 'केवल' के प्रतिरिक्त 'बुद्ध और' की भी बाहू है उसे। किन्तु सोफ़िया कल्पनाबीबी इतनी है कि रानी द्वारा बिबाह की अनुमति मिल जाने पर भी प्रजात भय की धारणा उसे निरन्तर प्रताडित करती रहती है। एक पचास पर भी मूल कर बार-बार बह सोचती है 'यवा सत्य की भीमांसा यही है' और इसी प्रकार बह मस्तिष्क हो जाती है डोल जाती है डोलती रहती है—वहाँ तक कि पंथी पिजरे से उड़ जाता है और पिजरे का प्रबलत्व भी सोफ़ी नहीं ले पाती। बस्तुतः प्रेमबन्ध के सोफ़ी के चरित्र के माध्यम से यह व्यक्त किया है कि बादीयता बिबाह में बाधक नहीं होती बिबाह ही प्रेम के सत्य की भीमांसा नहीं है किन्तु सत्य प्राप्ति का पूर्ण एव प्रबुद्ध माध्यम प्रबन्ध है। और यह निष्कर्ष भारतीय सस्कृति का बही प्रकृतिसूत्रक मार्ग है जहाँ घाट प्रकार के बिबाहों में बाहू बिबाह को ही सत्य प्राप्ति का ध्यतम साधन स्वीकार किया गया है।

यह तो या एक तन्त्र का स्पष्टीकरण परन्तु सोफ़िया के प्रेम का महत्त्व बिचस्वियायी इसलिए है कि बिनय से न सही और किसी के साथ भी तो उसका बिबाह सम्भव नहीं होता। उसने सिद्ध किया है हृदयों का सम्बन्ध प्रास्तरिक होता है—प्रम शरीर का नहीं मन का धर्म है और बाहू तरकरणों का व्यापान बही प्रसमर्थ रहता है स्वयं मृत्यु भी उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकती। यह भी कि प्रम की सीमा संकुचित नहीं है उसका मन्व बिपन-बाधना एव व्यस्ति पर सम्बन्धों से बहुत परे स्थान एव बलिदान है। प्रेम न मस्ती है और न एक गपा ही। बर्तव्य की सबहेतना बह नहीं करता। मार्ग से भटकने पर बिबेक द्वारा उसे सुमार्ग पर लाया जाता है बाहू प्रेम-याव की मर्त्यता ही क्यों न करती पड़े।

किन्तु सोफ़िया के चरित्र-बिकास में उनकी प्रणय भावना का महत्त्व उस दृष्टि से और भी ध्यिक है कि इसी सघट्ट प्रेरणा ने उसके पन्नापणों एव जीवन की कल्पनाओं को प्रम की तपन के माध्यम से कर्म-रूप दिया है।

वैयक्तिक प्रेम को उसने सामाजिक मानवता में उँडेसा है। उसके जीवन में सेवा का क्रियात्मक रूप में सूत्रपात हुआ है। धन्यवा वह कल्पना की पुतली मात्र बनी रहती। उसका प्रेम ही सेवाधर्म का रूप होता है। बाबाओं से वह सब भयभीत नहीं होती। वह मुक्त कण्ठ से कहती है 'बिनय में विपत्ति की ही मूली हूँ।' जीवन उसके लिए नाम है घाबरने प्राप्ति के लिए संघर्ष-समूह का आनन्द का पर्याय नहीं। उसका कथन है, "मुझे उस वस्तु से घृणा है जिसे साधारण लोग सफल जीवन कहते हैं। वह कहती है 'मैं जिन महारमाओं को संसार में सम्भ्रंष्ट समझती हूँ उनके जीवन सफल न थे।' उसका तो विश्वास है कि सेवा निमित्त भाव से ही की जानी चाहिए। साहित्य के प्रमोदन सम्बन्धी विवाद में भी इसी भावना के कारण वह लोक-मनस को प्राशङ्कित करती है। वह अपने कविप्राता प्रमुखाक से कहती है "लेकिन तुम्हारा कर्तव्य है कि अपनी इस प्रतीकिक शक्ति को स्वदेश-वस्तुओं के हित में लगाओ। धन नति की दृष्टि में शू नार और प्रेम का एक प्रसापने की जरूरत नहीं होती इसे तुम भी स्वीकार करो।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि माफी के चरित्र में उसकी मानवतावादी भावनाओं को विकास का अवनत बिनय के प्रति उसके आकर्षण के कारण ही प्राप्त होता है। किन्तु डा. देवराज ने यहाँ एक और समस्या उठाई है। उनका कथन है "हमारे उपन्यास में बहुत-सी अपरिपक्वता आदर्शवाद के नाम पर भी पायी रही है।" 'रंगभूमि' में बिनय और साश्विना के प्रेम का चित्रण कुछ ऐसी ही बीज है— संकेत होने लगता है कि प्रेमचन्द को नर-नारी के तीव्र प्रेम का अनुभव हुआ था या नहीं। यामे चल कर लिखते हैं, 'यदि नैतिकता प्रसंगी जीवन का नियम है—स्वयं और समाज के लिए जीवन-समृद्धि का जरूरत है— तो उसकी महत्ता सिद्ध करने के लिए जीवन के संघर्ष को झुठलाया जाकर नहीं होना चाहिए। हम दृष्टि से टास्टराय की 'एना' 'रंगभूमि' की गोष्टियाँ से क्या प्रसन्निष्णु पायी है। साधारण दृष्टि से परिचारिणी होते हुए भी एना हमारी कृतियों का जितना परिष्कार कर सकती है उतना साश्विना नहीं।' देवराजजी का मत एकदम निर्मूल हो ऐसी बात नहीं है किन्तु उपन्यास के परातम पर वह जिन यथार्थनिमित्त प्रेम की बाधा रखते हैं, वह प्रेमचन्द की उपयोगितावादी दृष्टि से बहुत दूर है। प्रेमचन्द स्पष्ट मान कर चलते हैं कि वह जनसाधारण के लिए लिख रहे हैं। जिन सहृदयों की

प्रेमचन्द के विविध नाटी-पात्रों का चरित्र-चित्रण

वृत्तियों के परिष्कार की बात या देवराज करते हैं बैसे उच्च-मंडित जन साधारण में मुश्किल से पाँच प्रतिशत भी नहीं होते। हाई स्कूल से लेकर एम ए की कक्षाओं तक प्रेमचन्द के उपन्यासों का पठन-पाठन होता है। सीपी-सी बात है कि इस घबस्पा में 'एना' नहीं 'गोष्ठी' ही नक्य की घोर इंगित करती है। बलुच एना वृत्तियों का परिष्कार करती है तो गोष्ठी घामू कत उन्हें परिष्कृतारब्बा का मार्ग दिखलाती है। फिर इस तथ्य को भी विस्मृत नहीं किया जा सकता कि एक भारतीय है घोर बूखी भारतीय। भारत का जोर शू नाटी साहित्य भी विदेश के साधारण शू वारावतन्वित साहित्य से कम तीला है। घोर तीसरे यह कहना भी तो घग्याव ही है कि गोष्ठी घोर चिनय के प्रेम चित्रण में यथार्थ का सहाय सिवा ही नहीं। प्रेम में एक सीमा तक की बासना प्रविश्वास स्वच्छन्दता तथा घन्तवर्तीय सस्कारों के घञ्जात घातक घात्रि का चित्रण चिनय-सोशिया के प्रेम में सफलतापूर्वक हुआ है। हम नहीं मूल जाते हैं कि प्रत्येक मेखक का अपना-अपना युग होता है युग की माँग होती है घोर उसी के अनुसार मेखक अपना दृष्टिकोण निर्धारित करता है। प्रेमचन्द चाहते तो 'मोस्वामी' की वारा को उपन्यास में उतार सकते थे 'यामा स्वप्न' की रचना कर सकते थे घोर 'टासस्टाय' की एना की निर्मिति की घामार्थ भी उनमें घबस्पा भी घोर इस प्रकार घात्रिक सन्तुष्टि भी सम्भवत उन्हें बहुत होती— किन्तु प्रेमचन्द को तो उस सोशिया की सृष्टि करनी थी जिसके लिए एक मेखक को फिम नाइन के मीतिक बंमर्षों को छोड़ कर युय-बर्न को घमि व्यक्ति के हेतु मूक रह कर चिन्मयी बसर करनी होती है। माता कि उसके म में बावबीय तत्त्वों का समावेश हो गया है पर वह नहीं भी घमोकि नही जमा है। प्रेमचन्द की प्रेम के प्रति निजी घर्म-सापेक्ष चारणा भी जिसका विवेचन हम तीसरे घम्याव में कर चुके हैं। इसमें सन्देह नहीं कि उस युय में घोर घात्र भी भारतीय पाठकों की वृत्तियों का परिष्कार भारतीय सचि में बनी हुई 'गोष्ठी' ही कर सकती है घत्रिचारिणी 'एना' नहीं।

लंका उठ सकती है कि गोष्ठी चाहे घोर को बुध भी हो सफल पुकी वह नहीं है। तमाबान ऐसे ही हो सकता है कि बीबन की सफलता एक-दूसरे को समझने में होती है किन्तु गोष्ठी एक ऐसी सुदूर तथा व्यापक चित्रकृति है जिसके लिए परिवार परिवेष्ट का घबरे कोने में पड़ा हुआ मिनोना थोछटा अनुपबुद्ध है। उसके लिए भारतीय रह ही बही गया वा जो उमने किया।

गोष्ठी की घातमहत्या भी पाठक के लिए एक बहुत बड़ा प्रश्न-चिह्न है। साधारण चरित्र घासाव उभारते जाना घोर घात्र में भादुकताव घबस्पा

समाज में विद्वत्सत्ता के भय से (जैसा कि 'प्रेम की देवी' की पत्नी के साथ भी हुआ है) अत्यन्त साधारणता में उलझे गिरा देना—यह प्रेमबन्ध का अपने पात्रों के प्रति ध्याय माना गया है। एक बहुत बड़ी सीमा तक यह आरोप उचित भी है। माना कि सोफिया की परिस्थितियों को देखते हुए उस का अन्त बहुत प्रत्याभाषिक नहीं बीसता परन्तु इसे उपयोगितावादी प्रेमबन्ध की महान् उपसम्पत्ति भी तो नहीं कहा जा सकता। साधारणतः यही सतता है कि उन्होंने सोफ़ी की महत्वाकांक्षाओं के विरुद्ध स्वरूप को छोग लिया है और यह भी कि धारण और मर्त्य में यहाँ पर सम्मनन वह नहीं रख सके हैं; किन्तु यदि उन्हीं से उनके अपराध का उत्तर माँगा जाये तो वह निश्चित रूप से यही कहेंगे 'मरते हैं जिनमें सत्य का बस होता है। विषय-बाधना के पुतले ऐसे भर जायें तो सत्कार स्वर्ग हो जाये।'^१

मनोरमा

विचल-विधि तथा चरित्र-विकास की दृष्टि से मनोरमा सम्भवतः सोफ़िया से भी अधिक उच्च बन पाई है। प्रमा प्रेमबन्ध की उँगली पकड़ कर बनी है विरजन की यकामत भी उन्हीं स्वयं कई बार करती पड़ी है तथा सोफ़िया जैसे सकल चरित्र के साथ भी लेखक की ओर से लम्बे लम्बे वाक्य विपके हुए मिल जाते हैं; किन्तु 'अपारम्भ' की मनोरमा के चरित्र चित्रण की विशेषता यह है कि उसकी विचल-विधि विन्नेपलात्मक अथवा धर्म प्रत्यय न होकर पूर्णतः अत्यय अथवा नाटकीय है। प्रेमबन्धकालीन एक प्रधान सांभाविक वर्ण से सम्बन्ध होते हुए भी वह संस्कार प्रदान वर्ण-चरित्र नहीं अपितु व्यक्ति-चरित्र है। उसमें स्फूर्ति है गत्यात्मकता है स्थिरता नहीं वह न तो बोरे धारण की परिस्थिति है और न ही अर्थात्तनीय मर्त्य की प्रतिवृत्ति तथा उद्देश्यतः सोफ़ियन सोम्मुन होते हुए भी उनके भीतर उन्नीयता असांभाविकता एवं संवति की सुष्ठु अस्थिति विद्यमान है।

अन्तः (अथवा प्रेमबन्ध) की दृष्टि में मनोरमा 'अनन' है लेकिन 'गगन' सर्वांगी रीत की भाँति विद्याम' है और चित्त को बराभूत करती है। वह 'पाननू' पत्नी की भाँति विचारे में जाने वाली है किन्तु 'किसी सार्थनिक प्रत्य की भाँति दुर्बो धीर अटिम' है। अर्थात् उसकी बाह्य संस्काररत साधारणता के परों में

प्रेमचन्द के विचित्र नाटी-नाचों का चरित्र-चित्रण

एक ऐसी प्रसाधारणता निहित है जिसकी प्राप्ति सत्य है। बरकर की विद्या के रूप में ही उपन्यास में सबसे सर्वप्रथम साक्षात्कार होता है और वहीं वह इस भावना की अभिव्यक्ति करती है कि सत्य की हत्या करके पाता गया धार्य मनुस्मृति के लिए धर्याप्य है पर केवल बाह्यदम्बर है। जवाहरराज पत्रि के लिए समानत बाध्यनीय है। प्रणि-परीक्षा हो चुकने पर भी मूठी निम्ना से बचने के लिए राम जैसे पुण्य द्वारा सीता को दिया गया निर्वासन यदि धार्य मान करके पाता गया है यह धार्य नहीं है चरित्र की बुद्धिसत्ता है। मनोरमा के अनुसार, सत्य तो वह है जिस में सत् धर्या होने का भाव विद्यमान है—जो एक में भी है और अनेक में भी जिसकी वही सत्ता विद्यमान है और यदि अनेक का तथाकथित सत्य एक के प्राण-रुत्य का तिरस्कार करता है तो वह धर्या है जिसके विरुद्ध धारा उठायी ही जानी चाहिए। जब मनोरमा के इस विरवाच को बरकर का धर्यन प्राप्त होता है तो वह अपने मस्तक को बहुत उत्तत हुआ समझती है और कहती है "मैं जानती थी कि प्राय यही जवाब दिये जब मैं उन लोगों को धर्य धार्य हाथों लूनी।" इस प्रकार धार्यन ही वह धर्या धर्या की कसौटी सत्य ही को मान कर बनती है। यही कारण है कि इससे के प्रति किया गया धर्याव जससे सहा नहीं जाता "धर्य धर्यामियों से क्यों नहीं मरते" कहती है वह बरकर से "कि एक कौड़ी भी न बं कोई देया ही नहीं तो लोग कैसे से लेंगे ?

गुण भरी जगह होती तो धर्यामियों को मना कर देती ? बरकर ने पूछा ।
 "धर्य । मुनम-मुसा कहनी—बरदार । राजा के धर्यामियों को कोई एक पैसा भी न है ।"

"और बीवान साहिब (अपने पिता) से क्या कहती ?
 "उत्तसे भी यही कहती कि प्राय सुपके से भर बने जाइय नहीं तो धर्या न होमा । धर्य मेरे पुत्र्य पिता है मैं धर्याकी सेवा बक्यो लेकिन धर्याको सुधरों का पुन न भूने बूगी । प्रीकों को सता कर धर्या पर जर मिया तो कीन-सा बड़ा धीर मार मिया" इस हृदयम नहीं बहते । यह धर्या भी नहीं है । यह केवल धर्ये धीर मर्य का समाया है । एक स्थान पर तो वह राजा विद्यालक्षि से धर्ये मे कहती है "महारज मैं धर्यासे यह पूछ न घा की कि क्या प्रदुख धीर पदुता एक ही वस्तु है या उनमें धर्य धर्य ?"—मुझे मय

है कि इस घातक के घातार पर बने हुए राज्य भवन का बीज ही पतन हो जायेगा और घातकी सारी कीर्ति स्वप्न की भाँति मिट जायेगी। इसलिये कि सच्चे घातकी के साथ सच्चा बर्ताव होना चाहिए। इसी में घातका नी कन्याएँ हैं।”

मनोरमा को ब्रह्मचर से प्रतीम प्यार है। इस सत्य को प्रस्वीकृति द्वारा वह स्वयं को समझा नहीं चाहती। यह भीरु विवशता की बात है कि वह राजा विद्यास तिरु की चौबी रानी भी बनती है। विवाह से पुत्र सिद्धा रूप में वह ब्रह्मचर से बहती है। भाव नहीं रहते तो मेरा किसी काम में भी नहीं लगता है— मुझे तो ऐसा भाव्य होता है कि पूर्व-जन्म से भी मेरा और घातका किसी न किसी रूप में साथ था— मैं मर कर भी घातको नहीं भूल सकती। वह यह भी सोचती है ‘‘ममी बाबूजी पर न पहुँचने। पानी घा गया तो बहकर भीग जाँगे। ईश्वर करे वह पर पहुँच गए हों। ब्रह्मचर किसी लड़की को विवाह के लिए समझ करके आते हैं तो उसकी भाँति डबडबा जाती है और बार-बार रत्नाई जाती है मानो ब्रह्मचर दूर दूर का रहे हों। और जब ब्रह्मचर दूर दूर के पवित्र वन भी जाते हैं और स्वयं मनोरमा भी राजा साहब की परिच्छीता हो जाती है तो भी वह ब्रह्मचर को विरहात दिखाती है। ‘‘मैं जब भी अपने को घातकी जाती बन भंगी हूँ। विवाह के दिनों में वह राजा साहब से यह कहने में भी संकोच नहीं करती कि ‘‘मैं घातको भोज्या देना नहीं चाहती। मुझे घातसे प्रेम नहीं है। मैं रानी तो बनना चाहती हूँ पर किसी राजा की रानी नहीं। और अंततः इस में भी संकोच नहीं कि विवशता मनोरमा अपने विवशत पति की स्मृति के अवलम्ब पर नहीं अपितु पानी की जल घातक के सहारे बीती है। जो घातके कानों में प्रतिध्वनित होती रहती है ‘‘नोरा! हमें भूल गई? तुम्हारा पुत्रता वैश्व है।’’ ‘‘सहस्रों पौड़ों की शक्ति वाला इंसान जैसे उस घातकी (ब्रह्मचर) की घोर पीचता हुआ जान पड़ता है।’’ किन्तु मनोरमा के इस घातकत्व का मुख्य विषय श्रीमद्ब्रह्मचर का उपासकत्व नहीं है। ब्रह्मचर का हाड़-नास नहीं अपितु उनके घातक उमे पीचते हैं। अपने ही विरहातों को चरम पुँति जैसे ब्रह्मचर से परिनिमित्त होती है। जिस ब्रह्मचर के बीरु इतनों को वह सनाचार पत्रों में पढ़नी है उनी से बहती है ‘‘सोचती थी कि घात यहाँ घातके तो घातकी पूजा बर्चनी।’’ गार्भत्रिक सेवा-आर्यों में भाव सेवा यदि वह वैश्व इतिहास छोड़ दे कि कायदा की भीषणता उन्हें घमण्ड है तो मनोरमा राजा साहब को बना देनी है कि वह ‘‘इसी दायु मेरे घातक से फिर जायेंगे। बालुन’ मनोरमा के प्रेम के बर्बाद देकर अपने लिए कुछ भी भवा नहीं पीता है। उनके

अनुसार तो प्रेम की चरम पूर्ति है प्रेम-पान के लिए धार्मिक सेवा-यात्रा का वापस बुलाना । राजा साहब से विवाह करके भी वह चक्रधर के लिए बन-स्त्री बन जाने उपादान ही बुलाना चाहती है । चक्रधर के प्रति उसे यह क्षणिक विचार है कि 'तुम मुझे विनासिनी समझ रहे हो यह तुम्हारा धन्याय है । और किस प्रकार मैं तुम्हारी सेवा करती ?' मनोरमा तो बीठे-बी धपना बलिदान लेकर प्यार को भीतती है—उस प्यार को जो लोकहित के लिए जेलों में लक्ष्यता है उस प्यार को जो सत्याभ्ययी है और धन्याय को निर्मूल सिद्ध करना चाहता है उस प्यार को, जो मानवमात्र को प्रातुनाम में बाँधना चाहता है—उस प्यार को जिसका सेवा-मार्ग है 'कौमी को देखो' और जो कलम्य त्याग बलिदान तथा सहनशीलता की गहरी बाटियों में से होता हुआ धार्मिक मन्त्रित तक पहुँचता है उस प्यार को जिसकी प्रेरणा पवित्रता के प्रवाह में निहित है और जो मनोरमा का धपना होता हुआ भी समी का है ।

यह एक निर्विचार तथ्य है कि मनोरमा को ऐसे दाम्पत्य से वितृष्णा है जो प्रेम पान में दूर लीपे विवाह द्वारा परिपुष्ट होने की कल्पना पर जीवित है । स्पष्टतः वह राजा साहब से कह बेठी है कि उसे अपने प्रेम कथापि नहीं है और एक बार सनकी निराशावस्था में यह भी मुना देती है कि बहुदलीत्व का उचित दण्ड ही उन्हें मिला है । उक्तने तो विवाह किया है दूसरों के उपकार के लिए किन्तु राजा साहब को भी उपकृत वह धन्य करेगी । पत्नी बन कर वह सोचती है 'प्रेम से मैं बन्धित हो गई अब मुझे सेवा से ही धपना जीवन सफल बनाना होगा । यही कारण है कि "कविता में और सब रस में केवम शृंगार रस न था ।" अपनी सम्पूर्ण कर्तव्य-याचना को मनोरमा राजा साहब की ओर उद्वेगने का प्रयत्न करती है और उपकार-रूप में यही तो बचा है उसका पास पानके लिए । राजा साहब की असन्तुष्टि उसे मात्र यातनाएँ देती है किन्तु वह सब-कुछ सहन करती हुई कहती है "उनकी मुग्धी की परबाह नहीं तो फिर किसकी मुग्धी की परबाह करोगी ! जो स्त्री अपने पति से दिल में कीना रखे उसे विष खाकर प्राण दे देना चाहिए । हमारा धर्म कीना रचना नहीं जमा करना है ।" निस्संदेह मनोरमा इस दृष्टि से पूण पति-विरागिणी है किन्तु सेवा ज्ञान तो राजा साहब के लिए उसका पलात्क एक मृगयन्त्रा ही है । ऐसी मृगयन्त्रा विल पर उनका बस नहीं है, जिसमें कभी उन्हें धन्याय रूप से परबोध की ओर विचार बाँधता है ता कभी बली पति से यह कहती हुई सोचती है 'मैं धापका यह एहसान कभी न भूँगी ।'

किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि मनोरमा के हृदय में जमने नहीं है

मातृत्व की चाह नहीं है। उसके ये शब्द ही कि 'घहस्या। मैं जब यह साल तुम्हें नहीं बुंभी। यह मेरा है। उसकी इस भावना के परिचायक हैं। किन्तु पहले उन्हें दबा कर सेवा के मार्ग से निकालने का यत्न किया है। इतना ही कह कर ततोप किया है "नाब। मनुष्य का उद्धार पुत्र से नहीं अपने बर्गों से होता है।"

मनोरमा ने एक बात धीर समझी है। ये धारसंबादी धर्म में ही धन को तिरस्कार्य समझ कर अपने-आप को धूलते रहते हैं। धन के बिना तो थोड़ी भी सुधार तथा परोपकार सम्भव नहीं है। धारसम्भवा केवल इस बात की होती है कि धन प्राप्ति के उपरान्त हम विनासजीवी न हो जायें। भीषिक महात्मता में अपने धारसों से न गिर जायें। स्वयं जोकर हम दूसरों को जीवित रहने की धामर्ष्य प्रदान करें। इसके लिए त्याग की आवश्यकता होती है यह सोचने की धामर्ष्य कि "मैंने अपने की जाति मगराधि पर बैठ कर उसकी रक्षा के लिए यह पद नहीं स्वीकार किया है बल्कि अपनी धारसोपति और दूसरों के उपकार के लिए ही।" पूरे प्रेम को छोड़ कर धन के पीछे दौड़ेगी पर तैरा उद्धार प्रेम ही से होगा—का धर्म यही है कि किसी भी धारस के साधन के रूप में धन को जीवित के रूप में ग्रहण करना चाहिए, धाम्य के रूप में नहीं।

मनोरमा का यह विचारांत है कि "धाम-सम्मान की रक्षा हमारा सबसे बड़ा धर्म है।" धम्य जाति की होने के कारण घहस्या का सुधा हुआ जब बल्लभर के घर जाने नहीं जाते तो वह बल्लभर से कहती है "मैं घहस्या की बहू होती तो उस पर मैं एक दण भी न रहती। बस्तुतः विवाह को भी मनोरमा धम्य-समर्ण के रूप में स्वीकार नहीं करती। वह जैसे एक धारस समझोता ही समझती है जिसका प्रमाण उद्भव होता है सम्मान-रक्षा। वह कहती है "मैं तो समझती हूँ जो विवाह लक्ष्मी की इच्छा के विरुद्ध किया जाता है वह विवाह ही नहीं है। धीर यही कारण है कि उसकी धामसम्मान श्रियता के समझ राजा साहब को भी कई बार निरंतर होना पड़ता है। जब वह अपने पूर्णाधिकार-निहित कहती है—"जब मैं यहीं रहूँगी धाम जाइये। मेरी बीबें यही बिबवा दीजियेगा" तो राजा साहब को मानसिक रूप से भी पराभूत हुआ ही पड़ता है।

उदात्तवृत्ति को जीवित तथा जीवित रहने का एक ही धर्म है मनोरमा के नाम यह है महत्तमता। प्रेम-प्राप्त के धम्य विवाह को वह सहेगी पति को उरोता के कारण धामे-दिन के धमयनों को वह सहन करेगी सहेगी हस्या की निष्कृता के कारण दिन भर पत्थर रग लेगी धीर धारसों के

प्रेमचन्द के विविष्ट नारी पात्रों का चरित्र बिभल

ध्वंशबाणों का उत्तर भी सहनशीलता के मीन से ही देनी—किन्तु बेरना
 केकर भी उसे ठो बीना है। उसे बीबन से पराह मुझी नहीं होता है।

मनोरमा के चरित्र में एक-दो त्रुटियाँ भी हैं। ईर्ष्या उनमें एक है। उसकी
 यह भावना सम्भवतः आत्मसम्मान के घटिक्रमण का ही परिणाम है। सपत्नी
 रोहिणी की मृत्यु पर सभी घाते हैं किन्तु मनोरमा नहीं घाती। इसी प्रकार
 उसकी सैद्धांतिक प्रतिबाधिता भी एक-दो स्तरों पर आरक्षण-यासन की घोषणा
 दोष की सीमा में अधिक दूर तक जाती है। किन्तु इन दोषों का महत्त्व
 इसी में है कि ये मनोरमा को इसी बरती का पात्र बनाये रखते हैं।

चरित्र-संगठन की दृष्टि से मनोरमा और रानी देवप्रिया के पारस्परिक
 प्रसंगों की प्रावण्यकता नहीं थी। इससे मनोरमा के चरित्र विकास में कोई
 नौ महीन देखा नहीं उमरी है। चरित्र की व्यापकता मने ही इससे समुद्र हुई
 हो किन्तु कलात्मक ह्रास उससे अधिक हुआ है।

किन्तु यह सब होते हुए भी 'आयाकल्प' मनोरमा के ही सहारे टिका हुआ
 है।

रुपिया, तारा, लज्जा, लला तथा घन्टा

प्रमिया-रूप में प्रचलित उपयत्निकृत पात्रों नारी-पत्र प्रेमचन्द की
 कहानियों में विविष्ट हुए हैं। कहानी में किसी भी भाव की सभी प्रवृत्तियों
 की सर्वांगीण अभिव्यक्ति का यथोचित प्रवकाश सम्भव नहीं होता—एवं
 घन्टा भी एक पक्ष ही प्राप्त नहीं उमरा करता है—इन पात्रों पात्रों में
 प्रेमचन्द की प्रेम भावना तथा रसात्मक बिभल में जो तारतम्य (तर और
 घम) परिलक्षित होता है उस के कारण ही इनके चरित्र-विश्लेषण की एक
 पाय ही प्रावण्यकता समुभव हुई है।

रुपिया—'ज्योति' कहानी की रुपिया कहानी में प्रयात पात्र नहीं है तो
 भी प्रमाकर्षण की आरम्भिक प्रवृत्तियों की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण प्रवच्य है।
 मोहन मुबक है रुपिया को भी मोहन के प्रायमन का मादक स्वर सुनायी पड़
 रहा है मत्त वह स्वभावतः मोहन की ओर विच जाती है। रुपिया का प्रेम
 क्पाकर्षण पर प्रवृत्तित होते हुए भी निस्वस्त एवं निरदल है। वही
 पाकर उनके प्रति स्नेह करना सीखता है। रुपिया का प्रेम रुपिया का प्यार
 जाती है "तुम मेरे पास एक बार रात या जाया करो। वस और मैं कुछ

नहीं चाहती। वह मोहन के बिना रह नहीं सकती। मोहन की विधवा बूढ़ी माँ को पहले तो अपने बेटे का बाल बसन पसन्द नहीं होता किन्तु जब वह देखती है कि 'कुम (रविष्या) में केवल रंग ही नहीं है सुगन्ध भी है जिसके कारण उसका पुत्र की कर्णव्य भावना भी सुगन्धित हो गई है, तो उसके मन में रविष्या से जो दृष्टा हो गई थी वह किसी भी मन से कुल-सी जाती है। वह सोचती है 'प्रायः कौन मड़कियाँ अपने बच्चों की तो परवाह नहीं करती दूसरों के लिए कौन मरता है। सारी रात (रविष्या) धनिया के मड़के की लिए जागती रही। परिणामस्वरूप बूढ़ी का मन भी रविष्या की निरधरता तथा भोलेपन से प्रभावित हो जाता है और वह दोनों के परस्पर विवाह की धनुमति दे देती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि रविष्या के नर्बर्णहीन सहज प्रेम में वह प्रार्थनिक भावपूर्ण है जिसके मादक आशोक में व्यक्त सम्पूर्ण आकाशवाणी को ही स्नेहमयी दृष्टि से देखता है और दोनों की विपरपटता के कारण जिसमें पारस्परिक उत्कर्षों का नाम-निदान नहीं होता।

तारा—प्रम-सीपान का दूसरा चरण है 'ऐक्य' कहानी की तारा। तारा एक धनिनेत्री है जिसकी धनस्था नतीत रूप की है। एक दिन शकृन्तला के धनिमय में उसे देख कर राहुर क बनाह्य नवयुवक कृन्त निर्मलकाम्य उस पर मोहित हो जाते हैं। तारा जिसे 'प्रायः से बीस साल पहले एक बार प्रेम का कटु अनुभव हो चुका होता है एक बार फिर हृदय में प्रेम का बीजक जमा बँटती है। उसे कृन्त से विवाह की प्रथम इच्छा होती है किन्तु विवाह से एक दिन पूर्व ही वह मृत जाती है। वह सोचती है कि जिस 'प्रम के देवता' में उमकी आतिर कुल-मर्यादा तक को तिलांजलि दे दी हो जाती तथा दृष्टिम साधनों द्वारा परिचायित एक दृष्टिम शरीर उसके उपहार के योग्य नहीं हो सकता प्रम नाम है और उजबोम भावना निष्पत्ता—सत्य और मिथ्या दोनों एक साथ नहीं रह सकते। परिणामतः वह इतना निराश कर चुके एका जाग पड़ता है कि प्रम की स्मृति में प्रम के मोह से नहीं अधिक मापुर्व और आनन्द है तथा कृन्त को नहीं पश्य विवाह कर लेने को वह कर, किन्ती अज्ञान दिया की ओर चल देती है। हम देखते हैं कि रविष्या के प्रेम में वहाँ प्रार्थनिक भावपूर्ण भी है और विवाह की इच्छा विद्यमान है वहाँ तारा के चरित्र में न्यायपूर्ण भी है और विवाह की इच्छा भी किन्तु अपने भी बड़ी उपनिधि है कारणविक प्रेम की पहचान—साधारण सम्बन्ध की जानने की समता—वह मोचने की दृष्टि कि 'यै अपने प्रेम-पान के योग्य भी है धनवा नहीं। और जब वह स्वयं को पूर्णतः अयोग्य समझती है तो त्याग का साधन

प्रेमचक्र के विविध गरी-पारों का चरित्र-चित्रण

मेती है। वारा का प्रेम शरीर से धारम्भ होकर त्याग तक पहुँचता है। किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि यह त्याग एक प्रकार की बेबसी का ही परिचायक है। अभावत्मक है। भावात्मक नहीं।

लज्जा—'हार की भीत की लज्जा हृदय में प्रमादुर्गों के पस्मवित हो जाने पर भी विवाह को भावुकता नहीं समझती है। धारदाचरण उसकी धोर धाङ्कृत है धीर धार्मिक दृष्टि से उससे अधिक सम्पन्न होने पर भी कहता है 'गुन्हारे लिए मैं प्राय रियासत को तिलांजलि दे सकता हूँ।' किन्तु लज्जा समझ है। वह धारदाचरण को बता देती है 'गुन्हारे कामेव की हीतल छाया में पना हुमा साम्यबाध बहुत दिनों तक धार्मिक जीवन की सू धीर लपट को ग सह सकेगा।' प्रेरणा-स्वरूप धारदाचरण लज्जा से धारीक रूप में दूर रह कर भी उसके प्रेमात्मक में सेवा-पथ पर धपतर होता है। वह कीर्तिल में बा कर इपकों की धमिकार रखा का प्रबल पस लेता है। इधर लज्जावती के पत्रों में भी यदा धीर प्रेम की मात्रा तिलो-दिन बढ़ती जाती है क्योंकि अपने प्रेम धर उसे विवाह करने में भी कोई हिचक नहीं रहती। इधर धारदाचरण धमिक धकेलापन सहन न कर सकने के कारण एक धम्य मुवती मुधीता की धोर धाङ्कृत होता है धीर एक पत्र में लज्जा से बहाना कर बैठा है कि वह लयरोग में ग्रस्त हो गया है। किन्तु लज्जा जिसे कि धर धारसे प्रेम पात्र की प्राप्ति हो चुकी होती है। माकी वैधम्य की यत्नणार्थ सहने को भी तैयार हो जाती है धीर धमिलम्ब धारदाचरण क पास नेनीताम पहुँचती है। उसे ज्ञात है कि मुधीता से धारदा का क्या सम्बन्ध है किन्तु सब-कुछ सहन करती हुई वह धारदा की सेवा करती है धीर धमलत' तपस्विनी बन कर ही उसे मुलने को मिलता है 'नहीं लज्जा धर हम में धीर तुम में कभी बियोग न होता। इस प्रकार 'बियोग' के प्रेम में धरि धारमिक धाकपंण है धीर 'ताप' में बोध्य धयोप्य को समझने की त्यागान्वित धामर्ष्य विद्यमान है तो लज्जा के प्रेम में ऐसी प्रेरक भावना है जो धयोग्य को बोध्य बनाती है जो कोरी भावुकता नहीं बर्धम्य-विधेय से बाहर तक प्रसार रखती है धीर को त्याग प्रदान होती हुई भी धमलत' मानन्द की भावात्मक स्थिति को प्राप्त होती है। लज्जा प्रेम धीपान का तीसरा चरण है।

सेता—'सेता' कहानी की सेता प्रेमिका-रूप में लज्जा से भी एक दर्जा धाये है। लज्जा जिस प्रलोभन को रोक नहीं पाती सेता की वह मुठी में है। कभी समय या जब वह निरीह भाव से इफली पर, मुक्त बाठाचरण में मुक्त

नहीं चाहती। वह मोहन के बिना रह नहीं सकती। मोहन की बिगना बूढ़ी माँ को पहले तो अपने बेटे का नाम-बचन पसन्द नहीं होता किन्तु जब वह देखती है कि 'पूत' (रविवा) में केवल रंग ही नहीं है सुगम्य भी है जिसके कारण उसने पुत्र की कर्तव्य भावना भी सुपन्थित हो गई है तो उसके मन में रविवा से जो घृणा हो गई थी वह कितनी देरी मात्र से धुल-सी जाती है। वह सोचती है 'भाजकल की सड़कियाँ अपने बच्चों की तो परवाह नहीं करती दूसरों के लिए कौन मरता है। साथी राठ (रविवा) भनिया के सड़के को लिए बामती रही। परिणामस्वरूप बूढ़ी का मन भी रविवा की निरक्षरता तथा भोजन से प्रभावित हो जाता है और वह दोनों के परस्पर विवाह की अनुमति दे देती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि रविवा के लक्ष्मणहीन सहज प्रेम में वह प्रारम्भिक प्रार्थना है जिसके माध्यम मासिक में व्यक्ति सम्पूर्ण वातावरण को ही स्नेहमयी दृष्टि से देखता है और दोनों की निष्पटता के कारण जिसमें पारस्परिक प्रेम-भावना का नाम-निधान नहीं होता।

तारा—प्रेम-सोपान का दूसरा चरण है 'पिकेटिंग' कहानी की तारा। तारा एक धर्मिणी है जिसकी घबस्वा पंतीस वर्ष की है। एक दिन पञ्चुलता के परिणाम में उसे रैक कर राह के घनाह्न नवयुवक कृन्डर निर्मलकामल लक्ष पर मोहित हो जाते हैं। तारा जिसे 'भाज' से बीस साल पहले एक बार प्रेम का कटु अनुभव हो चुका होता है, एक बार फिर हृदय में प्रेम का दीपक जला बैठती है। उसे कृन्डर से विवाह की प्रवृत्ति दृष्टा होती है किन्तु विवाह से एक दिन पूर्व ही वह नैत जाती है। वह सोचती है कि जिस 'प्रम' के वैभवा ने उसकी खातिर कुल-मर्यादा तक को तिलांजलि दे दी है वही तथा कृन्डर साधनों द्वारा परिवर्तित एक कृन्डर लक्ष के उपहार के योग्य नहीं हो सकता प्रेम सरल है और सपभोग-भावना मिथ्या—'सत्य और मिथ्या दोनों एक साथ नहीं रह सकते। परिणामतः वह इतना निश्चय कर, 'मुझे ऐसा नाम पड़ता है कि प्रेम की स्मृति में प्रेम के भोग से कहीं अधिक माधुर्य और मान्य है तथा कृन्डर को कहीं प्रम्य विवाह कर लेने को कह कर, किसी प्रकार विद्या की ओर चल देती है। हम देखते हैं कि रविवा के प्रेम में बहाने प्रारम्भिक प्रार्थना भी है और विवाह की दृष्टा विद्यमान है, बहाने तारा के चरित्र में प्रार्थना भी है और विवाह की दृष्टा भी किन्तु लक्ष से भी बड़ी उपलब्धि है वास्तविक प्रेम की पहचान—रापात्मक सम्बन्ध का जानने की कला—वह सोचने की शक्ति कि 'मैं अपने प्रेम-यात्र के योग्य भी हूँ प्रवृत्त नहीं। और जब वह स्वयं को पूर्णतः उपयोग समझती है तो त्याग का भाव

मनस्य के विविष्ट गरी-पार्श्वों का चरित-चित्रण

लेती है। तारा का प्रेम शरीर से धारम्य होकर त्याग तक पहुँचता है। किन्तु इसमें सन्नेह नहीं कि यह त्याग एक प्रकार की बेबसी का ही परिचायक है। अमावस्यक है नावात्मक नहीं।

लज्जा—'हार की भीत की लज्जा हृदय में प्रेमाकुतियों के पस्तवित हो जाने पर भी विवाह को भाङ्गुच्छता नहीं समझती है। धारवाचरण उसकी धीर धारुच्छ है और धार्मिक दृष्टि से उससे अधिक सम्पन्न होने पर भी कहता है 'तुम्हारे लिए मैं प्राय त्रियासत को तिलांजलि दे सकता हूँ। किन्तु लज्जा सज्ज है। यह धारवाचरण को बटा देती है 'तुम्हारे कामेज की भीतस घ्राया में पना हुमा साम्यवाह बहुत दिनों तक सांसारिक जीवन की सू धीर लपट को न सह सकेया। १२ प्रेरणा-स्वरूप धारवाचरण लज्जा से धारैरिक रूप में दूर रह कर भी उसके प्रमालोक में सेवा-पम पर प्रपचर होता है। यह कीचित्त में का कर हृपकों की अधिकार रसा का प्रबस पस लेता है। इधर लज्जावती के पशों में भी लज्जा धीर प्रेम की मात्रा तिलो-दिल बढ़ती जाती है। क्योंकि अपने प्रेम प्रब उसे विवाह करने में भी कोई हिचक नहीं रहती। उधर धारवाचरण अधिक अनेकापन सहन न कर सकने के कारण एक पम्य मुचती सुचीना की धीर धारुच्छ होता है और एक पम में लज्जा से बहाना कर देता है कि यह दायरोम में प्रस्त हो गया है। किन्तु लज्जा जिसे कि प्रब धारस प्रेम पात्र की प्राप्ति हो चुकी होती है। धारो बेबस्य की पमरुणार्ण सहने को भी तैयार हो जाती है और अधिकतम धारवाचरण के पास नीनीताल पहुँचती है। उसे ज्ञात है कि सुचीना से धारवा का क्या सम्बन्ध है किन्तु सब-कुछ सहन करती हुई वह धारवा की सेवा करती है और धम्यत उपस्थिती बन कर ही उसे मुनने को मिसता है। 'नहीं लज्जा प्रब हम में धीर गुम में कभी वियोग न होगा। इस प्रकार 'रुपिया' के प्रेम में यदि धारम्यिक धारुच्छण है और 'धारा' में योग्य धयोग्य को समझने की त्यागान्वित सामर्थ्य विद्यमान है तो लज्जा के प्रेम में ऐसी प्रकृ बावना है जो धयोग्य को बोम्य बनाती है। जो कोरी भाङ्गुच्छा नहीं करान्य-विधेय से बाहर तक प्रसार रखती है और जो त्याग प्रबान होती हुई भी धम्यत धान्य की नावात्मक स्थिति को प्राप्त होती है। लज्जा प्रम खोपान का तीसरा चरण है।

लैला—'लैला' कहानी की लैला प्रेमिका-पम में लज्जा से भी एक बर्बा माने है। लज्जा जिस प्रलोभन को रोक नहीं पाती लैला की वह मुट्टी में है। कभी समय या बब बहु निरीह धार से इच्छनी पट मुक्त नावाचरण में मुक्त

नहीं चाहती। वह मोहन के बिना रह नहीं सकती। मोहन की विचित्र बूढ़ी माँ को पहले तो अपने बेटे का नाम चमन पसन्द नहीं होता किन्तु जब वह देखती है कि 'चम (रुपिया) में केवल रंग ही नहीं है सुन्दर भी है जिसके कारण उसके पुत्र की कर्तव्य भावना भी सुवर्धित हो गई है, तो उसके मन में रुपिया से भी प्रेमा हो गई थी वह किसी देवी मन्त्र से पुनः-सी जाती है। वह सोचती है 'भावकर्म की सङ्कियाँ अपने इच्छाओं की तो परवाह नहीं करती, बुराई के लिए कौन मरता है। सारी रात (रुपिया) बतिया के सङ्केतों को लिए जागती रही। परिखामस्वरूप बूढ़ी का मन भी रुपिया की निरखलता तथा भोलेपन से प्रभावित हो जाता है और वह दोनों के परस्पर विवाह की अनुमति दे देती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि रुपिया के संवर्धित सहज प्रेम में वह आरम्भिक आकर्षण है जिसके मादक आसक्त में व्यक्ति सम्पूर्ण आत्मकरण को ही स्नेहमयी दृष्टि से देखता है और दोनों की निष्कपटता के कारण बिचमें आरम्भिक उलझनों का नाम मिथ्या नहीं होता।

तारा—प्रेम-सोपान का दूसरा चरण है 'ऐक्य' कहानी की तारा। तारा एक प्रतिभेयी है जिसकी प्रवस्था पैंतीस वर्ष की है। एक दिन अकृत्यता के अभिनय में उसे देखा कर शहर के धमाक्य लक्ष्युषक कृन्ड निर्मलकान्त उस पर मोहित हो जाते हैं। तारा बिसे 'भाव से बीस साल पहले एक बार प्रेम का कट्ट प्रभुभव हो चुका होता है एक बार फिर हृदय में प्रेम का बीजक बना बैठती है। उसे कृन्ड से विवाह की प्रवक्त इच्छा होती है किन्तु विवाह से एक दिन पूर्व ही वह अंत जाती है। वह सोचती है कि जिस 'प्र म के देवता' ने उसकी खातिर कुल-मर्यादा तक को तिलांजलि दे दी हो जाती तथा कृन्ड साधनों द्वारा परिचित एक कृन्ड खातिर उसके उपहार के योग्य नहीं हो सकता प्रेम सत्य है और उपभोग भावना मिथ्या—सत्य और मिथ्या दोनों एक साथ नहीं रह सकते। परिणामतः वह इतना निश्च कर, मुझे एसा जान पड़ता है कि प्रेम की स्मृति में प्रेम के भोग से कहीं अधिक माधुर्य और मान्य है तथा कृन्ड को कहीं धर्म्य विवाह कर लेने को कह कर, किसी अज्ञात विद्या की ओर चम देती है। हम देखते हैं कि रुपिया के प्रेम में कहीं आरम्भिक आकर्षण भी है और विवाह की इच्छा निश्चयान है वहीं तारा के चरित्र में अपाकर्षण भी है और विवाह की इच्छा भी किन्तु उससे भी बड़ी उपलब्धि है वास्तविक प्रेम की पहचान—रागरमक सम्बन्ध को जानने की क्षमता—वह सोचने की शक्ति कि मैं अपने प्रेम-भाव के योग्य भी हूँ भयना नहीं। और जब वह स्वयं को पूर्णतः अयोग्य समझती है तो स्वयं का भाव

प्रेमबन्ध के विविध नारी-पार्श्वों का परिचय-विवरण

सेठी है। तारा का प्रेम शरीर से धारण होकर त्याग तक पहुँचता है। किन्तु इसमें उल्लेख नहीं कि यह त्याग एक प्रकार की बबली का ही परिचायक है अमात्मक है भावात्मक नहीं।

सखी—‘हार की जीत’ की सखी हृदय में प्रमाँकुरों के पलकित हो जाने पर भी विवाह को बाधकता नहीं समझती है। धारणाचरण उसकी धीर धारणा है और आधिक दृष्टि से उससे अधिक सम्पन्न होने पर भी बहता है। ‘तुम्हारे लिए मैं धाम विद्यालय को खिला बलि दे सकता हूँ।’ किन्तु सखी अग्रिम है। वह भारवाचरण को बता देती है ‘‘तुम्हारे कामेज की शिवल साम्या में पला हुआ साम्यवाद बहुत दिनों तक सांसारिक जीवन को नू धीर सपट को न सह सकता।’’ प्रारणा-कल्प धारवाचरण सखी से शारीरिक रूप में दूर रह कर भी उसके प्रमाँलोक में सेवा पत्र पर प्रसर होता है। वह कीर्तन में का कर कृपकों की भविकार रखा का प्रबल पल लेता है। इतर सखीवती क पत्रों में भी सखा धीर प्रेम की भाषा दिनों-दिन बढ़ती जाती है क्योंकि अपने प्रम को जो रूप वह देना चाहती थी वह उसके लिए अप्राप्य नहीं रह जाता मठ प्रम उसे विवाह करने में भी कोई हिचक नहीं रहती। इतर धारवाचरण अधिक प्रकेशनन सहन न कर सकने के कारण एक समय सुधी सुधीता की धीर धारणा होता है और एक पत्र में सखी से बहाना कर देता है कि वह समय में प्रसन्न ही बना है। किन्तु सखी जिसे कि प्रम मार्ग प्रेम-पत्र की प्राप्ति हो चुकी होती है, नारी बंधन की पत्रधारण सहन को भी संवार हो जाती है और अधिकतम धारवाचरण के पास नैनीताम पहुँचती है। उस प्रसन्न है कि सुधीता से धारवा ना क्या सम्बन्ध है, किन्तु सब-कुछ सहन करती हुई वह धारणा को सेवा करती है और अन्तत उपस्थिती बन कर ही उसे मुक्तने को मिलता है। ‘वही सखी प्रम हम में धीर तुम में कनी विद्योत न होना। इस प्रकार ‘विद्या’ के प्रेम में यदि धारमिक धारणा है और ‘तारा’ में योग्य प्रयोग को समझने की त्यागान्वित सामर्थ्य विद्यमान है तो सखी के प्रेम में ऐसी प्रक भावना है जो प्रयोग की योग्य बनाती है जो कीर्ति बाधकता नहीं अर्त्तम्य-विद्येय से बाहर तक प्रसार रखती है और जो त्याग प्रदान होती हुई भी प्रमत्तः सखी की भावात्मक स्थिति को प्राप्त होती है। सखी प्रम जीवन का दीव्य चरण है।

संता—‘सैबा कहानी की सैबा प्रेमिका-रूप में सखी से भी एक दर्जा पावे है। सखी जिह प्रकीर्णन को रोक नहीं पाती सैबा की वह मुठी में है। कभी कबल या कब वह निरीह भाव से दृष्टि पर, मुक्त धारवाचरण में मुक्त

राज्य धमाका करती थी। तब एक दिन तेहरान के शाहजादे की नजर उस पर पड़ी थी और सम्मीर के लम्बे रामग ने उसे रानी के रूप में महलों में जा छोड़ा था। कमी समय का जब धरानी रानी के परोपकारों का प्रतिकार प्रजा ने जिद्दोह के रूप में दिया था और निष्कासित होकर राजा के साथ वैध-विधेय की साक सजाते हुए थी उसने सुबहपूर्वक पाँच बज आतीत किये थे— किन्तु धराज तो वह सब सपना है। तेहरान का राज प्रासाद वही है। राजा के रूप में नाबिर भी विद्यमान है वही पहले की प्रजा भी है। किन्तु धराज भंसा नहीं धराज में विनीत हो चुकी है। इसलिए नहीं कि 'इपिया' की माँति उसके प्रेम में भावकता थी। अपितु इसलिए कि वह प्रेम को हृदयों का घण्ट बन्धन समझती थी। इसलिए नहीं कि वह 'ताप' की माँति सपने-साप में चुटियाँ धनुमब करती थी। अपितु इसलिए कि वह दूर रह कर दूधरों की चुटियों को शास्त्रिमय सम्मार्थ देना चाहती थी—और इसलिए नहीं कि वह धराज की माँति विभाजित प्रेम का बरण करती रही। बरन् इसलिए कि 'भंसा मुहम्मद की सौदी थी' जब मुहम्मद न रही तब भंसा क्यों कर रही। 'वस्तुतः भंसा का प्रेम ऐसा प्रेम है जिसे बड़ी-बड़ी प्राचीरों में नहीं बाँधा जा सकता। उसमें पीड़ा प्रसूत एक व्यापकता है जो सभी की सहायुत्थि को घनाबास [ही] चीज लेती। और साहित्य में कुशल खरिदार्जन का यही तो मानदण्ड होता है।

जम्हा—माखीय दृष्टिकोण से 'कामनातब' में अभिव्यक्त जम्हा की प्रेम भावना ही सर्वोत्कृष्ट ठहरती है। इसमें वैध काल व्यक्ति और मृत्यु से परे खरिदतम प्रेम का बिचल दुधा है। सरीरावसेय हो जाने पर भी जम्हा की आत्मा कँबर राजनाथ की आत्मा से विलस नहीं होती। जम्हा ने कँबर से कहा था 'इतना प्रेम करके छिद भूष न जाना। किन्तु दोनों के विवाह की तैयारी के दौरान में ही कँबर को पकेला पाकर उसके शत्रु उड़ा ले जाते हैं। बीस वर्ष कारा में रहने के बाद कँबर को जेल से भागने का अवसर मिलता है परन्तु जम्हा तब तक धनवरण प्रतीक्षा में प्राण त्याग चुकी होती है। जिझिया के रूप में कँबर को जम्हा की आत्मा का भाव होता है। और धरानी प्रातः किशानों को उसकी भी लाघ ही मिलती है। धराज भी पछियों का एक जोड़ा जम्हा और कँबर द्वारा लबाये गए वृक्ष पर एक भ्रंशपट्टे में निवास करता है। 'यह पछियों का जोड़ा कु बर और जम्हा का जोड़ा है। इसमें किसी को छिद नहीं है। इस प्रकार जम्हा के प्रेम में मृत्यु को भी विविक्ष करने की सामर्थ्य है। वह स्वयं जीवन भर वेदना की प्रतिमूर्ति रही किन्तु अपने प्रेम पर उसने चीज नहीं धाने थी। उसका प्रेम सरीरहीन है। वही कारण है कि यद्यपि धारा

प्रेमचक्र के विविध पापी-पार्श्वों का चरित्र-चित्रण

त्रिक दृष्टि से यह भावना संघर्षात्मक होती है कारण प्रत्येक द्वारा प्राप्त नहीं है और यद्यपि यथार्थ से दूर होने के कारण ऐसे प्रेम-चित्रण प्रमत्त साहित्य में अधिक नहीं हैं तथापि साम्प्रतिकता के देश भारत में यही भावना सर्वोत्कृष्ट समझी जाती रही है। यह मिट्टी से ऊपर उठने की प्रेरणा देती है। अस्तुतः भारतीय संस्कृति में सर्वोत्कृष्ट विवाह-रूप ब्राह्म-विवाह की मान्यता इसी पारदर्श के सहारे बड़ी की गई थी। प्रायः की यथार्थमयी परिस्थिति-सापेक्ष प्रेम-भावनाओं के चित्रण में अन्त का प्रेम अर्थात् अर्थ-सा बीकता हुआ भी प्यार के नाम पर रूय को घसने वालों के लिए एक शीघ्र-सम्पन्न है और ही आसनाओं के पारदर्श में पड़ी हुई नौकराओं के लिए बेतानवी।

प्रेमा तथा सितिया

'कायर' कहानी की प्रेमा तथा 'मोहान' की सितिया का चरित्राध्ययन तुलना-सापेक्ष है। प्रेमा का तो चित्रण ही प्रेमिका रूप-में हुआ है और उभर एक प्रसन्न पिण्ड की बनती सितिया का चरित्र भी प्रेम-प्रधान ही है। फिर भी दोनों की प्रेम-भावनाओं में एक यही एक लम्बी विभाजक रेखा खिंची हुई है।

दोनों का प्रेम एकनिष्ठ है। 'पुण्ड्र' सरकारों की कायल प्रेमा का 'मये' विचारों के सबक के साथ से प्रेम ही जाता है। प्रेमा और केवल एक विराहरी के नहीं हैं अतः पिता की घोर से प्रेमा को अस्वीकृति ही हाथ लगती है। उभर केवल प्रत्यक्षवादी है और प्रेम का अन्त विवाह में ही समझता है। जैसे-जैसे प्रेमा के पिताजी केवल से सम्बन्ध जोड़ने की राजी हो जाते हैं किन्तु उभर अपने परिवार में तबकवित प्रत्यक्षवादी केवल परिस्थिति का सामना नहीं कर पाता और प्रेमा को उत्तर में लिप्त करता है "पुण्ड्री बाताँ को मूल जाया। उस समय मैंने इन बातों की कल्पना नहीं की थी। परिणाम स्वल्प प्रेमा को जो कि हृदय से केवल का ही आत्म-समर्पण कर चुकी थी धारम-हत्या करती पड़ती है इसका अतिरिक्त उसे कोई अन्य मार्ग नबर नहीं था। इस प्रकार प्रेमा के चरित्र में एक ही प्रमुख विशेषता है—एकनिष्ठता। यह युद्ध प्रेमिका है बिना प्रेम-नाश के वह भी ही नहीं सकती और इनमें संदिह नहीं कि उसके यथार्थान्वित करणान्त का कारण व्यक्ति की अपेक्षा-समाज ही अधिक है।

किन्तु अपर्युक्त दृष्टि से सितिया का चरित्र अधिक महत्वपूर्ण है।

एकनिष्ठता कममें भी लगती है बितनी कि प्रेमा में । पर वह सामाजिक परिस्थितियों से ऊपर उठी हुई है । सामाजिक परातल पर माने गए प्रेम का ही वह आर्काबन दिखाई करती है । सिलिया चमारिन है पर उसके रूप पर मोहित होकर पवित्र दातादीन का अपुत्र मातादीन उसके प्रेम का बम बरसे लगता है और फिर धीरे-धीरे प्रेम की आड़ में रूप को छूटा है । कभी उसने कहा था 'सिलिया जब तक बम में बम है तुझे ब्याहिरा की तरह रखूँगा । किन्तु जब सिलिया का लज और मन दोनों लेकर भी बरसे में कुछ नहीं देता चाहता है । 'उसकी ममता को वह बड़े कीचस से नचाठा रहता है । बेटों में उसका काम करता है और नोकपत्नी से अधिक उसे नहीं समझता । पर सिलिया है कि बिचारी टाप तिरस्कृत तथा परिवार टाप प्रताड़ित होने पर भी कहती जाती है, 'मर जाऊँगी पर हरबाई न बनूँगी । एक बार जिसने बाँह पकड़ ली उसी की रहूँगी । और मातादीन से साहसपूर्वक कहती है 'ओ रस्ती तुम्हारे गले में पड़ गई है उसे सास बाहो नहीं छोड़ सकते । और न मैं तुम्हें छोड़ कर कहीं जाऊँगी । पसूरी बहँसी भीख माँवूँगी लेकिन तुम्हें न छोड़ूँगी । इस प्रकार सिलिया में एकनिष्ठता के साथ आत्मसम्मान रक्षा की सामर्थ्य भी है । जब उसकी सखी सोना ही अपने पति के घर में भाभी रात को उसके आयमन पर संदेह करती है तो वह अपने धपमान के कारण निस्तब्ध हो जाती है । होरी के घर में बरसे को जग्म देती है किन्तु बड़े की बात यह है कि जब भी मातादीन द्वारा बहिष्कृत होने पर भी वह हृदय से उस के प्रति प्रममान रहती है और एक धजात प्रतीक्षा के सहारे बिये जाती है । जब मातादीन का पियु-हृदय भी जागता है । वह झिन्न-झिन्न कर अपने बरसे को देखने भी जाता है—'तब जब सिलिया बात बचने गई होती है और धमत्त' जब वह कहता है 'मैं बाह्यण नहीं चमार ही रहना चाहता हूँ । जो अपना बम पाने नहीं चाहता है जो बर्म से मूँह मोड़े नहीं चमार है' तो सिलिया उसे क्षमा कर देती है और उस के गले में बाँहें डाल देती है । इस प्रकार सिलिया स्वयं अपनी सामर्थ्य के सहारे ऊपर उठती है । 'प्रेमा' के चरित्र में वहाँ एकनिष्ठता के साथ परिस्थितियों में बदल कर निज को समाप्त कर देने की भावना है वहाँ सिलिया के चरित्र में वासनात्मक व्यापार के हठित हुए भी एकनिष्ठता ही नहीं अपितु संघर्षों से ऊपर उठने की शक्ति विद्यमान है । सहानुभूति सहनशीलता सेवा त्याग तथा क्षमा उसके प्रेम के अनिवार्य अंग हैं । वस्तुतः वह झुकी भी है तो आत्मसम्मान-रहित होकर नहीं और प्रमा स्वभाव भी करती है ता आत्मसम्मान-सहित नहीं । प्रेमा सर्वस्व झिन्न जाने

प्रमचन्द्र के विचित्र नारी-पार्श्वों का चरित्र-चित्रण

पर किसी को कुछ भी देने की इच्छा में नहीं या पाती किन्तु सिलिया घन्त तक देती ही रहती है— देने की इच्छा उसे नहीं है क्योंकि उसे अपनी कर्मठता पर विश्वास है। इस दृष्टि से सिलिया का चरित्र निश्चय ही प्रेमा पर हावी हो जाता है।

जैनी तथा माधवी

'सैनामार्ग' की छारा तथा 'भावासीष्ण' की भन्ना की प्रति ही प्रेम की बैठी (गाठक) की जैनी तथा बरवान की माधवी प्रेमचन्द्र के उन नारी पार्श्वों में से हैं जो प्रादसौंग्मुख तो हैं किन्तु मनोबिज्ञान से बहुत-कुछ दूर जा पड़े हैं। नहीं कारण है कि इनमें एक प्रकार की निरीहता-सी तो है सजीवता नहीं।

जैनी विचित्र है। गाठक के पूर्वार्ध के अन्तिमार्ध में वह उस प्रमाणीय पुत्रवती के रूप में चित्रित हुई है जो विवाह को कारावास पुरुष की निष्पूरता तथा स्वच्छन्दता को अस्तिमान मान कर चलती है। इसी दौरान अपनी सहेली जमा के पति योगराज के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर उसकी छोर घाट्ट होती है और उसके अपने स्वामात्र में भी घन्तर भा जाता है। तीन बार कर्मपात को झुंटा के कारण जमा बस बसती है। जैनी को यह योगराज का पबिक सामीप्य पिसता है। योगराज जैनी में ही समा को देख कर विवाह की इच्छा प्रकट करता है। जैनी इच्छा रखती हुई भी नहीं है 'नहीं नहीं मैं तुम्हें समा में प्रकृत नहीं बनाना चाहती। यत वह योगराज को छोड़ कर अपनी माँ के पास चली जाती है। वहाँ उसे योगराज की अप्रत्याशित मृत्यु का तार पिसता है और वह मोटर लेकर यह घनापती हुई बस पड़ती है 'बही प्रयात के शुभमूर्तों में एजल (योगराज) से भैरा विवाह होना बड़ी शुभवाच के साथ हवन-पुष्प की परिष्कमा करके ब्लोक और मन्त्र पढ़ कर। भैरे भिपे घास्टर और हवन-पुष्प में कोई घन्तर नहीं रहा। मुझे प्रति की ईश्वर कि घाजीवन इस बत को भिसा सकू।" परिष्कामस्वयं जैनी योगराज की स्मृति से ही विवाह करके बैठ जाती है इसके शर्मों में वह भावपरिणीता बन जाती है। किन्तु जैनी के चरित्र का यह विवाह अस्वाभाविक है। एक तो उसके जीवन की घाग्गताओं एवं संस्कारों में उसकी छीम परिष्काम या मोड़ का ही नहीं सबता इसके योगराज का चरित्र भी इतना घसापाठ्य नहीं है कि वह उसकी स्मृति की पुनारिण बन सके—तीसरी जैनी जैसे अविश्व पात्र

से इस धारण-पात्र को सतत सम्भावना भी नहीं की जा सकती । वस्तुतः जैनी एक धारणपात्र मात्र है । वह स्वयं धारणविरोध रहित नहीं है परन्तु उसका धारण भी स्वस्थ एक अस्तुमित नहीं है । इन्हें यह कहने में हिचक नहीं होनी चाहिए, (सोफिया भी इस तथ्य की साक्षी है) कि प्रेमचन्द भारतीय नारी-पात्रों को भारतीय धारणों की धोर उन्मुख दिखा कर भी उनके प्रेम-विश्लेष में मटक-सँ जाते हैं । कोई भी पग उठाते समय समाज के प्रति उप-योगिता की दृष्टि जैसे उनकी लेखनी पकड़ जाती है । कहीं अन्धता तो यही होता कि वह जैनी तथा योगराज का विवाह ही कर देते । इस तरह सम्भवतः सतत चरित्र-व्यक्तिक निरवसानीय हो जाता—धीरे धीरे नहीं तो पाठक के लिए कम से कम एक सुन्दर का उपस्थापन तो हो ही जाता ।

'चरवान' की मायबी भी कोरे धारण का ही परिणाम है । है तो वह भी परिष्कारशील मायोन्मुखी ही किन्तु निधी परिस्थितियों के आधार पर वह जैनी से कहीं अधिक सफल पात्र है । चरवान जिसे कि वास्तविकता से ही प्रताप (विश्व-सेवक बालाजी) से प्रेम या कहीं अल्प-विवाहित हो जाने के उपरान्त अपनी वैशिका की पुत्री मायबी को उनके योग्य पत्नी के रूप में लेना करती है । मायबी ने वह धारण से ही सेवा-संस्कार संकुचित करती है जिसके परिणामस्वरूप मायबी हृदय से धमकेसे बालाजी को प्रति-रूप में स्वीकार कर लेती है और बालाजी से साक्षात् हो जाने के उपरान्त भी वह विवाह से उन्हें बाँधती नहीं परितु सेवा मार्ग पर अग्रसर होते रहने की प्रेरणा प्रदान करके स्वयं प्रेम-योगिनी ही जाती है । इस प्रकार, मायबी के प्रेम में धारण का आधार जैनी से कहीं अधिक दृढ़ व्यापक अन्वयप्रद स्वकी सीमा से सटा हुआ तथा निरवसनीय है । मायबी प्रेम का अन्त विकास सेवा में ही समझती है किन्तु जैनी के चरित्र में सेवा नाम की कोई वस्तु नहीं है । जैसे मायबी के विश्लेष में भी प्रेमचन्द भूल कर गए हैं और उस भूल को अपनी अपनी कृतियों में उन्हीं निमुहारा भी है । मायबी के चरित्र में उन्हीं नि-विवाह को सेवा मार्ग में बाधा के रूप में ही लिया है । यह प्रेमचन्द-पूर्व नैतिक उपस्थापनों का अभाव है जो कि उनके धारणिक दोनों उपस्थापनों में स्पष्ट-व्यक्तित्व होता है । किन्तु ज्यों-ज्यों उनकी लेखनी गुच्छ होती गई, ज्यों-ज्यों उसे समाज तथा यथार्थ की भी अधिक पहचान होती गई । यही कारण है कि 'चरवान' के पदवाच्य उनकी किसी भी कृति में, किसी भी प्रदान-पात्र की मायबी-वा चरित्र रूप नहीं दिया गया है ।

मासली

'मोदान' के सभी पात्र किसी-न-किसी बर्न का प्रतिनिधित्व करते हैं। मित्र नारी भी इसका अपवाद नहीं है। उसके द्वारा प्रेमचन्द ने उस नागरिक नारी-जग का प्रतिनिधित्व कराया है जो नारी को बूँद-पट की वस्तु नहीं मणितु समाज की रक्खण्ड इकाई तथा पुरुष की समतुल्या समझता है जो वह मानकर चलता है कि जिस प्रकार पुरुष पुरुष के साथ मित्र-भाव से रह सकता है उसी प्रकार स्त्री-पुरुष भी परस्पर पति-पत्नी भाव से ही नहीं भाई-बहन के भाव से भी नहीं मित्र-भाव से भी एक साथ रह सकते हैं और जिसके अन्तर तथा बाह्य में प्रायः बपम्प हुआ करता है। उपयोगितावादी प्रेमचन्द ने मासली के अतिरिक्त मासली-जग के किसी भी अन्य पात्र का कहीं भी प्रबाल रूप से चित्रण नहीं किया है। कारण यह है कि इस प्रकार के चित्रण में व्यक्ति को अधिक उभारने के हेतु उसके समाजोपयोगी रूप से दूर जाना पड़ता है और यह प्रेमचन्द को पसन्द नहीं है अन्यथा वह मासली के चरित्र में मोड़ नाए बिना भी उसे छोड़ सकते थे।

मासली के भी अन्तर तथा बाह्य में सामंजस्य नहीं है। उसके चरित्र के पारम्भिक रूप में बहिरंग तत्वों का प्राबाल्य है और उत्तरार्ध में घाम्यंतरिक गुणों का। स्वयं प्रेमचन्द लिखते हैं "मासली बाहर से तिलसी है भीतर से मधु मक्खी। उसके जीवन में हँसी-ही-हँसी नहीं है केवल मुड़ खाकर कीन भी सकता है। और जिये भी तो वह कोई सुखी जीवन न होया। वह हँसती है इसलिये कि उसे इसके भी बाम मिलते हैं "वह इसलिये कहकड़ी और किनोद करती है कि इसे इसके कसंम्य का भार कुछ हल्का हो जाया है।" उसके रत्नाम पिता अभिज मित्रने से बैकार हो गए थे तिस पर अराब का धीक को अबाज बहनें और मां इन सबका भार मासली ही को बहन करना पड़ता है। मता 'मासली मुबह से पहर टात तक बीड़ती रहती है। उसके अघरों की मुस्काम रुकी है और बसी को बनाए रखने के लिए ही वह पुरुष-समाज में भी निर्दम्य एवं अबाज नति से दूमती रहती है अपने बहिरंग में अन्तरंग को दूबाती चलती है।

मासली के चरित्र के पारम्भिक अघर बहिरंग पत्र में वे सभी विधेयताएँ हैं जो एक मुक्त नारी में होती हैं। हाँ व्यक्तिपरिणी वह क्वापि नहीं है। उसने इन्संब में डाकटी पाव की है मता उसके अरीर प्रघाबन उसी रंग म पये हुए हैं। ऊँची एड़ी का पूता लामी मादि अन्य शू मार-सामग्री के अतिरिक्त पाव भी कोमल है जिसमें अघरता दूट-दूटकर धरी हुई है। नारी-मुलक सज्जा

का नाम निघान नहीं। कुल बाजार में सुनायी है 'मैंने प्रतिज्ञा की है किसी खिलासद्वार से घाबी कर्सेमी। बला की बाकपट्ट भी है खाना की लगाम खीच सकती है तो मेहता को उमार भी सकती है। घामोद-प्रमोद में मस्त रहती है। संपादक धोंकारनाथ को सराब पिलाकर वह उन्मु पनाती है कि घाजीबन बाब रहे। "पुरण-मनोविज्ञान की प्रथमी जानकार" होने का बाबा भी करती है; खाना की बूटियों से प्रयत्न चढाती है तो मेहता के पौरुषयुक्त गुणों पर रीझ भी जाती है। ईस्वर ने बिरबाघ नहीं किन्तु डूबने के मय से धापनाथों में याब भी कर भिती है। प्रवर्धन की कसा में भी निपुण है। पुस्तकों का प्रथमन विशेष नहीं है किन्तु बात करती है तो ऐसे जैसे बचपन में ही विपयाविपल रहा हो। सबसरबाहिता का महत्त्व देती है। सरकार की बाटुधपी करके भी यदि ठमर उठा या सकठा है तो सम्पादक धोंकारनाथ को सलाह देती है, इसमें कोई हर्ज नहीं है। स्वयं सिद्धांतों के प्रति विभू कल है किन्तु बाबा यह है कि सिद्धान्तबाहिनी है धीर यह भी कि 'जो व्यक्ति कर्म धीर बचन में सामंजस्य नहीं रख सकता वह धीर बाहे जो कुछ हो सिद्धान्तबाही नहीं है।' 'जोतिषदावारिणी भी परसे बर्जे की है "धत" बन से विशेष प्रम रखती है" कुनाम में जाना बाहूती है "मगर मी पास मिल बाय तो"। जिस किसी से भी स्वार्थ सब सचता है उस ही धपना समझती है धीर इस भावना का स्पष्टीकरण इस प्रकार करती है कि "मैं मानबताबाह की हत्या नहीं कर सकती। वह धायेंगे तो मैं पुरहुचर्केगी नहीं। साबारख बीबन में कभी बया करना सीखा नहीं धत" मेहता से प्रम भी करती है तो उसमें ईर्ष्या को छिपा नहीं जाती। भीम मुक्ती के प्रति इसीलिये ज्येथा का हृष्टिकोख रखती है कि मेहता उसे सराहनीय समझते हैं। बिबाह उसकी हृष्टि से सराबक धीर धोपक पदार्थ है धारमा की तृप्ति नहीं यही कारण है कि मेहता उसके साथ निर्लिप्त रहने का ही धायस करते हैं। संक्षेपतः प्रेमचन्द के धर्मों में "धाय नवयुग की साक्षात् प्रतिमा है। किन्तु नवयुगीन ही सही गारीब यही तक सीमित होकर रह जाये—यह प्रेमचन्द को माग्य नहीं। धत" वह मासती को मेहता जैसे धाचर्मेबादी गारी-मसतक की धीर धाकृष्ट करते हैं।

मेहता के धर्मार्थ में धाकर मासती में नवयुगीन का उदय होता है—यही मासती की चरित्राभिप्यक्ति का उत्तरदा है। मेहता से उसे धर्मे-धर्मे प्रपाङ्क प्रेम ही बाठा है धीर यह प्रेम-स्वध ही उसकी मुत्तानुमुत्तियों को बाबुठ करके बीबन के धाम्नीय की धीर प्ररिठ करठा है। मासती समझ जाती है कि यह ठीक है कि धपने पहले धपों में भी यह परिवार के प्रति धपना कर्तव्य निभाती

प्रेमबन्ध के विविध गारी-पारों का चरित्र-चित्रण

रही है किन्तु उस कर्तव्य-मार्ग में सबैव फिसलने की भावना है। घात वह अपनी इच्छाओं को सीमित तथा स्वयं को धार्मिक ध्यात्म-निर्मर एवं स्वतःपूर्णे रहने का प्रयत्न करती है। जन्मा को कौतूहल होता है "घब मातरी अपने हाथ से जाना बनाने लगी है।" पुरुष-समाज में निर्बाध पति से भी घब बह नहीं जाती जन्मा का मुँह देखे महीनों मुबार खाते हैं। बह मातरी जिसने दया करना सीखा ही नहीं या बह प्रथम बापुक है और दया तथा सहानुभूति से भी परिचित है। मेहता के एक स्यंध्य-वाक्य को सुनते ही उसके घाम दुजक खाते हैं। व्यापामघासा के लिए वह पीच सी दपये का दाम भी देती है। बह धन्यव्य को कुछ समझती है किन्तु बन से प्रेम बढ़ा है इस सत्य पर भी घब उसे पूर्ण विद्वान है बह जन्मा से निर्बाकतापूर्वक कहती है "यह समझ लो कि बन ने आज तक किसी गारी के हृदय पर विजय नहीं पाई और न कभी पायेगा।" बांधस्य के स्वाम पर एक दिनप्रता भी उसमें या गई है "दरूनि (मेहता ने) नभ्रता एव घाबर की भावना निहित है। मेहता के सम्पर्क में घाकर मातरी की त्याग तथा सेवा की भावनायें भी जाग उठती हैं। मेहता घाम सुबारक हैं सेवा ही घब उनका स्वार्थ होती जाती थी और उनकी इस उदारवृत्ति का असर प्रतात रूप से मातरी पर भी पड़ता जाता था। घब तक जितने मरें उसे मिसे सब ने उसकी विमास-वृत्ति ही को उरसाया। उसकी त्यागवृत्ति दिन-दिन सीख होती जाती थी पर मेहता के संसर्ग में घाकर उसकी त्याग भावना सबय हो पठी थी। सभी मनस्वी प्राणियों में यह भावना द्विती उठती है और प्रकाश पाकर जपक उठनी है। मादमी घगर बन या नाम के पीछे पड़ा है तो सयम्न लो घनी तक बह किसी परिपूत धात्मा के सम्पर्क में नहीं पाया।" मातरी घब प्राथिण सुपार में मेहता को सहयोग देती है और गरीबों के घर बिना जीन लिये ही मरीजों को देखने लगी जाती है। सामाजिक समस्याओं पर सोच-विचार करने की प्रसाधारण समता भी उसमें था गई है। बह कोई पूर्वाग्रह नैकर नहीं बसती— "पुरुष निर्दयी ह माना कैम्पि है तो इन्हीं माताओं का बैटा। क्यों माता ने पुत्र को ऐसी घिला नहीं की कि बह माता की स्त्री-जाति की पूजा करता ? मातरी में बालास्य का हल्का-सा पुत्र भी सब मिमता है जब बह घामी रात को अपने नौकर सोबर के बच्चे को बुमराती है। इसके साथ ही उसकी प्रेम-भावना भी महत्त्वपूर्ण है यह प्रेम का मूल घन्स विद्वान में मानती है। कलका प्रबस विद्वान है कि निर्भ्रान्त प्रेम में परीणा की चर्चा करना उनमें मंथनों को भरना ।

वह देखती है कि जिस मेहता के प्रति वह प्रेमना का भाव रखती है वही उस के ऊपर शक्ति प्रदान करता है ता वह मान करती हुई कहती है 'क्या तुम इतना भी नहीं जानते कि नारी परीक्षा नहीं चाहती प्रेम चाहती है। परीक्षा गुणों को प्रबल गुण सुन्दर को असुन्दर बनाने वाली चीज है प्रेम प्रबलुओं को गुप्त बनाता है, असुन्दर को सुन्दर। मैंने तुमसे प्रेम किया मैं कल्पना ही नहीं कर सकती कि तुम में कोई सुपई भी है, मगर तुमने मेरी परीक्षा की और तुम मुझे अस्विकार-बर्चल और जाने क्या-क्या समझकर मुझसे हमेशा दूर भागते रहे' प्रेम देख की वस्तु नहीं आत्मा की वस्तु है। संदेह का वहाँ जग मी स्थान नहीं और हिंसा (प्रतिद्वन्द्वी को देखकर प्रेमपात्र की) तो संदेह का ही परिणाम है। वह सम्पूर्ण आत्मसमर्पण है। उसके मन्दिर में तुम परीक्षक बनकर नहीं उपासक बनकर ही बरदान पा सकते हो।" इस प्रकार जब उसे विश्वास हो जाता है कि मेहता की दृष्टि परीक्षक की है तो उसका यह एवं आत्मसम्मान बाह्य हो चले हैं। 'आज मेहता ने जैसे उसे ठुकरा कर उसकी आत्म-शक्ति को बचा दिया। उसके मन में आसोड़न चलता रहता है और वह अन्ततः यही निश्चय करती है कि 'मित्र बनकर रहना स्त्री पुंस्य बनकर रहने से कहीं सुखकर है। और वह मेहता से घाबह करती है कि सेवा-मार्ग ही अन्वयतम मार्ग है मगर वह उसका पत्र-वर्सक मित्र बनकर ही उस पत्र पर बढ़ता चले। मेहता उसके चरणों पर गिर पड़ता है और अन्ततः दोनों धार्मिकवद होकर जैसे पत्राक्षर रहने की सपना लेते हैं।

इस प्रकार एक निरासिनी से उठाकर मासती को समाज-सेविका का रूप दिया गया है। प्रेमचन्द के पुराने पाठक को इसमें कुछ भी अस्वाभाविक नहीं लगेगा क्योंकि वह इसका चिरकाल से अध्यस्त हो चुका होता है और प्रेमचन्द भी मानकर चलते हैं कि यह परिवर्तन अप्रत्याशित नहीं होता। हमें इस विषय में कुछ नहीं कहना है किन्तु इतना प्रबल है कि मेहता के मुख से जिस निवृत्तिमानं तथा प्रवृत्तिमार्ग के सार्वत्रस्य—सेवामार्ग—की बात कहलाई गई है दोनों के मित्र-भाव से उसका सर्वश्रेष्ठ रूप स्पष्ट नहीं होता। वस्तुतः मासती के चरित्र-भाष्यम से प्रेमचन्द ने नारी के उस धार्मिकवद रूप को प्रस्तुत किया है जिसका अंकन परबर्षी उपन्यास-साहित्य ने मनोविज्ञान की धाड़ लेकर कुष्ठापी के विस्तेपण के रूप में बहुलता से हुआ है। यह तो ठीक है कि एक ठितनी-वृत्ति की नारी भी सुसंगतिवद जीवन की सम्पीरता में उठर सकती है किन्तु वह प्रेमी से पति नहीं अपितु धार्मिक मित्र रूप में ही धार्मिकवद होकर रह चाये—यह भाठ मूमि पर लिखित समाज-सापेदा

सत्साहित्य का स्वस्व तथा व्यावहारिक दृष्टिकोण कदापि नहीं है। वस्तुतः मासती और कायाकरूप की लौमी एक ही प्रेम-समस्या के दो आत्मनिक जोर हैं जिनमें एक भारतीय है दूसरा अभाष्यीय। सामाजिकता की नजर से दोनों को ही धपाना कठिन है। जहाँ तक चरित्र चित्रण की कला का प्रश्न है 'गोदान' के अन्य पात्रों की भाँति मासती के चित्रण में भी प्रेमचन्द को असाधारण सफलता मिली है। समष्टि चरित्र की अपेक्षा वह व्यक्ति चरित्र ही अधिक है।

(ब) परिणीता रूप

सुमित्रा

प्रेमचन्द की नारी-बाबना तथा चरित्र चित्रण की दृष्टि से 'प्रतिज्ञा' की सुमित्रा का महत्त्व उतना अधिक नहीं है जितना कि हिन्दी-अपभ्रंश में चरित्र चित्रण की परम्परा की दृष्टि से। ऐतिहासिक दृष्टि से वह अपने बंध का सर्वप्रथम चरित्र है जो किसी भाँति भी 'सेवासदन' की सुमन आदि से पीछा नहीं है। तो भी इस बीच में उसे उल्लेख समझ लेने का अधिकार मया रहता है और विशेषतः उसे पुरुष-समाज के प्रति विद्रोही पात्र समझकर बहुत से अच्छे द्वारा अभिव्यक्ति स्थापित किया भी गया है। ऐसा हम तभी समझते हैं जब उसके वास्तविक चरित्र के साथ विपरीत मय दो-चार विद्रोह-वाक्यों को ही सत्य मानकर मान झूठार, धारम-सम्मान विद्रोह तथा विचार और क्रम के परस्पर सम्बन्ध को सूत्रम दृष्टि से नहीं परखते।

सुमित्रा एक अविद्यता है मान-अधिष्ठाता। मान ही उसके चरित्र की सर्वाधिक सधम वृत्ति है। रीतिकामीन नायिका हो व्यक्तित्व के अन्वित होने पर भी दारौरिक सुख मोप के हेतु पति पर आसक्त रहती थी किन्तु प्रेमचन्द की सुमित्रा चुप बैठने वाली नहीं है। उसके मान का विठना ही तिरस्कार होता है वह उतना ही अधिक मान करती है। उसका विश्वास है कि यदि पति उसके प्रतिभूत है तो वह भी क्यों किसी के अनुकूल नसे। वह पूर्ण से कहती है "कल महाशय रात भर गायब रहे समझते हुंकि मनाने जाती होगी। पैरी बना जाती। मैंने घरदर से द्वार बन्द कर लिये"। उसका पति कंबूत है किन्तु वह जानबूझ कर उसे रिक्ता रिक्ताकर लुब्ध करती है। एक घोर तो वह पूर्ण से कहती है "भर मुझे कहीं धायप होता तो इस घर में धण भर भी न रहती" और दूसरी ओर जब कमला (पति) उसे पिता के घर बनी जाने को कहता है तो वह मानपूर्वक कहती है "येच घर बही है वहाँ से और

कहीं नहीं जा सकती। पति अपनी यादों के अनुसार विद्युत्त ही बुरा भी रो रही होती है किन्तु उधर सुमित्रा हार्मोनियम पर पाठी हुई दीखती है। घोर जब उसे सदैव ही नहीं विस्वास हो जाता है कि कमला बिचबा पूरुष पर आसक्त है घोर उसकी पूर्णस्नेह प्रकृतिसत्ता कर रहा है तो वह कमला की तनिक भी परवाह करना छोड़ देती है। इस प्रकार सुमित्रा एक पूर्ण मानवती है। उसके इस भावण को देखकर प्रेमचन्द लिखत है "रपली का मान अजेय है धर है धनगठ है किन्तु सब ठा वह है कि रपली का मान नहीं धरिपु उसका पत्नीत्व धर है प्रसम भ्रष्टनिहित प्रेम की प्यास धरन्त है। कहने का तात्पर्य यह कि सुमित्रा की मनोदृष्टि को डालने वाला सबसे प्रथम तत्त्व उसका असम्पुष्ट पत्नीत्व है। वह अन्वहाय्य मध्यवर्गीय होती हुई भी धार्मिक स्तर की दृष्टि से एक उच्चवर्गीय स्त्री है। पति तथा पीहर, दोनों घोर से उसे खूब-सख्त की किसी भी सामग्री का प्रभाव नहीं। प्रथम बाह्य संघर्ष नाम की कोई वस्तु उसके जीवन में नहीं है। ऐसी प्रकृति में घोर भी स्वाभाविक है कि पति के प्यार की चाह उसे अधिक तीव्र हो किन्तु उसे वह प्यार मिलाता ही नहीं। कमला बारह-बारह बजे तक रात को नीटता नहीं है। सुमित्रा समझती है "मेरा विवाह तो महल से हुआ है"। वह पूर्ण से कहती है "मुझे तो यह प्यार है कि हमके हृदय ही नहीं। कमरे में घाते हैं तो पहली बात जो इनके मूँह से निकलती है वह यह है कि अभी तक बच्ची क्यों नहीं बुझाई। इसलिये एक धर्म की भावना धीरे-धीरे उसके मन में तीव्रतर होती जाती है। उसका मान जोड़ा उच्च कम पारस करता है। इतना होने पर भी वह पति के हृदय को पाने के लिए नित्य नये-नये विचार करती है। जब पति को उसकी परवाह नहीं होती वह ऊपर से मान के प्रावस्य को रखती हुई भी नीतर से उसके सभी कार्यों को संकित दृष्टि से देखती है। कमला को साक्षिणी जाता है एक पूर्ण के लिए, एक उसके लिए। पति की धर-भृति को ताड़कर वह बल बटती है दोनों साक्षियों को उखकर नीचे बसे पानी में डेक देती है। वह पूर्ण से पुरवों द्वारा स्त्रियों पर किये गए सुपयुक्तारों के धर्या चारों के प्रति विमोह प्रकट करती हुई अपने धर को एक विद्रोहिणी भी बताती है किन्तु वास्तविकता यही है कि मान का बहरा स्वाम भरती हुई भी पति-भूत के सारे में विधाय के लिए समझती ही रहती है। "घारे बिले घोर धिकने घूसते बाते ने" "पर अभी तक मान का बन्धन नहीं टूटा था—रपली का हृदय अपनी पराजब स्वीकार न कर सकता था।" वह कमला को मनाने के लिए एक रक्त उसके द्वार तक जाती थी है किन्तु मान रता धरना संकोच

के कारण मोठर कदम नहीं रख पाती। इतने में परिस्थिति और भी बिगड़ जाती है। पुर्खा पर बमसा का प्रेम उसे झूठ हो जाता है। घबराहट और भी अधिक बेम से पति का प्रतिकार करती है। बूझती और जब पुर्खा घर से जाने लगती है तो वह उसे रोकती भी नहीं। निश्चित रूप से उसके मन में यही विचार होता है कि सम्भवतः ऐसा ही जाने से पति की दृष्टि उसकी ओर आकर्षित हो जाये। अतः जब उसका पति ठोकर खाकर ठीक मार्ग पर आ जाता है तो वह उसकी कारण पाकर जैसे इतकृत्य हो जाती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सुमित्रा के चरित्र में यह तथा पत्नीत्व का संघर्ष विद्यमान है किन्तु उसका मान पति के बखीकरण का मन्त्र मात्र ही है। उसके चरित्र में मान की अपेक्षा उसके पत्नीत्व का प्राबल्य है। आत्मसम्मान की चरम सीमा को उसका मान स्पर्श नहीं कर पाया है। स्पष्ट छात्रों में उसका आत्मसम्मान अथवा अर्ध मान मात्र बनकर रह गया है। वह उच्च है किन्तु उच्चतम नहीं। 'प्रेमाश्रम' की विद्यावती और 'निर्मला' की सुधा— इसके उच्चतर तथा उच्चतम रूप हैं।

पत्नी-रूप में सुमित्रा की विद्रोहिणी सुमित्रा मात्र से भी चर्चा की जाती है। निश्चय ही इस उच्च की अधिष्ठाता 'प्रतिज्ञा' में हुई है। पुर्खा से वह पुछती है "माझिर पुरय अपनी स्त्री पर क्यों इतना रोब बनाता है? बहुत कुछ गुन्धारी समझ में आता है?" पुर्खा उत्तर देती है कि पुरय ने स्त्री की अर्ध रक्षा की है फिर रोब क्यों न बनाये। इस पर सुमित्रा कहती है "रक्षा की है तो अपने स्वार्थ से कुछ इसकिये नहीं कि स्त्रियों के प्रति उनके मान बढ़ उदार है। अपनी आनबाद के लिए उन्हें सन्तान की बकरत न होती तो कोई स्त्री की बात भी न पुछता"। वह यह भी कहती है "मका तो तब घाबे जब लड़की बाले नी लड़कियों का बहने सेने लमें।" इतना ही नहीं वह यह भी कहती है "घबर नई अपने परिवार घर को जिम्मा सकता है तो क्या स्त्री अपनी जमाई के अपना पेट भी नहीं भर सकती।" किन्तु वह केवल यह सब कहती ही रहती है करती कुछ भी नहीं। उसके चरित्र में आत्मिक ताइस नहीं है। उसमें विचार और व्यवहार का संबंध है। ऐसा भयानक है मानो वह किसी गुणवत्ता की बकृता को निगल भाई हो और पुर्खा के सामने बड़ाबड़ा उसे निश्चयकर फेंक रही हो। वह जब पति से यह कहती है कि "मैं अदाबत में लड़कर जीव ही जया महीना ले लूंगी" तो उसका कारण वह यही होती है जो पितापुत्र से पचास रुपये आत्मिक के रूप में उसे मिलती है। ऐसा न होता तो अपने विद्रोही स्वरूप को जतने क्रियान्वित करते रिखा दिया होता। किन्तु

वह तो जैसे घात में कुचामी पति का भी स्वागत करने को लड़ी बीसवीं है।
 धब ठीक हो गए। बदनामी हुई तो क्या पर ठीक रास्त पर घा पय। धब
 तो वो कुछ है मैं हूँ—बस सुमित्रा की परितृप्ति के लिए तो इतना ही पर्याप्त
 है। विचार और व्यवहार में साम्य के स्थान पर उसने एक अजीब खोजना
 सा अजीबापन विद्यमान है जो उसके चरित्र को झलटा और सस्ता बना देते
 हैं। कभी पति को कइती है 'ऐसे बेहूमा मय नहीं करते हैं,' कभी लम्पट कभी
 कुपुं और कभी क्या नहीं। वस्तुतः चरित्र चित्रण की दृष्टि से प्रमथन्द यहाँ
 बहुत सफल नहीं रहे हैं। तिस पर भी श्री हंसराज 'रहबर लिखते हैं 'सुमित्रा
 तो अंधे—बहुत अंधे—स्थान पर खड़ी परिस्थितियों पर, कुत्तों और विपत्तियों
 पर जैसे मुस्कय रही है। वह क्या की मुहताज नहीं है' उसकी अंधाई का
 नसूना तो हम देख ही चुके हैं—जहाँ तक क्या की मुहताज होने का प्रश्न है
 यहाँ इतना ही नहीं कि आजीवन वो कुछ भी उसने किया पति की क्या प्राप्ति
 के हेतु ही किया अपितु वह जिसकी भी सहायसुविधि पाली है उसी से क्या की
 भीख माँपती है। जिस दिन पुरुषों उसके घर में धाई उस दिन 'सुमित्रा पूर्ण'
 से बलती थी किन्तु समय ही दिन वह रो रोकर बाचना करती है 'इस घर
 में मेरा कोई अपना नहीं है वहन कबरवस्ती पड़ी हुई है' मेरे मरने बीने की
 किसी को परवाह नहीं है। तुमसे यही प्रार्थना है कि मुझ पर दया रखना।
 इस दृष्टि से तो 'कुसुम' कहानी की कुसुम सुमित्रा से कहीं अधिक अंधे
 स्वतः पूर्ण चरित्र पर खड़ी है।

निष्कर्षतः सुमित्रा के चरित्र को तीन दृष्टियों से धाँका जा सकता है।
 पहली दृष्टि है चरित्र-चित्रण की। इस दृष्टि से वह एक निष्क्रिय चरित्र है जो
 केवल बरत ही सकता है बरस नहीं बत। प्रारम्भिक प्रयास मात्र है। दूसरी
 दृष्टि है प्रमथन्द की नारीभावना की। प्रमथन्द नारी को त्याग सेवा धारण
 सम्मान सहनशीलता तथा समर्पण आदि गुणों से सन्निभ मानते हैं। त्याग
 नाम की वस्तु का लेप भी सुमित्रा में नहीं है—पिता द्वारा भेजे गए मासिक
 पचास रुपये का बखान मात्र ही करते रहना त्याग नहीं कहलाता' पूर्णों को
 घर में ही रखकर उस असहाय विधवा को वह अपनी त्याग-शक्ति से
 अंधा उठाती तो मिश्रण ही पीपन हो जाती। सेवा की बात तो यह कि
 मास तक को वह 'चिकारी रहती है' फिर पति की सेवा द्वारा सम्भार पर
 माना तो बहुत अंधी बात है। सहनशीलता भी उसमें नहीं है—सहनशील
 व्यक्ति जो मूँह में घा चामे बक नहीं देते। समर्पण का अर्थ होता है 'मैं दे
 दूँ और न फिर कुछ लूँ'। उन्मत्त ? एना भी कोई विरहाम सुमित्रा को नहीं

है। इस प्रकार ने-नेकर बची रहती है घातक-सम्मान की भावना। एक तो यह भावना व्यक्त-सीमित होने के लिये जैसे भी शेष सभी से गौण रहती है दूसरे सुमित्रा के चरित्र में यह भी याग धनवा यह के एक सीमित प्रकार तक ही रह गई है। और फिर एक उत्पन्न का सफल निष्पत्त तो प्रेमचन्द कहानी में बहुत ही सुन्दर ढंग से करते हैं। किसी कहानी का विषय बनकर सम्भवतः सुमित्रा अधिक लिखर गई होती। पर प्रेमचन्द की नारी-भावना की दृष्टि से भी सुमित्रा एक अपूर्ण चरित्र है। चौथरी दृष्टि है ऐतिहासिक महत्त्व की। इस दृष्टि से निश्चय ही सुमित्रा हिन्दी-उपन्यास की महान उपलब्धियों में से एक है। साथ ही प्रेमचन्द की विकास-वाच के प्रथम समस्यात्मक चरण होने के कारण भी सुमित्रा का चरित्र महत्त्वपूर्ण है।

सुमन

सुमन प्रेमचन्द की एक ऐसी चरित्र-मूर्ति है जिसकी सामयिक प्रसिद्धि तो बहुत मिली किन्तु जिसकी प्राप्ति उनके साहित्य में नहीं हुई। इसका कारण सम्भवतः यही है कि 'शेवासदन' पर पूर्व प्रेमचन्द नैतिक उपन्यासों तथा 'सरकार' आदि उच्च उपन्यास लेखकों का प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव विद्यमान है। ज्यों-ज्यों प्रेमचन्द की नारी के प्रति निजी चारणा स्थिर होती गई त्यों-त्यों वह उसके सास्नत मूर्तियों की ओर आकृष्ट होते गए। बेस्वा समस्या को समझने एक-दो कहानियों को छोड़कर, पुनः नहीं उभारा। बहूँ प्रसन्नचित्र चित्रण किया भी बहूँ वह उसकी विकृतिपूर्ण के कारणों में न उसका कर उसके सुधारोन्मुखी रूप को ही प्राधान्य देते रहे। केवल सुमन ही एक ऐसा चरित्र है जिसके माध्यम से इस समस्या पर उन्होंने बहुमूर्ती दृष्टि डाली है और सम्भवतः नारी की अकहेलना के परिस्थिति-सापेक्ष पुनरिजाओं का निर्धारण भी किया है। साथ ही अपनी नारी भावना के मातृ स्वप्न के भावक भी सुमन की चरित्र-निर्माण में से निवारित कर लिए हैं। इन दृष्टियों से सुमन का महत्त्व पहले की सभी परिणीतियों की अपेक्षा अधिक है। प्रेम की समस्या की खोज मनोरमा में की जा सकती है सुमित्रा की समस्या विद्यावती में समझी जा सकती है किन्तु सुमन को सुमन ने बाहर जानर बुझना असम्भव-सा हो जाता है।

सुमन के चरित्र के स्पष्टतः तीन चरण हैं—संस्कारबद्ध नारी-रूप विकृत नारी-रूप तथा प्रादुर्भूत नारी-रूप। प्रेमचन्द ने इन तीनों का क्रमशः एक-दूसरे से स्फुरण दिखाया है।

संस्कारबद्ध नारी-रूप के अन्तर्गत सुमन के चरित्र का बहु पक्ष घाटा है जिसकी निर्मिति पिता के घर में ही हो चुकी होती है और जिसमें घाबरा हो कर वह पति के घर जाती है। पत्नी रूप में उसे अपने पहले के संस्कारों के सबबा विपरीत विषय परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है किन्तु संस्कार गत भौतिक इच्छाओं को कोई समुचित मोड़ न दे पाने की असमर्थता में वह एक विद्वत मार्य पर बड़ जाती है। दारोगा कुप्युण्यत्व की बड़ी सड़की सुमन की मार्याविस्था में ही “बुधरो से बहकर रहना चाहती थी। यदि बाजार से दोनों बहनों की एक ही प्रकार की साड़ियाँ घाटी थीं तो सुमन मुह फुला भेटी थी। छांटा (छोटी सड़की) को जो कुछ मिल जाता उसी में प्रसन्न रहती थी। उबर दारोगा भी थी किञ्चल्यत-सुधार नहीं थे। इन सड़कियों को प्राण से भी अधिक प्यार करते थे। उनके लिए अन्धे-सै-अन्धे कपड़े साठे हैं और सहर से मित्य तरह-तरह की चीजें मँपाया करते। बाजार में कोई तरहवार कपड़ा देख कर उनका भी नहीं मानता था सड़कियों के लिए अक्सर से घाते थे कोई सूट के बन पर भी इस भाँति न टूटता होया। सड़कियों को पढ़ाने और सीना-विरोना छिछाने के लिये उन्होंने एक ईसाई सेडी रख ली थी” — यह है सुमन का आरम्भिक परिवेश जिसका प्रभाव उस पर सर्वाधिक पड़ता है। विवाह से पूर्व ही वह “सुन्दर बचप और अनिमागिनी” है। प्रबन्धन की घाबरा भी उसमें है। बूढ़े में फूँक मारना उसने कभी नहीं सीखा बहस्वी का वास्तविक धर्म उसने कभी नहीं समझा। धारणा अथवा धर्म नाम की कोई वस्तु उसे बाध नहीं है। उसमें इच्छाओं-ही-इच्छाओं का प्राबल्य है सुख-भोग ही उसके लिए जीवन-सर्वस्व है। स्वाभाविक है कि ऐसी सुबती अल्पजान सगु राम में भी पति को जीवन-सर्वस्व मानकर नहीं चल सकती। किन्तु सुमन का तो विवाह भी होता है तो एक पन्द्रह रुपये मासिक पाने वाले कुहासू बाबू मजावर प्रसाद से। इन्पर उसके पिता रिखत सेने के अघराय में कारावास में से चल बचा कर उन्होंने रखा नहीं था फिर अन्धे घर की प्राप्ति जैसे सम्भव थी। उन्होंने तो जो घर चुना हुमा था वह “सुन्दर-बुसील और सुशिखित” था—“कुछ डेबा और बनी थी। पर जब सुमन के मामा अमाताब ने यह जानते हुए भी कि सुमन कितनी रूपवती और पढ़ी-लिखी है बोध से बहकर मजावर के रूप में मांग बिद्या कुछ और रूप की धोर से अर्धे बन्द करके कैवल्य कुलीनता ही को पकड़ा। सुमन की माता “बामाव को देखकर बहुत रोई, उसे ऐसा कुछ हुमा मानो सुमन को किसी ने कुएं में डकेल दिया। मजावर के घर में और कोई प्राली भी नहीं है, एक बूड़ी हुमा भी वह भी

प्रेमबन्ध के विविध नाती-मातों का चरित्र-विवरण

गुमन के घाते ही बस बसती है। घर के पास से घोहरों की गुजर होती रहती है बैस्यामों के मकान भी घर के सामने ही हैं और पास-पड़ोस की त्रियाँ भी ममी-जी-सनी निम्नवर्गिय हैं।—ऐसा है गुमन की संसृष्ट का परिवेश। परिणामस्वरूप वह अपने संस्कारों को बरस नहीं पाती है। "उत्तरे दुहिणी बनने की नहीं इच्छियों के धानस्य भोग की धिखा पाई थी"। घर पत्नी के रूप में वह पूर्णतः घसकल है। यह प्रबन्ध में सफल न होने के कारण महीने के घाते में ही ऐसे लज हो जाते हैं नई छात्रियाँ तथा प्राभूपणों धारि की प्राप्ति भी उसके लिए सम्भव नहीं रहती। घर को ही महीने के उपरान्त उसे पति से विद्वेषणा-धी हो जाती है। "उसका हृदय ससन्धोप से व्याकुल रहने" मगता है। सुख प्राप्ति की उसकी दृष्ट्या पुट-भुट कर उबलने लपटी है। सामने के मकान की भोली माम की बेरया के ऐश्वर्यमय जीवन को देख कर वह उसकी घोर घाकृष्ट होती है। जिह्वा उस भोगने के लिए पति से कपट से वह पहले ही बरले सम पकी थी अब सौन्दर्य-रस की प्रवृत्ति भी मार्ग पा जाती है। घर के सामने से गुजरने वाले घोहरों को धिक् की घाक ऊपर एक बार जोड़ा-सा बेद भी होता है और वह नया-नया धारि के घाब म्बतों टाप अपनी धार्मिक वृत्ति को बनाने का असफल प्रयत्न भी करती है पर वह संस्कारों के घाने पुन वह जाती है। पूठी धान-धीनत उसे पुन घाकृष्ट करती है। वह देखती है कि भोली उससे कहीं धार्मिक सुधी है समान के प्रत्येक स्वान पर उसका धारर होता है बड़े-बड़े लोगों की पत्नियों उसकी भोली की घोर घोर भी घाकृष्ट होती है। इसका प्रबन्ध भी उसे मिला जाता है जब एक रात अपनी नई लहरी गुमना के घर से भोली का नाब देखकर रात को बिसम्ब से लौटती है और मनाबर उसे घर से निकाल देता है। वह अपने मान के कारण समा तक नहीं मीगती और जब सुबहा के समान सुबा एक बनि ही उसकी घोर से उयेया प्रकट करते हैं तो गुमन भोली के डार पर घा लड़ी होती है—बह बेरया बन जाती है। यही है गुमन के चरित्र का पत्नी-रूप। इन प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि उसके इन रूप में निजी व्यक्तित्व निर्माण की विशेषताओं की अपेक्षा प्राधान्य है बाह्य परिस्थितियों का। पत्नी रूप में वह पूर्णतः घसकल है। त्याग सेवा प्रेम धारम-मंजन धारि किन्हीं भी जीवन के धारवत मूर्खों की अपेक्षा उसमें काम और मर्च की तीव्रता का ही प्राधान्य है। मर्च के संरक्षणानाब में उसकी ये दोनों वृत्तियाँ ही विगुंलज

तथा प्रस्वस्व हो कर प्रतिबाधिता का पहुँच जाती है। इस रूप में उसकी विरा पताई है—भोगलिप्सा हीर्ष्यानिमान चांचल्य मिथ्या-दान प्रदर्शन प्रस श्लोष तथा धर्म-मिथ्या। ऐश्वर्यहीन पति-सेम उसकी दृष्टि में प्रेम की संज्ञा की प्राप्ति नहीं हो सकता वह उससे समझौता करने की बात तक नहीं सोचती। संस्कारों ने बहुत बुरी तरह से जकड़ रक्खा रहा है उसे।

मुमन के चरित्र का दूषण चरण है उसका विद्वत नारी-रूप अर्थात् देव्या रूप। इस रूप में उसे कुछ होश थाता है और जीवन के उपार्थ का धामात होता है। पति के साथ उसका जीवन 'अर्जुनार रहित नौका के समान' डोला करता था किन्तु अब वह स्वतंत्र है। उसे जीवन को बोड़ी महारई से देखने और सोचने का धमसर मिलता है और शत्रु-ही-साय समाज के खोलसेपन का सायात्कार भी होता है। वह यह मनी भाँति देख लेती है "कि कितना धारर मेरा धन ही रहा है उसका सतसि भी तक नहीं होता था। एक बार मैं सैठ बिम्मनमाल के ठाकुर द्वारे में भूना देखने गई थी। घाटी रात बाहर लड़ी सीबती रही किसी ने नीतर नहीं जाने दिया। लेकिन कम उठी ठाकुर द्वारे में मेरा नामा हुआ तो ऐसा जान पड़ता था मानों मेरे चरणों से वह मन्दिप बिन्न हो गया। किन्तु साथ ही-साय वह यह भी समझ जाती है कि भोगलिप्सा ही जीवन-उर्ध्वन नहीं है। धमो तक उसके सम्पर्क में कोई भी मना ममुष्य नहीं धाया था पर यहाँ पहुँचकर विद्वतनारत के रूप में एक सन्ने समाज-सुधारक से उसका सायात्कार होता है। 'मुमन ने धाम तक किसी से ऐसी बातें न सुनी थीं। वह इन्दिनों के सुख को धपने धापर को जीवन का मुख्य उद्देश्य समझती थी। उसे धाम मासूम हुआ कि सुख कालीप से प्राप्त होता है और धारर सेवा से। वह विद्वतनारत से कहती है 'मैं सुख और धारर दोनों ही को छोड़ सकती हूँ, पर जीवन-निर्वाह का तो कुछ उपाय करना ही पड़ेगा। उसका ध्यान अब वास्तविक गार्हस्प्य धामिती की धोर भी जाता है। प्रेमचन्द के शब्दों में "यह एक प्रकार की वेताधनी होती है जो धारमा की धोर से भोग विभास में लिप्त मन को मिलती है। वह वैशवा-वृत्ति को लुप्टा-सापर कहती है। "वहाँ या तो धमने धाते हैं" वह सोचती है "या धातों के धोर। कोई धपने धन का धान बिद्याता है कोई धपनी धिकनी धुराई धातों का। उनके हृदय मावसुष्य धुष्क और धोक्षेपन से भरे हुए होते हैं। परिणामस्वरूप वह धपने नाचधर के धातों को लदा-सधा के लिए बन्द कर लेती है उठी तरह जिस तरह वह पति-धार को लईय के लिए छोड़ धाई थी। इस प्रकार मुमन के जीवन के इस धूसरे चरण में मानव-जीवन की धार्धकता की धोर विभासा

बरी दृष्टि विद्यमान है। वह समझने लगती है कि मुझ से बड़ा सन्तोष है और आदर से खेच सीबा। इसके साथ ही बेस्वा-रूप में ही उसे एक धर्म साथ ही उपलब्धि भी होती है। वह है प्रेम। सदान नाम का मुझक उसके कोठे पर आया करता था। 'मुझ इस समय सदान के प्रेम-आश में खड़ी हुई थी। प्रेम का ध्यान उसे कभी नहीं प्राप्त हुआ था। इस दुर्लभ रत्न को पाकर उसे हाथ से नहीं जाने देना चाहती थी।' किन्तु दासमण्डी का त्याग करते हुए उसे जीवन में पहली बार आनास होता है कि प्यार केवल शरीर का विषय ही नहीं है अपितु उसका आधार भी त्याग होता है। वह सोचती है कि "कैसे अपने हाथ से एक सरल हृदय मुझक का जीवन लपट करे?" साथ ही यह भी विचार करता है "किन्तु सदान को कैसे मुनासदी। और अन्ततः वह यही निश्चय करती है कि स्वार्थ पर आधारित स्वाकर्षण से कुछ प्रेम की अपेक्षा उसकी त्यागाभित वेदनामयी स्मृति कहीं अधिक श्रेष्ठ है। इस प्रकार हम देखते हैं कि मुझ के चरित्र का पहला चरण यदि अज्ञान तथा मिथ्या की स्थिति है तो दूसरे में उसे उसका आनास हो जाता है और उसकी दृष्टि अपने ही अनुभवों के आशोक में जीवन के आधारत मूर्खों पर केन्द्रित हो जाती है। प्रमत्त यहाँ यह मान कर बसे हैं कि "जिस तरह पक्षर पाकर मनुष्य की पाप-बन्धा बाधित हो जाती है उसी प्रकार पक्षर पाकर उसकी धर्म-खेपटा भी बाधित हो जाती है।"

मुझ के जीवन-विकास का तीसरा तथा अन्तिम चरण है उसका आदर नाश-रूप—दासमण्डी से लेकर सेवासदान तक की यात्रा। अब बहुविधभाव में रहती है और सब उससे प्रसन्न है। उसकी कर्म-निष्ठा देखकर लोग अचिन्त हो जाते हैं। इस रूप में उसके चरित्र की सबसे पहली विशेषता है उसकी कर्म निष्ठा। वह रोम गंगा-स्नान को जाती है और उसके पति यज्ञाचर के घरों में वह सब एक 'विदुषी' है। कर्त्तव्याकर्त्तव्य का ज्ञान होने पर मुझ के मन में तीव्र परचाताप की भावना का उदय होता है। 'वह अपनी ही दृष्टि में एक पिशाचिनी मानूँ होती थी।' "जिस प्रकार कोई रोमी क्लोरोफार्म लेने के पश्चात् होश में आकर अपने पीरे फोड़े के गहरे भाव को देखता है और पीड़ा तथा भय से फिर मूर्च्छित हो जाता है वही बराबर इस समय मुझ की थी। परचा ताप के अन्तर्द में वह आत्महत्या तक का प्रयत्न करती है किन्तु रचना के तट पर महात्मा यज्ञाचर प्रसाद के साक्षात्कार से उसके जीवन में रोम का मुक्तपाव होता है। अन्ततः रोम भावना ही मुझ के इस मानवी रूप का मूल तत्त्व है। "अब तब तुम अपने लिए पीठी भी अब दूसरों के लिए दियो"—महात्मा का

यह उपदेश-वाक्य ही सब उसके लिए जीवन-सार है। उसकी बहुत घान्ता विषवाभम में उसके पास या जाती है। वह उसके कल्याण के हेतु धायम को कुछ समय के लिए त्याग देती है और सबन को उसका परिणयन करने की कर्तव्य-प्रेरणा देती है। घान्ता के घर में घाकर भी वह उसकी सेवा में ही रत रहती है। 'घान्ता जाती है मुमन खाना पकाती है, घान्ता अपने कपों को सँवारती है मुमन कपड़े सीती है' घर का सारा काम भी करती है और बाहर का भी। सेवा-सदन में प्रबन्ध बच्चों को शिक्षा देने का कार्य भार सँभाल कर तो वह अपनी सेवा-भावना को और भी स्थापक पुट देकर क्रियामित्त करती है। सेवा-भावना के साथ-ही-साथ उसके हृदय में एक ऐसे स्नेह का भी उद्बोध होता है जो उसके लिए पहले प्रज्ञातमाय या। घान्ता को वह जीवन में पहली बार बहन के स्नेह की दृष्टि से देखती है और 'सेवासदन' में भी बच्चों को अपने स्नेह से बधित नहीं रखती। स्नेह के प्रतिरिक्त सब उसके चरित्र में सदा पारख सहनशीलता का पुट भी मिल गया है। घान्ता की अपने प्रति सपेक्षा को देखती हुई भी वह उसकी पर्याप्तता में बेश भान करती रहती है और सबन के माता पिता के धर्म्यबाणों को छिपकर चुन सेने पर भी वह जीवन से समझोता किये ही रहती है। सब उसे अपने पत्नीत्व का आघात भी हो जाता है और वह यथापर से दामा-भावना भी कर लेती है। सब उसका निरवास केवल मुकमों में ही रह जाता है। सारांश यह कि मुमन का यह रूप पूर्ण मानवी का रूप है और धर्म-निष्ठा सेवा त्याग स्नेह तथा सहनशीलता धारि इसकी प्रमुख विशेषताएँ हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि एक निपट विनासिनी (धर्मिचारिणी नहीं) से उठकर मुमन एक धार्मिक सेवाधरधारिणी के रूप तक पहुँचती है। जीवन के प्रथम चरण में वह शस्त्रमन्त्र सासधार्यों की ओर प्राकृष्ट होती है, बूझते चरण में अपनी विकृतियों के मुकुर में कलकिय प्रतिबिम्ब को निहारती है और तीसरे चरण में उसके सामूह प्रसाजन का सक्रिय प्रबल करती है। किन्तु सभी समयके चरित्र की एक परब धिय है—वह यह कि धार्मिकता की चुन में प्रेमचन्द मुमन के चित्रण में चरित्र-विकास की मनोबैज्ञानिक दृष्टि से विश्व ऊपर सफल हुए हैं। इस दृष्टि से मुमन का चरित्र-चित्रण निरचय ही कृतिरहित नहीं है। सामग्री तक तो प्रेमचन्द ने मुमन के चरित्र को अवगत सहन तथा विश्वस्त मनोबैज्ञानिक ढंग से समारा है किन्तु धार्ये चलकर उसके धर्म्य-धित चरित्र-चरित्रर्म में प्रचुर अस्वाभाविकता का समावेश कर दिया है। वह यथायास ही ईश्वर के नाम की रत समाला आरम्भ कर देती है। बात यह है कि

प्रेमचन्द अपने सम्पूर्ण नारी-पार्श्वों के चित्रण में यह मान कर चले हैं कि अनुकूल सामाजिक परिवेश मिल जाने पर प्रबन्ध व्यक्ति-विरोध से उत्पानुमति हो जाने पर संस्कारों को बदला जा सकता है और हम भी उनके साथ किसी सीमा तक सहमत हैं, किन्तु संस्कारों का उतना प्राकृतिक तथा धीमे परिवर्तन असम्भव है बितना कि मुमन के चरित्र में हुआ है। उसके आत्म-विभ्रम में एक शीर्ष तथा तीव्र धारम-संघर्ष दिखाकर उसे एक स्वस्थ सामाजिक ज्ञान की ओर मोड़कर मृत्यु-संख्या से से बचन कहनाये होते "ईश्वर तुम्हें कैसे पाऊँ ? मुझे उस संघर्ष से निकालो" तो अधिक उपयुक्त होता। और फिर कौन कह सकता है कि सेवासदन में प्रतिष्ठिका का कर्तव्य निभाती हुई भी मुमन एक अकेलेपन का अनुभव न करती हो निकृति-मार्ग की समावासाकृता उसे न प्रकरती हो और इस प्रकार प्रवृत्ति भी उसका चरित्र अस्वस्थ एकांगी तथा अपूर्ण ही न रहे यथा हो ? यह तो मानना ही पड़ेगा कि इस दृष्टि से मुमन के चरित्र-चित्रण में प्रेमचन्द सफल नहीं हुए हैं। हाँ ऐतिहासिक दृष्टि से जैसा कि हम आरम्भ में ही कह चुके हैं मुमन प्रेमचन्द की नारी-भावना का महत्त्वपूर्ण विकास-चिह्न है। इसके उपरान्त उन्होंने किसी अन्य मुमन की सृष्टि नहीं की।

एक बात और। प्रेमचन्द की मुमन को धरत की किरणमयी तथा राजसदमी से तुलनीय समझा जाता है। हमारे विचार से कोई भी दो चरित्र एक समान नहीं होते। फिर एक ही लेखक के दो चरित्रों में तो समानान्तर रेखाएँ मिल सकती हैं किन्तु पूषक-वृषक नैसर्गिकों के दो चरित्रों में साम्य तथा वैषम्य प्रायः जनक बहिरंग तक ही सीमित रहे जाना करता है। मुमन और किरणमयी में भी बहिरंग दृष्टि से ही तुलना की जा सकती है। उदाहरणतः दोनों को पति-वश से प्रेम नहीं मिलता दोनों अपूर्व सौन्दर्य से धामूयित हैं और दोनों ही पति के अतिरिक्त एक अन्य पुरुष की ओर विचित्र रूप से आकर्षित होती हैं—आदि-आदि। वैषम्य की दृष्टि से किरणमयी में जो बुद्धि की प्रसरता है मुमन में उतना प्रभाव है किरणमयी जन धर्म में अज्ञान नहीं है जिस धर्म में मुमन एक धारमा को नहीं मानती तो दूसरे धारमा को आबाध समझती रहती है एक मुक्त-मेघ का समर्थन करती हुई भी व्यक्तिचरिणी नहीं है तो दूसरी व्यक्तिचरिण के रूप में देखकर भी मुक्त प्रेम से अज्ञान ही रहती है एक सं धार्मिक धर्मों के प्रति विरोध है तो दूसरी समापण तथा विनय-युक्ति का ही जीवशास्त्र मानती है और एक में प्रतिपक्ष की भावना पर विद्ये हुए है तो दूसरी में ऐसी कोई दम्पि नहीं है—आदि-आदि। अस्तु प्रेमचन्द और

घरतू की नारी-भावनाओं में कहीं-कहीं घामूल घंतर विद्यमान है। घरतू वहाँ नारी को स्वभावतः पुरुष की अपेक्षा घबसा ही मानते हैं। प्रेमचन्द वहाँ ऐसी कोई स्वीकृति नहीं देते- घरतू नारी के अधिकारों की दृष्टि माँग करते हैं किन्तु प्रेमचन्द ऐसी कोई प्रत्यक्ष आवाज नहीं लगाते और घरतू यह कहते हैं कि 'नारी का मुख्य निर्भर करण है पुरुष के स्नेह सहायुभूति और स्याम-वर्म-पर' तो प्रेमचन्द नारी को पुरुष से कहीं अधिक महती मानते हुए स्वाग सेवा तथा उत्सर्ग धारि उरी की धान्तरिक विशेषताओं के आधार पर उरका मूल्यांकन करते हैं। वेस्वा-समस्वा से भी बर्ताव तो दोनों ही प्रत्यक्ष सहायु-भूति पुनक करते हैं किन्तु घरतू वहाँ प्राचीन के प्रति विद्रोह तथा भौतिक मुक्तबाह को भी महत्त्व देते हुए चलते हैं वहाँ प्रेमचन्द मुक्त-प्रेम धारि को धर्माधनीय समझ कर उरकी प्रमिम्बलि से भी सम्भव सीमा तक बचकर निकल जाते हैं। घरतू की राजलक्ष्मी बेरवा होते हुए भी अपनी पति-भक्ति, अपने वास्तव्य अपनी सहनशीलता एवं अपनी समर्पण-भावना धरवा अपने उत्सर्ग के कारण उन्हें धरपधिक प्रिय हो सकती है किन्तु प्रेमचन्द बेरवा को नारी का घरतू रूप मानकर चलते हैं और उरकी विचरताओं से सहायुभूति रखते हुए भी यह कभी विस्वास नहीं करते कि घरतू रूप में ही उर उर्य की उपसम्बि सम्भव है। यह पहला काम यही करेंगे कि उर घरतू से उर में लौच जायेगे और वही से उर घादत मागबीच वृत्तियों की घोर प्राकष्ट करेंगे। यही कारण है कि 'भीकान्त' की प्रथमा तथा 'शेप प्रस' की कमत को धरवा 'चरित्रहीन' की किरणमयी तथा 'भीकान्त' की राजलक्ष्मी को वही घरतू उनके समान हाप प्रस्वीकृत रूप-भाष्यम से ही लंबेदनाओं का प्रसार प्रदान करते हैं वहाँ प्रेमचन्द सुमत को साकर सेवासरन में स्थापित करते हैं।

विद्यावती

'प्रतिज्ञा' की सुमित्रा की अपेक्षा 'प्रेमामर' की विद्यावती अधिक भारतीव है। पत्नी-रूप में दोनों की समस्वार्थे प्राय एक समान हैं। दोनों ही अग्निताएँ हैं किन्तु चरित्र-विकास अंत्यधिक परिमा तथा प्रभावोत्पादन की दृष्टि से सुमित्रा विद्यावती से बहुत पीछे रह जाती है। आत्म-गम्यान की भावना के वाप-साव की घनाबधयक तथा धरवाभाधिक लक्ष्मीतापन सुमित्रा के चरित्र में विद्यमान है विद्यावती में उरका घामूल परिष्कार हुआ है। सुमित्रा ही की अधिक गहरी अधिक व्यापक अधिक सन्तुमित अधिक भारतीव तथा अधिक

वीर्य धर्मव्यक्ति है विद्यावती ।

विद्यावती के परिचय के दो पक्ष हैं—एक वैयक्तिक दूसरा पारिवारिक पक्ष वा व्यावहारिक । प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में ये दोनों पक्ष होते हैं—पहला प्रत्यक्ष पक्ष होता है दूसरा बहिर्मुख । किन्तु निजी कमजोरियों पक्ष वा परिस्थितियों की दबावलेना न कर सकने के कारण बिरते व्यक्तित्वों में ही इनका सम्बन्धन उपलब्ध हुआ करता है । पति के साथ यदि विद्यावती की वृत्तियों का सम्बन्धन हो गया होता तो उसके परिचय के इन दोनों पक्षों में कोई भी गहरी विचार-रेखा नहीं खींची जा सकती थी किन्तु यहाँ तो बात ही सम्बन्ध स्वभावों की है और यह निश्चित है कि सम्बन्ध से मेल करने की धर्मव्यक्तता के हेतु व्यक्ति की अपने प्रति एक प्रकार की निश्चितता पक्ष वा विराग-प्राप्तता ही प्राप्ति पड़ती है—स्वयं से थोड़ा दूर होना पड़ता है । प्राथमिकता इस बात की होती है कि इस सम्बन्ध में वह सत्य से कहीं दूर न जा पड़े ।

वैयक्तिक पक्ष में विद्यावती के परिचय में स्वभाव से ही सर्व स्नेह, समता, सम्यक् तथा त्याग—इन पाँच वृत्तियों का प्राधान्य है । इनमें ही सर्वप्रमुख है सर्वधीमता जो साधारणतः धार्मिक-परिचयों में श्रेय प्राप्ति के साथ सर्वत्र प्राप्त नहीं रहती किन्तु विद्यावती के परिचय की यह निजी तथा बाह्यीय विशेषता है । धारम्य से प्रसन्न तक उसमें सर्वधीमता बनी रहती है । उसका पति मान्यकर मन्दाही होते हुए भी सोभी है और बिबर भी सम्पत्ति की मनक पाता है जब ही भ्रष्टाने का प्रयत्न करता है, किन्तु विद्यावती इस धारम्य-सम्मान के लिए बाधक समझती है । वह उससे स्पष्टतः कह देती है "पुरोधसों कोम दूसरों की सम्पत्ति पर मुँह नहीं फँसाते अपने बाहुबल का भरोसा रखते हैं ।" बायबी देनी उसकी विद्या बहन है और एक रियासत की स्वामिनी है । रियासत के प्रबन्ध के लिये वह उसके पति को मनेत्रणी का निमन्त्रण देती है किन्तु सर्वधीमा विद्यावती कहती है "यमी वह तुम्हारी बड़ी सारी है तुम से धियना प्रेम करती है किन्तु ही बार तुम्हारी धारम्य तक विद्या की है । इन उन्मासन से फिरकर अब तुम उनके शीकर हो जाओगे और मुझे भी बहन के पक्ष से गिराकर शीकरानी बना दोम ।" मान्यकर सुनी-सन्मुखी कर देता है । प्रत्यक्ष विद्यावती को सर्वधीमा प्रकृति के कारण ही धारम्यवात करना पड़ता है । बायबी को वह अपने पति के भ्रष्टाने में देखकर शीघ्रता है कि "उसके धारम्य में यदि इतनी शक्ति होती कि वह इन्हें जलाकर भस्म कर देता तो वह धारम्य धार दे देनी ।" वह अपने धारम्यको गर्व-व्यक्तिता समझती है और निश्च पर उसके पुत्र मान्यकर को भी अब इतक पुत्र बनाकर धीन निजा

जाता है तो यह वास्तव्य-सचिक्ता उद्गम की उस अवस्था तक पहुँच जाती है जहाँ उसकी महानशीलता भी प्रभाव डे जाती है। उसे विष याकर प्राण डैने पड़ते हैं। विद्यावती घाबीराम एक स्नेहमयी मारी रखी है। स्नेह-बन्धनों के कारण ही वह समुक्त परिवार के समस्कर सममती है। स्नेहमयी बहन होने के कारण ही वह अपने एकमात्र भाई की मृत्यु पर मुग्धित होकर गिर पड़ती है। इसीलिए वह धीममसि को सहानुभूति डैती है और यही कारण है कि बायबी के धारम-वतन के उपरान्त भी वह उसे सहजाती है। इसके प्रति रिक्त धीतिक उपमधियों के लिए वह अपनी सन्तोष-भावना को भी डयमगाने नहीं डैती। पत की धीर तो वह उसे एकजम निरूड है सिनेमा धावि धीरम की रंगीनिर्वा उसे नापसन्द है तथा बहनों से परिचय प्राप्त करने की चाह भी उसे नहीं है। हाँ र्वाय में उसका विश्वास है। स्वर्ध प्रेमथन्द के धार्यों में 'उसे परमार्थ पर स्वार्थ से अधिक धडा है। संदोषत' यही है विद्यावती के ध्यक्थिरव का निष्ठी पल।

ध्यावहारिक धपना पारिवारिक दृष्टि से विद्यावती बहुत धभापी है। इस धेय मे धपने से बाहुर उमका निकटतम सम्पर्क है धपने पति ज्ञानधकर से। पति महोदय ऐसे कि उन्हें पत्नी की धमस्त धन्त'बुधियों से कडा धिरोध है। वह धर्धशीला है तो यह बिना धारम-धमान के भी मुक्त धाते हैं, वह स्नेहमयी है तो उन्हे स्वार्थ-स्नेह है यह र्वाय करता जानती है तो उन्हें धियानों का रक्त बूसकर सोय की धरण डोगी है। वह एकमिष्य है तो उन्हें यह धयन धपने धिमे धान्य नहीं है धीर वह सन्तोष का धामन पकड़ कर चलती है तो वह समझते है धीर धीर सन्तोष मुडिहीनता का धमाण है।" संदोषत' विद्यावती के पास धर्धर हृदय है तो उसके पति के पास मुक्त तथा संतप्त बुद्धि है। हृदय का क्तधय तो डेना होता है। इसधिमे विद्यावती धपनी धम्यूर्ण धाम्यय धावना मे कर्धधय से नहीं बूधती पधधि उसे मुक्तमय बनाना उसकी धामध्व से बाहुर है। ज्ञानधकर 'रनी का धादर उसके धधिक नहीं करते धिठना धपने धीर के धूर्तों का' तो भी विद्यावती धनकी राह डैख रही' होती है धीर पूध रही होती है "धाय डेर धरों कर रहे हो ? धीरम तो कभी से र्धयार है।" संकोध-धीला होते हुए भी वह पति के कही पर धिपी प्यसासिह की पत्नी से धिलने धापी है। वह जानती है कि उसके पति में मन्धोविहधियों का धभाव नहीं है, धिर भी जब उसके धपने पिता भी उस धीर संवेध करते हैं तो वह धीर उठती है 'धाय डैरे धामने धनकी बुगाई न कीधिये' डैने संदेष धापका धयन धिया है धीर धापकी धवना करते हुए मुडे

कितना कुछ ही रखा है वह बर्तन नहीं कर सकती वह चापके कमनानुसार कुपरिच छोटी दुर्गात्पा सही कुमानी सही परन्तु मेरे लिए पुत्र्य और बेवतुस्य है। और मन में वह सोचती है जब तक उनकी कुकृतियों का पर्दा डका हुआ था। जो कुछ कुछ और सन्तान होता था वह उसी तक रहता था पर यहाँ आकर पर्दा खुल गया। पति से इस प्रकार का असामंजस होवे हुए भी वह सोचती है कि बनारस पहुँचकर उन्हें मुबारके का प्रयत्न करेगी। पर वह ऐसा कर नहीं पाती क्योंकि बनारस पहुँचकर वह देखती है कि वह पूर्णप्रसिद्धता हो चुकी है। किन्तु इसमें धम्मेह नहीं कि उसके परी-रूप में पति-सौभाग्य यन्त्रि-पालन तथा पति से समझौता करके घादर्य-नाम्पत्य की चाह विद्यमान है। पति के घटितरिक्त पारिवारिक जीवन में उसका दूसरा निकटतम सम्बन्ध है अपने पुत्र मामासंकर से। मातृ-रूप में भी वह कर्तव्यपरायणा है। वह बननी मान नहीं है अपितु एक प्रशिक्षिका जननी की भाँति सोचती है "मेरा सड़का गरीब खेना अपने पसीने की कपाई खायेगा लेकिन जब तक मेरा बच्चा बसेना मैं उसे इस कामवाह की हवा तक न मरने दूनी।" इस प्रकार एक सफल मातृ-भावना भी विद्या के चरित्र में विद्यमान है। पुत्र तथा पति के उपरान्त विद्यावती का एक कुसवधु रूप भी है जिसका सम्बन्ध परिवार के अन्य सदस्यों से है। इस रूप में वह संयुक्त परिवार प्रथा का ही समर्थन करती है। पुत्रवर्गों के प्रति जचित श्रद्धा भी वह रखती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि पारिवारिक क्षेत्र में भी विद्यावती एक कुसवधु के घादर्य को लेकर जसती है। कर्तव्य तथा न्याय-नामन इस क्षेत्र में उसके चरित्र की दो प्रमुख विशेषताएँ हैं।

किन्तु सन कुछ होते हुए भी विद्यावती अपने चरित्र के जलत दोनों पक्षों में कुमपुर धारकस्व स्थापित नहीं कर जाती। उसे बिय आकर धातमहत्या करनी पड़ती है। चरित्रस्थितियों का पानी जब छिर से बह जाता है तो विद्यावती जैसी गर्बदीक्षा को धातपा के सत्य की परिपालना के लिए जसमें डूबना ही पड़ता है। पति कुपाती था पुत्र भी उससे छीन लिया गया था। उसके सामने समस्या थी कि वह बिये को किसके लिए? और यह सन्तर्द्धम्ब निराशा की जखन सीमा पर हुपा करता है। ऐसी मानसिक स्थिति में किया गया धातमबाध भी धातम्बाध्य नहीं होता। इस दृष्टि से विद्यावती का धम्ब ज्ञानदंकर तथा धायत्री दोनों को धयेसा धधिक स्वामाधिक है।

जहाँ तक विद्यावती के चरित्र में सैराक के दृष्टि-किन्तु का प्रश्न है वह निरन्धम ही धादर्यवारी है। ज्ञान सज्जता है कि जिस विद्यावती में धात्रीजन धायपनी कृतियों का प्रापाम्य रहा है उगकी धातमहत्या द्वारा सैराक से धीन

सी उपयोगिता के भावार्थ का पुनः लिखाया है ? इसका उत्तर नहीं है कि मृत्यु के बन्धन को तोड़कर ही अन्ततः विद्या के चरित्र में सत्य की विजय होती है। मृत्यु को भी जैसे वह सत्य नहीं अपितु परिस्थिति मात्र समझती है। जीते जी वह जो न कर सकी उसकी पूर्ति मृत्यु के उपरान्त स्वयमेव ही हो गई। उसका पुनः मात्साहंकर जीवन में अपनी माँ के भाइयों को लेकर ही उतरा है और उसके पति ज्ञानघंकर को भी उसी के भाइयों की धार्मिकता से पराजित होकर पंचा की शरण लेनी पड़ती है। यहाँ उद्देश्य की दृष्टि से विद्यावती की चरित्र-चरित्रमा दुप-विधेय की नहीं अपितु दुप-युग की भाइयों-माँ की सफल भिन्निकत है।

भद्रा

प्रेमचन्द की पत्नीत्व-कल्पना का एक उदात्त रूप हमें 'प्रेमाभय' की भद्रा में उपलब्ध होता है। कहा जाता है कि एक ब्रेष्ठ कलाकार के पास भी अपने सृष्टा के प्रति विरोधी हो आया करते हैं। परिस्थितियों द्वारा उनकी निमित्त के समस्त सेवक विधाय हो जाते हैं। परन्तु भद्रा के विषय में यह उक्ति बहुत चरित्रार्थ नहीं होती। प्रेमचन्द ने जो भाइयों उसके सामने प्रस्तुत किया है वही उनकी भद्रा ने करणीय समझा है। कहने का तात्पर्य यह है कि भद्रा प्रेमचन्द की मारी-मारों का सबसे प्रतीक है।

भद्रा के चरित्र की सर्वप्रमुख विशेषता यह है कि उसने जर्म को प्रेम से कम महत्व नहीं दिया है। पास-पड़ोस का विचार है कि उसके पति प्रेमघंकर सायर-वार अमेरिका हो जाने के कारण हिन्दुत्व से भ्रष्ट हो चुके हैं। इसलिये मन में पति-प्रेम का अनाथ विश्वास रखती हुई भी वह लोक-मर्यादा का उल्लंघन नहीं करना चाहती। 'एक बार वह धीरे-धीरे होकर बली कि प्रेमघंकर का हाथ पकड़ कर फेर लाईं डार तक भाई, पर जाने न बढ़ सकी। जर्म ने ललकार कर कहा—प्रेम नक्षत्र है निश्चार है, कौन किसका पति और कौन किसकी पत्नी ? यह सब माया-वास है"। वह पति को भी एक पत्र में लिखती है "मुझे धापते मिलते हुए अनिष्ट की धारणा होती है। जर्म को तोड़कर कौन प्राणी मुझी रख सकता है ? आपके विचार तो ऐसे नहीं फिर धाप क्यों मेरी मुझ नहीं भेते ?"

भद्रा का पति-श्रम वैदिक स्तर से बहुत ऊपर उठा हुआ है। लोक-मर्यादा का पालन तो उसका एक अनिवार्य अंग है ही उसके प्रेम में घटन विरहासुके साथ-साथ पति के प्रति भक्ति-भावना का समावेश भी है। प्रेमचन्द के सन्दर्भों में

“बड़ा के लिए प्रेमसंकर केवल एक कल्पना के इती कल्पना पर वह प्राणार्पण करती थी।” रामवासिनी की सेवा के घण्टाघ में उसके पति को बेस भेज दिया जाता है। उसका देकर इस विषय में कुछ कहता है तो मुँहटोड़ बतार देती है। “तुम्हें जानेदार की सुगामर करने की कोई जरूरत नहीं। वह अपनी रखा घाप कर सकती है।” इस प्रकार का विरवाच साधारण नहीं हुआ करता। वह वैदिक कर्म में पति से दूर रहती है; किन्तु उसका विरवास और प्रेम पति के धारमविकास में निरन्तर स्फुटि एवं प्रेरणा प्रदान करते रहते हैं। पति द्वारा मित्रे गए लोक-सेवा के जत को वह घाल्यत बहात कर्म समझकर अपने धामूपसों धारि से उसकी बहायता भी करते हैं। साधारण स्त्रियों की भाँति उसमें धामूपण-प्रियता नहीं है। त्याग और सेवा ही उसके वास्तविक धामूपण हैं। प्रेमसंकर पहले तो उसकी लोक-समाजा को निन्दुरता से कम नहीं समझते थे किन्तु इस बहायता को बाकर उनके सम्मुख “बड़ा एक बेबी के रूप में लड़ी मासूक होती थी। उसकी मुसली एक बिलप्रण ब्योति से प्रवीण थी। त्याग और धनुष्यम की विद्यात नृति थी जिसके कोमल नेत्रों में भक्ति और प्रेम की किरणें प्रस्फुटित हो रही थीं।” इन दृष्टि से बड़ा एक बलव पतिव्रता है। उसकी धपनी धनुष्यमि है कि प्रेम केवल हृदयों को मिलाता है देह पर उबका बस नहीं है।

बड़ा का विरवास है कि घसत को भी रपा कर प्रायविषत द्वारा सन् में परिणत किया जा सकता है। यत वह प्रायविषत को बीरम में धारवक समझती है। वह प्रसंकर से प्रायविषत करने के लिए कहती है और जब वह करते हैं कि प्रायविषत की राने लगाकर तुम मुझ पर बड़ा धम्याप कर रही हो तो वह कहती है “घापके विष से धमी धईकार नहीं मिटा। जब तक इसे न मिटायेया ऋषियों की बलें धावकी समझ में न धारवनी।” इस प्रकार वह धईकार को विकास-भार्य का धबरोब समझती है। इसका यह तात्पर्य नहीं कि उसके चरित्र में धारमसम्मान की बावना नहीं है। वह हर रात स्वयं यथा तक बलि के संदस की शार्वना करने जाती है तो कयर में सुरा भी सिधे जाती है और कहती है “मेरी रदा के लिए यह काफ़ी है।” उसका तो निरचय है कि “हुवा स्त्री की जान है इसके बिना वह सुखी सकड़ी है जिसे धाव की एक बिलगारी बसाकर राक कर देती है।” वह सतीत्व-रथा का ही गारी के लिए सबसे बड़ा धारमसम्मान समझती है और यह सोचकर बसती है कि बहि गारी का हृदय पवित्र है उसमें घाप की एक विद्यमान है तो “पुण्य हठार रतिना हो हठार बगुर ही हठार धारिना हो हठार बोरे धामे किन्तु

सही चित्रणों पर उसका एक मन्त्र भी नहीं बस सकता। वह धीरे धीरे क्या जो एक निमाह में पुस्तक की आल-बाल को हाड़ न से। जमाना भाव का पुण्ड्रिक पर हरी मकड़ी को भी किसी ने जमती देखा है? इस प्रकार भ्रष्टा नाटी को धरना नहीं मानती।

भ्रष्टा मन को धरती ही पति-सेवा का माध्यम मात्र नहीं समझती। वह यह मान कर जमती है कि भलवान् होने का धर्म है उसी भाषा में अधिक परोपकारी होना। वह गायत्री से कहती है 'तुम्हें भयवान् ने बल दिया है। उससे प्रार्थना कर। धनाभो धीरे दिव्यार्थों को पासो बर्षेबासाएँ मनवाभो ताताब धीरे कुएँ पुस्तकाभो मति (सीता धारि के धाड़म्बरों से मुक्त विनासाभयी) को छोड़कर ज्ञान (विश्वास) पर बसो। इस प्रकार, उसके चरित्र में सेवा भाव स्वभाव में ही विद्यमान है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भ्रष्टा के पत्नीत्व में धाकास-बितान-सा व्यापकत्व है। प्रेम नामिका तथा तप धारि लोकनीयनिक वृत्तियों का अपूर्व समन्वय उसमें विद्यमान है। और वह वर्ष के बीच व्यवधान में वह धर्मियों पर धाकारित विरह में नहीं लगी है अपितु उसके चरित्र में प्रेमचन्द ने सीता के से मर्यादा-वासन की उदात्त कल्पना का समावेश किया है। कुछ केवल इस बात का है कि भ्रष्टा के चित्रण में प्रेमचन्द को स्वानुभाव बहुत रहा है जिसके कारण वह उपन्यास का मौल्य पात्र बनकर रह गई है। विवासी के साथ भी यही धर्याय हुआ है धीरे धीरे बनकर कुत्सुम को भी यह प्रहार सहन करना पड़ा है। वस्तुतः प्रेमचन्द धरणी प्रत्येक वृत्ति में एक बहुत बड़े व्यापकत्व को लेकर बसते हैं। व्यापकत्व की माँग होती है प्रत्येक वर्ष धर्याय जीवन-रूप का चित्रण। धर्या उन्हें एक ही उपन्यास में बहुत-से पात्रों को उतारना पड़ता है। उनके 'प्रेमाधम' में ही साठ-याठ नाटी-पार्श्वों की गणना की जा सकती है। उस दृष्टि से भ्रष्टा को भी सम्भवतः यथायोग्य की तो नहीं अपने भाग की उपलब्धि हो ही गई है। उसका भ्रष्टा नाम धार्मिक हो गया है।

विवासी

'प्रेमाधम' की विवासी एक निम्नवर्गीय कृषक-पत्नी है। इस नाते उसके चरित्र में उन सभी विशेषताओं—धर्याधर्यों बुधधर्यों—का समावेश है जो धर्याय जीवन का प्रतिनिधित्व करती हैं। अपने भाग में अपूर्ण होते हुए भी उसके चरित्र का महत्व इस दृष्टिकोण से धर्याय है कि वह प्रेमचन्द की एतद्

विषयक सर्वप्रथम धर्मिन्यक्ति है जो समय पाकर वनिया के रूप में घमर हो गई है।

बितासी धपन पति मनोहर की सम्पत्ति है। तबपों से दबे हुए मनोहर के जीवन में उसे पाकर एक धनीव-सी सहनशीलता व्याप्त है। वह मनोहर के अन्तर्बाह्य से भनी भाँति परिचित है। पेट भरकर धाना नहीं खाता तो पूछती है 'क्या काम भण्डा नहीं? कुछ दू? उत्तर में जब बितासा को छात्रि नहीं मिलती तो चिन्तित सी पुनः पूछती है 'किसी से कुछ कहा-सुनी तो नहीं हुई है?' और जब धपनी कारण का पता चल जाता है तो जीवन-साथी के बर्तन का बाँट लेने के हेतु उससे बड़कर सखिम प्रयत्न करती है। दुहस्पी के कार्यों में भी वह बहुत व्यवहार-जुलसा है। सम्पूर्ण उस प्रौढ़ा के कार्यों का धंभ बन चुका है। इसलिए वह जीवन में ठनिक झुककर चलने में भी हठी नहीं समझती है। पति से कहती है 'तुम्हारे मादठ है कि जब देखो एक न एक बसेड़ा मचाये ही रहते हो। जब साठ गाँव भी दे रहा है तब हम क्या गाँव से बाहर है? जैसे बन पड़ेगा जैसे। इसमें कोई धपनी हठी बोड़ी ही हुई जाती है?' और बेचारी घरीब दुहस्विन्य धानिक रूप बिना जैसे सन्ताप रख सकती है। धत धामे कहती है 'हेठा तो गारापण ने ही बना दिया है। तो क्या धकड़ने से ठंभे हो जायेंगे? घोड़ा सा भी ह्रीरी में है दो-चार दिन में और बटोर लूनी पाकर ठीक धामा। वह जानती है कि उसके पति तथा बवान बेटे की धकड़ धात्म-सम्मान के धतिरिक्त कुछ नहीं है तो भी वह स्वयं धामरिचत करने के लिये जीवाम पहुँचती है और कारिन्हे पौष धाँ से कर बड धार्चना करती है 'सरकार कहीं की न रहूँगी। जो बाँड़ चाहे लगा पीजिए, जो सबा चाहे बीजिजे मालिकों के कान में यह बात न धानिये। किन्तु इतना होते हुए भी वह नम्रता की सीमा का धतिक्रमण नहीं करती है। वह स्वयं धात्म-सम्मान को धपनी वाली समक कर चलती है। उसे धपने बेटे और पति धर नर्ब है कि वे उसकी सम्मान रखा कर सकते हैं। इतसिय जब पौष धाँ उसके मन्धियों को घेर कर ले जाना चाहता है तो वह कहती है 'तुम तो धाँ बाजिब ऐसी पुढ़की जमा रहे हो जैसे मैं तुम्हारा दिया लाली हूँ।' तिस धर भी जब बीस धाँ सुनी-धनमुनी धरके उसका धमाधर करता है तो उसका धात्म-सम्मान भभक उठता है। वह धारेप में धाकर, यह जानती हुई भी कि इसका धरिणाम बधकर होवा धपने पति तथा बेटे से ठिकापठ कर ही बासती है। प्रेमचन्द के धक्नों में वह "उन पुष्पों से धपनी धपमान-क्या कहुने चली जो उसके मान धीर मर्यादा के रक्षक थे। धरिणामधरूप पौष धाँ का बध

होता है और मनोहर को कारावास में धारमहत्वा करनी पड़ती है। बिलासी विचारा हो जाती है। स्वभाव से भीड़ होती हुई भी वह अपमान नहीं सह सकती थी।

विचारा-रूप में बिलासी और भी महनचील हो जाती है। मनोहर के बेल बाते ही घर के सभी भागकर कुर्क हो बाते हैं और जिसे देखिये वही बिलासी को बनौ-कटी गुनावा है। परन्तु बिलासी ठनिक मो मकटाती नहीं है। वह तो यही कहती है नही बादा गुम्हायी क्या से कोई तकनीक नहीं है। इतना ही नही 'बिलासी की बाठपीठ आमबाम से अब धालम-नौरव टपका पड़ता था।' कभी-कभी वह बड़ बड़कर बात्तें करने लगती। पड़ोसियों से कहती—'तुम अपनी साज बेचकर अपनी बमड़ी को बचाओ यहाँ इन्कत के पीछे आम तक है बैठे हैं। मैं विचारा हो गई तो क्या घर सत्यानास हुआ तो क्या किसी के सामने धाँस तो मीची नहीं हुई। अपनी साज तो रखी। इसी प्रकार विचारा बिलासी के चरित्र की दो प्रमुख विशेषताएँ हैं—सहनशीलता और धारम गौरव।

बिलासी के चरित्र में त्रुटियों की भी कमी नहीं है। उसमें सहनशीलता के लक्ष तो हैं किन्तु उसका साधारण समुद्र की पहलाई में नहीं अपितु सरिता के प्रवाह में है। दूसरे शब्दों में उसकी सर्वाभिव्यक्त कृतियों को ईर्ष्या धारि के मार्ग से बहाव मिल जाता है। वह स्वयं कभी नहीं सोचती कि सहनशीलता धारम का एक गुण है। मनोहर की मृत्यु के उपरान्त भी उसे पति-नौरव से अधिक गौरव होता है अपने ऊपर। और वह के प्रति उसकी निर्यामय ईर्ष्या बिलनी अधिक होती जाती है उसी मात्रा में ही वह स्वयं को उँची उठी हुई समझती है। उसका धारम-नौरव भी जैसे एक आवेद्य मात्र है, उनी प्रकार जैसे उसके पति की धारमहत्वा उसके आवेद्य का परिणाम है। किन्तु इतना धरस्य है कि इन सब पर उसका धपना बध कोई नहीं है। प्रेमबन्ध भी यहाँ यह दिखाता चाहते हैं कि धरस्य के संघर्ष में पिछी हुई एक कपक-नारी बहुत पहले सोचने की क्षमता रख ही नहीं सकती उसके गुण और दोष—सभी उसकी धारस्यकताओं के प्रतिरिक्त कुछ नहीं हैं।

इस प्रकार बिलासी का चरित्र पति प्रेरणा सुहृद्दिली धारमामिमानिनी महनशीला धारि की विशेषताओं का स्वामाधिक सस्तेपण है। ध्यान देने योग्य इतनी ही बात है कि जगते इन विशेषताओं को धाम-संस्कारों से ही पहण किया है धरस्यक चित्तन धरवा मतन हाठ धरन नहीं।

यहाँ तक चरित्र-चित्रण की कमा का प्रस्न है बिलासी के चरित्र में वह

भी उसी की प्रति निर्धम है। न उसमें विस्तार है न प्रतिपादन का समत्कार और न ही पूर्ण विकास। विषया विलासी का क्या हुआ होगा बलदास के चेहरे से छूटकर घाने पर उसके मातृ-हृदय का विकास कैसा हुआ होगा पति की स्मृति को वह कहाँ तक संभाल पाई होगी—ये सब प्रश्न-बिद्ग हैं जो पाठक की कल्पना पर अपूर्णनिष्पत्ति के परिणामस्वरूप भये ही रहते हैं।

कुस्मूम

जैसे ही 'रंगभूमि' में ताहिरमन्नी का प्रसंग कमा की दृष्टि से घनावरणक हो किन्तु कुस्मूम जैसे घनर पात्र की सृष्टि उसके बिना साव्य असम्भव थी। कुस्मूम प्रेमचन्द की नारी भावना का महत्त्वपूर्ण शोषण है। इस उपन्यास के अग्रिम विस्तार में बितना सहज साधारणीकरता कुस्मूम के साथ होता है उतना शीघ्र सादारण्य सम्भवतः सूरदास से भी नहीं होता होगा।

कुस्मूम पम्पबर्गीय मुस्लिम परिवार की एक भार्य परिणीता है। बंश तो पर्या-प्रवा मुस्लिम मारी के लिए प्रायः अनिर्बावं ली है किन्तु पत्नी रूप में भी कुस्मूम के लिए वह नारी-मुलज लज्जा का रूप पाएँ कर चुकी है। पति ताहिरमन्नी को एक बंसे में चोट या काठी है किन्तु हृदय में वह नहीं जा पाती। "हृदय में झूल उठ रहा था पर पति के मुख की ओर टाकते ही उसे मुर्झ-सी घाने लगती थी दूर लड़ी थी यह विचार भी मन में उठ रहा था कि वे सब घाबरती घाने दिन में क्या कहते होंगे। इसे पति के प्रति धरा भी प्रेम नहीं।" वह रोती रहती है और जब एक-एक करके सब घादनी जैसे जाते हैं तब बिल को सावधान करके पति के पास या बैठती है। दिन में बंसे रक्त कर भी लोक-मर्यादा का पालन करना ही बस्तुतः भारतीय नारी को कुसबती का धार देता है। किन्तु कुस्मूम के सन्नज होने का यह तात्पर्य नहीं कि वह अपूर्ण पतिपरायणा है। वह पूर्ण पतिव्रता है। पति ही उसके लिए सर्वस्व है। "तुम सनामठ रहोगे तो हमारी फिर धारण से गुजरेंगी धीरे धीरे से स्वारा घण्टी तरङ्ग" वह पति से यही कहकर संघर्षों में बने रहने की प्रेरणा देती रहती है। वह परोपकार एवं कर्तव्यवृत्ति में विरवास रखती है किन्तु सब से बड़ा कर्तव्य वह पति के प्रति ही समझती है। पति बीमार है और देवर की प्रीति भी चुकानी होती है तो वह कहती है 'डाक्टर को प्रीस जनकी प्रीस से उकरी है। वह पढ़कर समय कमावेंगे तो मेरा पर न भरेगा। मुझे तो तुम्हारी ही बात का भरोसा है।' यही पर उसका स्वार्थ भी गुण-सा बन जाता है क्योंकि वह उसकी पति-सेवा का धन बनकर ही जाता है। विषयतावत पति द्वारा

स्वयं बुराने के प्रपराय को वह पहिज समझती है और उसे श्लोच भी पाता है किन्तु ऐसे श्लोचों किसी को अपने बन्धों को बाह्य से उतानी काटते देखकर गुस्सा पाये। क्यों ही ताहिरप्रसी को बंधी बनाकर ले जाया जा रहा होता है रवो ही वह पछाड़ बाकर गिर पड़ती है। बस्तुतः कुस्मूम का पति भी प्रति प्रेम प्राण्टरिक है प्राह्याहम्बर नहीं और बितना ही वह प्राण्टरिक है उतना ही गहरा एवं मर्मस्पर्शी है। साब ही कुस्मूम त्यागमयी सुगृहिणी भी है। पति क जेस बसे जाने पर वह अपने परिषम के बस पर ही गृहस्त्री का संचा मन करती है। वह सिमाई करती है और बन्धों का पेट पासती है। उसे अपने परिषम पर बिश्वास है और मही कारण है कि वह धारम-सम्मान तथा शुभविचारों को जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान देती है। उसे ज्ञात है कि लोभ से बढ़कर धन कोई कारण धात्मा के पतन में सहायक नहीं हो सकता। ताहिर प्रसी रोकड़ से पैसे से लेने की बात करती है तो वह कहती है 'सुधा के लिए कही यह बखब न करना। रोकड़ को कात्ता लाप समझो। मही कारण है कि वह बीमरी प्राप सहायचार्य लायि गए धन को ग्रहण नहीं करती है और मही कारण है कि वह बन्धों का ठीक बेच सकती है किन्तु बीमरी जैसे कुर्म को प्राबन्ध समझती है। उसका बिश्वास है कि धन से बड़ाई नहीं होती धर्म से होती है। बीमरी के लयों को लौटा कर उसका मस्तक गर्भ से उन्नत हो जाता है। पति की मैरुनामी को सराहती हुई वह सोचती है यह इम्बत है कि पीठ-भीघे दुनिया बड़ाई करती रहे। उस बेइच्छती से तो मर जाना ही सम्भवा है कि छोटे-बड़े धारमी मुंह पर लताड़ मुताम। इस प्रकार हम देखते है कि पली-रूप में कुस्मूम लाबवती कर्त्तव्यपरायणा पतिव्रता सुगृहिणी परिषम बीबी तथा धारम-सम्मान की रक्षा करने वाली है। ऐसे बरिष के लिए सतोप तथा सहनशीलता की परम प्राबन्धकता होती है। ये दोनों गुण भी कुस्मूम क बरिष में समाविष्ट हैं। उसके सतोप का प्रपान कारण उसकी प्रासितकता है। उसका सट्ट बिश्वास है कि 'सुधा ने जैसे इतने दिन रोबी की बीसे ही फिर देना न इतना मिसेना न सही इसका प्राचा तो मिसेना दोनों बरु न लामेये एक ही बरु सही।' इसी सतोप-वृत्ति के कारण ही तो वह कर्म करने में ही मानव-जीवन की सार्थकता समझती है। फल की बुराकासा को वह पतन का प्राय समझती है। ताहिरप्रसी ने यदि अपने धनुषों का धरण पोपण किया तो वह उसे उसका कर्त्तव्य-कर्म समझती है। वह उससे कहती है 'इन्सान किसी और के साथ नी लेकी करता है तो बरिषा में बाल देता है यह नहीं कि कर्त्त बनुन कत्ता फिर। तुमने जो कुष किया सुधा की राह में

दिया अपना दुर्लभ सम्पत्त कर दिया। दुर्लभ नहीं दिया था कि सुब के सात बजते से सा। इसीसिये तो वह प्रतिकार में बिश्वास नहीं रखती। उसकी दोनों सार्वे मूख हैं। उसी के पति की कमाई का पैसा भी उनके पास है किन्तु बीमार ठाहिर के लिए भी वे उसे गाँठ से नहीं खोमतों। इसी प्रकार जिस देवर को उसके पति ने पद्म्या-मिच्छाया बही प्रस्तुत जब उन्हें दुकुरा देता है तो बति की मिलुवता को देखकर वह कहती है 'जुबा उन्हें पुण रहे हमारी भी तो किसी तरजू कट ही गई।' इस प्रकार की सन्तोष भावना एवं समाधीलता के लिए जिस बेमैं और सहनशीलता की आवश्यकता होती है वह कुस्मूम के लिए प्राप्त ही बन गई है। उसके देखा है कि उसकी साँचा के गर्म बूझों से कुम्ह उठ रही है और उसके अपन बच्चे रोटी को बिलख रहे हैं। वह यह भी देखती है कि जो देवर उसी के दुकुरों पर पता बही प्राप्त उसके परिवार की बात भी नहीं पूछता—परन्तु वह सब सहन करती जाती है। जाने को "उसके लिए प्रेम ही काड़ी है। बोरे-बोरे उसकी सहनशीलता ही उनकी सभी चारित्रिक विशेषताओं में बावककता भरती है और प्रस्तव वह इन सब के सहार परिस्थितियों से ऊपर उठ ही जाती है, जबवा यों कहें कि परिस्थितियों से घावर्ष समझीता कर ही लेती है।

इस प्रकार, कुस्मूम एक घावर्ष पत्नी के रूप में चिह्नित हुई है और उसके माध्यम से यह भी पता चल जाता है कि प्रेमचन्द के लिए हिन्दु धर्मवा मुस्लिम नारी में कोई अन्तर नहीं था किन्तु वहाँ तक एक वर्ग के प्रतिनिधित्व तथा चारित्रिक विकास के लिए उपयुक्त चित्रणस्वामी का प्राम है वहाँ निश्चय ही कुस्मूम का विकास स्वानामाच के कारण पुटा-पुटा-सा रह गया है। 'रमभूमि' के अपार वैश्विक का प्रहार उस बेघारी पर सर्वाधिक हुआ है। इसमें संदेह नहीं कि किसी अन्य उपभ्यास के जूम बातावरण में कुस्मूम का चरित्र और भी अधिक निरख सकता था।

जासपा

'शबन' की जासपा पुण्य-विरा के हेतु निर्मित एक घावर्ष पत्नी-प्रतिमा है जिसकी निर्मिति में यथार्थ की तुलिका भी प्रयोग में लार्ई गई है। इसी सना-वैज्ञानिक दृष्टि के कारण ही जान्यास के क्षेत्र सभी प्रमुख पार्श्वों की ध्येता वह स्वामाधिकता के अधिक निकट है। उसके चरित्र में प्रेमचन्द यह सोचकर चमे हैं कि अन्तर् धर्मवा समाजिक संस्थाओं को यथार्थ सत्य के प्रकाश में लाकर बदला जा सकता है। संस्कारगत संश्रीलंताओं के अन्तर्ग्रह संनिबन्धकर

मानवतावाद के विद्यालय निर्वाणार्थक करने-सेव तक की व्यापक पहुँच ही बालपा के चरित्र की साधारणतः बिसिष्टता है।

कुछ भागोचकों ने बालपा के चरित्र को दो भागों—रमानाथ के पलायन से पूर्व तथा पलायन के उपरान्त—में विभाजित कर, या तो पूर्व पक्ष को प्राधान्य देकर या फिर उत्तर पक्ष को अतिरंजना मात्र कहकर, उसके चरित्र के साथ सम्बन्ध किया है। किन्तु हमें यह नहीं भुलना चाहिये कि बालपा एक पहुँचते-पहुँचते प्रेमचन्द 'गोदान' से एक ही श्रम पीछे रहे हैं वहाँ उनकी भक्तनी बहुत नैन चुकी है और उसके साथ ही विचार प्रवाह की अस्वाभाविकता से भी 'सबन' कोसों दूर है। वस्तुतः बालपा के चरित्र के उक्त दोनों पक्ष ही एक-दूसरे से अनिच्छतापूर्वक सम्बद्ध हैं। सामूहिकप्रियता का धर्म सत्य के प्रति निमुञ्जता प्रयत्न हृद्यहीनता कभी नहीं होता। युवावस्था से पहले हमारे भीतर जोध अधिक होता है होश नहीं क्योंकि हमारी विचारभूमि उस समय उर्ध्व होठे हुए भी असमतल होती है। धर्म सत्कारों की बदल बासने की सामर्थ्य उस समय हम न नहीं होती। बालपा को भी सामूहिकों की चाह सँघन से ही मिली है। वास्तविकता में ही जब वह द्वार खटौने को कहती है तो उसकी माँ सरलता से उसे समझ सकती है कि वहने धर्म नहीं होते किन्तु वह तो बस्ता नहीं कहती रहती है 'बन्धुहार तेरे लिये वैरी लमुराल से मायेगा और उसके पिता 'दीनदयाल भी जब कभी प्रयाग जाते तो बालपा के लिये कोई-न-कोई सामूहिक करके जाते। उनकी व्यावहारिक बुद्धि में वह विचार ही न पाता था कि बालपा किसी और चीज से भी अधिक प्रसन्न हो सकती थी।" और बालपा को सहेलियाँ भी मिलती हैं तो अधिकार्थ सामूहिकप्रिया ही। ऐसी अवस्था में स्वाभाविक ही है कि बालपा का सामूहिकों के प्रति तीव्र भाव है। और माँ सपुराल को भी वह सामूहिकप्रिया समझे। किन्तु प्रेमचन्द तभी से वह भी विद्यालय धारण कर देते हैं कि सामूहिकप्रियता बंधानुसंग प्रभाव होने पर भी नाटी की बहूय तथा अस्वस्थ वृत्ति नहीं है। विवाह के अवसर पर सपुराल से बन्धुहार के न जाने पर बालपा इतनी विद्युम्ब तो प्रकट होती है कि पूजा की वृत्ति तक को छठाकर फेंक देती है किन्तु कनसिनों से रमानाथ की मौम्ब मुलाहति को देखकर उसे आन्तरिक आनन्द भी होता है। इस आनन्द का मूल प्रेम की स्वाभाविक वृत्ति में है। विवाह से पूर्व तो बालपा ऐसे प्रेम के सम्पर्क में आई नहीं होती है किन्तु विवाह के उपरान्त निश्चय ही वह समझ जाती है कि प्रेम की व्यापक सामूहिकों की चाह से कहीं अधिक बलवती है। सामूहिक उनके लिए सब प्रेम से कहीं बोल हो जाते हैं किन्तु जब रमानाथ उसे

जुमाने में रखकर अपनी सम्पत्तिका की भीमें मारता है तो वह उन्हें घनाबन्धक भी नहीं समझती—परम्परागत प्रभाव का प्राञ्जित इतनी बीघटा से तो बबसा वा नहीं सकता। पर इसके साथ ही यदि हम आत्मपा की स्वाभाविक धारम सम्मान की भावना तक नहीं पहुँच पाते तो निश्चय ही हम उसके चरित्र को पलत समझेंगे। समुदाय में धानूपणों की कमी का दुःख तो उसे है ही किन्तु उससे भी मारी दुःख उसे यह है कि सम्पन्न होने पर भी उसके साथ तमुर उसकी धारमसम्मान की भावना को ठेस पहुँचाना चाहते हैं। इस विचार के मन में धार ही वह उबल पकती है "बब यहाँ कोई मेरी बाण नहीं पूछता तो मैं किसी का भयना नहीं समझती। छाय दिन घनाबों की टाछू पड़ी रहती है, कोई मीचता तक नहीं। मैं बिक्रिया नहीं हूँ जिसका पिबड़ा जाना-पानी रलकर बन्ध कर दिया जाये। मैं भी धारमी हूँ। भब इस घर में मैं अणुमर न रहूँगी। धीर धाज उसे पहुँकी बार बेब होता है कि उसका पठि बेकार है। बब वह उसे नौकरी हूँदने क लिए मना सेती है तो याभा के लिए बँबे-बँबाये बिस्तर को भी कुल जाने देती है—इसमिये नहीं कि इससे उसकी धानूपणप्रियता को बहारा मिलता है यपितु इसमिये कि प्रेम में जो धारम सम्मान की भावना होती है इसके द्वारा उसे परितोष मिलता है। इस प्रकार वह धारम्बरों से धारम्भ होकर बीरे-बीरे यपार्थ के निष्ठ तक धाना धारम्भ कर देती है। उसके प्रेम में भब यह भावना समाविष्ट है "नहीं मेरे लिए कर्ब की उकरत नहीं। मैं बेसया नहीं हूँ कि तुम्हें लोच-खसोट कर भयना रास्ता नूँ। मुझे तुम्हारे साथ जीना धीर करना है। उसकी माँ उसे बन्धवार मेबती है किन्तु वह पार्श्वन लीटा देती है। उबर रमा भब भी उसे बँबेरे से रवे हुए है। वह अपनी बास्तबिक बधा उससे खियाता ही रहता है। वह कर्ब भेना धारम्भ करता है। आत्मपा क लिए हार पाता है साक्षियाँ धाती हैं, बड़ी धाती है—ऐसबयं के सभी धामान जुटने लगते हैं। परिणामस्वरूप एक दिन रमा को अलुभार से रबकर बचन बँधा कुम्भ करना पड़ता है धीर स्तानि स बचने के लिये बर से मागकर कसकता जाना पड़ता है। आत्मपा की यह उक्ति भी उसके काल में होती है "तुम्हें पाकर भब हमये की परवाह नहीं रही" और वह पड़तावा भा रहा होता है कि "मैं अबर निष्कण्ट होकर रहता तो देर बीबन बिठना आत्मदमय होता। इससे भी इसी तप्य पर प्रकाश पड़ता है कि बरि-पानी क प्रेम में धानूपणप्रियता बाबा स्वल्प तो थी किन्तु उतनी नहीं जितनी कि रमानाब की दुःख-लीला। इस प्रकार हम देखते हैं कि आत्मपा क चरित्र में रमानाब के पसाबन त पूर्व धानूपणों के प्रति परिस्त्रि-सावेय

धाग्रह होने पर भी प्रेम ध्यात्म-सम्मान तथा सत्य की धीर झुकाव रखने वाली वृत्तियों का ही परोक्ष रूप से प्राधान्य है। सेवा के धंक्रुर भी उसमें तभी से निश्चयमान है। जब रमागाम ने साधारण नौकरी में पचास-साठ रुपये ऊपर से बनाने की बात कही थी तो उसने दृष्टान्तक ढंग से कहा था 'तो तुम पूस लोये गरीबों का गला काटोगे ?'

रमा के पलायन के पश्चात् ही बालपा की परिस्थितियाँ करबट बदलती हैं। उसे हाथ होता है कि 'मूठे ऐश्वर्य तथा ध्वास्तविक प्रसन्नता की नशीली दवा पिनाकर जैसे उसे भ्रमण की बहरी जिज्ञा में सुला दिया गया था। अब वह निश्चय कर लेती है कि अधिक देर तक नहीं सोयेगी। वह दिखा देगी कि धामुपराध्रियता सत्य नहीं सत्य है उसका पति प्रेम धीर त्याग। जब वह धाग्रहार को बेचकर रमा का कर्ब चुका देती है तो 'उसे मानूँ हो रहा था मैं कुछ अच्छी हो गई हूँ। धीर उसका धैर्य जीवन इसी विकास की कहानी है। चलती उसकी भी है। अब वह पाश्चात्ताप करेगी। 'भाव उसके मन में पहुँची बार स्वीकार किया कि यह सब उसी की करनी का फल है। यह सब है कि उसने कमी धामुपराध्रियों के लिए धाग्रह नहीं किया लेकिन उसने कमी स्पष्ट रूप से मना भी तो नहीं किया। पाश्चात्ताप के बिने सहन सीमता की धावरवच्छा होती है। अब तो उसे सास-समुद्र द्वारा लपामे गए इस्त्राम भी धिर झौंखों पर है। बिरह को पाकर उसकी प्रेम-भावना धीर भी कमक उठती है। इतना समझकर ही कुछ सन्तोष कर लेती है कि 'अब हँसना या ठक हँसती भी अब रोना है ठक रोऊँगी। वह काले कोसों जमे गए हों, पर मुझे तो हरबम नहीं बैठे बिल्लाई देते हैं। प्रेम के साथ ही उसकी बही त्याग भावना भी जाय पड़ती है। वह सब गहनों तथा ऐश्वर्य की वस्तुओं को उठाकर गला भी में फेंक धाती है। प्रेमचन्द के सव्यों में 'हैं यह वास्तव में माया ही थी—धंविरे से उधाले को मिथ्या से सत्य को। वह निश्चय कर लेती है कि 'अब यदि ईश्वर की दया हुई धीर वह फिर लौटकर धामे तो वह इस तरह घर रहेगी कि थोड़े-से-थोड़े में निर्वाह हो जाये। एक वंसा भी ध्यर्ब धर्ब न करेगी। अपनी मजहूरी के ऊपर एक कीड़ी भी चर न जाने देगी। धाब उसके मये जीवन का धारम्भ होया।

वह मये जीवन की बात मोचकर ही नहीं रह जाती धपितु सक्रिय रूप से उसकी विकास-यात्रा पर सघनत पयों से निकल भी पड़ती है। ऐश्वर्य की सामग्री गंगा में प्रवाहित करने के उपरान्त वह रमा को हुई विकासती है। विकास-यात्रा पर अितनी धधिक सघसर होती है उतनी ही वह सत्य के धधिक

समीप पहुँचती जाती है। वह यह जान जाती है कि श्रावण-सम्मान की भावना पापी के लिये परमावश्यक होती है। बकील साहब की पत्नी रतन उसे वैसे देना चाहती है किन्तु वह उससे स्पष्ट कर देती है 'तुम अपने में सोचो तुम्हारे इस बहुनाथे में क्या का मान मिला हुआ है या नहीं? तुम मेरी घरीबी पर तरस जाकर। इसके साथ ही जालपा के मन में मानव-सुमान सहानुभूति का भी उदय होता है। उसे स्वयं कुछ है बर्ह की पहचान है अतः रतन के विचारा हो जाने पर वह उसे अपनी सम्पूर्ण सहानुभूति से सहभावी है। जालपा सब परिवार की सेवा भी करती है। वह स्वयं बचती पीसती है और ईरानी की बात है कि पिता के घर में उसने कभी बूझे में फँक तक मारना नहीं छोड़ा था। परिस्थितियों वह कहीं से कहीं पहुँच जाती है। किन्तु यह परिवर्तन अस्वाभाविक नहीं लगता क्योंकि अब उसे परिस्थितियों की पहचान है और वह अपने ऊपर चलने के सतत प्रयास में है।

जालपा का चरित्र और भी ऊँचा उठता है तब जब वह रमा का पता पा जाने के उपरान्त उसके पास कमकता पहुँचती है। पहले जालपा अपने धर्मोत्तम प्रभु तक सोमित दी फिर उसे पति-प्रभ की चिन्ता हुई, उसके उपरान्त वह परिवार के प्रति चिन्तित हुई फिर परिवार से बाहर रतन तक भी उठती सहानुभूति पहुँची—और अब कमकता पहुँचकर तो जैसे वह अल्प को अपनी मुट्ठी में बस लेती है। वह इन सभी क्षेत्रों से ऊपर उठकर मानवता के व्यापक-क्षेत्र में पहुँचती है। अपना प्रायश्चित्त करती-करती वह कमकता पहुँची है किन्तु अब वह अपने विधम-वस्तु पति का प्रायश्चित्त करके मानवतावादी भावना तक पहुँचती है। कमकता पहुँचकर वह देखती है कि रमा दण्ड के भय से सरकारी बन्धन बन गया है। 'उत्ते रमा पर अपेक्ष न आया ग्लानि न घाँट; उसे हार्मों का सहाय देकर इस दरबान से निकालने के लिए उसका मन विकसित हो उठा' 'बहु उसे घणघण के धँपेरे सज्ज में न गिरने देवी। वह मोचती है अगर उन्कोने मुझ बयान न बाला तो मैं दरबान में जाकर सारा कच्चा बिट्टा मोल दूंगी चाहे महीना कुछ भी हो। इस प्रकार वह सत्य की किली की मूस्य पर छोड़ना नहीं चाहती। कहती है वह रमानाथ से 'घरर तुम्हें यह पाप भी देती करती है तो मुझे पाप ही मर्दा से बिया कर दो। मैं मँह में बालिख समाकर यहाँ से बसी जाऊँगी और फिर तुम्हें दिफ करने को न पाऊँगी।' 'सभी प्रायश्चित्त हुए नहीं हुए हैं हमलिये यह कुबलना हमारे पीछे पड़ी हुई है। मैं बेग रही हूँ यह हवाय सर्वनाथ करके छोड़ूँगी'। किन्तु उस समय बायबा कर देने पर भी

रमानाव पहली बार एक झूठे अभियोध की मचाही दे ही देता है जिसके परिणामस्वरूप विदेश नाम के मुकदमे को फाँसी की सजा सुनाई जाती है और दोष अभियुक्तों को जैब की सजा। बालपा को खेद तो बहुत ही हुआ किन्तु उसका मन धपनी हार मानने के लिये किसी तरह राखी न होता था।" वह रमा को दुल्हार देती है। आखिर रमा को सोचना ही पड़ता कि बालपा प्यार करने की ही नहीं उपासना करने की वस्तु है "बालपा मैं तुम्हारे योग्य नहीं हूँ। जिस ऊँचाई पर तुम मुझे से जाना चाहती हो वहाँ तक पहुँचने की मुझमें शक्ति नहीं है। किन्तु बालपा घन्टत उठे इस ऊँचाई तक पहुँचा कर ही छोड़ती है। वह हाईकोर्ट में पहुँचकर मुझसे की सज्जी मचाही देता है और न्यायालय में ही कहता है 'बालपा के त्याग निष्ठा और सत्यप्रेम ने मेरी भाँखें लोनी हैं। और धाव बालपा भी अपने दिल से धनुष्य कर चुकी है कि 'दिलासिनी रूप में वह केवल प्रेम के आधारण के दर्शन कर सकी। धाव स्थापिनी बनकर उठने उसका घसनी रूप देखा। किटना मनोहर, किटना विधुत किटना विद्याम किटना तेजोमय। रमा बरी हो जाता है। धव बालपा उसके साथ प्रयाय के पास एक गाँव में बगीच के सहारे रह रही है। उसके एक नन्हा शिशु भी है। वह धपनी दुःस्त्री में बहुत सन्तुष्ट है। वह सत्य के मार्ग पर धव भी धाव है। वह जान गई है कि "जीवन किटना धस्विर है। इतना धस्विर कि सत्य के मूस तक पहुँचने के लिए जी धपयाँव।

कलकत्ता पहुँचकर बालपा के चरित्र में सत्य के प्रेम तथा त्याग पक्ष ही नहीं जमेरे धपिनु उसमें सेवा समता तथा व्यापकता का प्रचुर पुट भी मिला है। विदेश के परिवार की वह जिस सेवा-भावना से सहामता करती है वह साधारण नहीं है। रतन को वह जिस बहाने से तथा पोहरा बीसी देवपा को भी वह जिस भावना से धन्त तक धपने साथ रखती है वह उसके प्रेम की व्यापकता की परिचामक है और जिस गौरीबाबी तथा मार्क्स से भी परिचित धुस की सृष्टि होने के कारण वह कहती है 'मैं उस जमार को उस पंडित से धन्धा समझूँगी जो हमेशा दूसरों का धन धाया करता है — वह उसकी समता भावना है जो प्रत्येक मानव को धूमत दूसरे के समान ही रखकर देखती है।

निष्कर्षतः हम देखते हैं कि कहीं भी बालपा के चरित्र-विकास में धत्सा-धाविकता नहीं है। उन्ही धावकत धृत्तियों का उसमें उद्बोधन हुआ है जिनका धामाध उसके चरित्र में धारम्भ से ही मिलाता है किन्तु जो एक मिथ्या विधम के कारण सो धर गई थी। धुध भी धप्रत्वाधित नहीं बटा है उससे चरित्र में। हममें से जो जोय उसकी धाधुपणधियता के साथ धिपके रहते हैं और

उसकी चरित्र-विरणिति पर धारोपपूर्ण धारण्य प्रकट करते हैं उन्हें कम-से कम प्रेमबन्ध की प्रीड़ सेखनी पर निरवास होना चाहिये इतना भी नहीं तो धनकी सेखनी क साध-साध बन रहे सुधार-सुध की पहचान होनी चाहिये और यदि हम इतनी सामर्थ्य भी नहीं रखते तो कम-से-कम पर भी हम जानपा को इतना बहते हुए तो सुन सकें कि "मैंने पापों का कुछ प्रायश्चित्त किया है और शेष जीवन के अन्त तक करूँगी। यह मैं नहीं कहती कि मोक्ष विनाश से मेरा भी भय गया या बहने-रूपड़े से मैं ठग गई या सँत-समाध से मुझे डरना हो गई। मैं सब समझापाएँ क्यों की क्यों हैं। (क्योंकि मैं इच्छाम है और आकांक्षा स्वभावतः ही मुझ में विद्यमान है)। पुरपार्श्व से अपने परिधम से अपने सद्गुणों से उन्हें पूरा कर सकी तो क्या कहना लेकिन नीयत छोटी करके आत्मा को कम्बुधित करके एक मास भी मासो तो मैं ठुकरा दूँगी।

रत्न

जीवन के प्राणल में ऐसे भी प्राणी लेनकर बने जाते हैं जो मूलतः बेचना ही की वृष्टि होते हैं। उनके जीवन में कुछ भी आचारमक नहीं होता। उनका प्रेम उनका त्याग उनकी सेवा उनका कर्तव्य—उनका सर्वस्व ही निष्पूर जीवन के साथ अनचाहा समझौता होता है। वे जानते हैं कि संसार उनके निवास का उपयुक्त स्थान नहीं किन्तु वे मान कर चलते हैं कि साथ तो मेरी ही है। उड़पनों का दामन पकड़कर मर्यादा का पालन करने वाले उन पिने-बुने जिनाकियों में एक 'दबन' की रत्न भी है जिसका सम्पूर्ण जीवन ही पञ्चमिता का एक समझौता है, समझौता जो कि मूसल धमाचारमक ही होता है।

रत्न के सम्पूर्ण चरित्र का विरलेपण उसकी सर्वत्रमुख वृष्टि राग के अन्त में किया जा सकता है। उन प्रधानतः आचारमक ही हुआ करता है क्योंकि जहाँमें सुखन की आत्मा होती है और उससे उद्बूत प्रेम आनन्द का विषय होता है। किन्तु उसका एक धमाचारमक पक्ष भी होता है जिसमें निरिवापयी कर्तव्यों की भाँग का प्राबल्य हुआ करता है। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में राग (अथवा व्यापक प्रेम) के ये दोनों पक्ष विद्यमान होते हैं—आचारमक तथा धमाचारमक और इन्हीं क आचार पर उसके अमय मुली अथवा दुखी जीवन का बाध हुआ करता है। व्यक्तिगत दृष्टि से चाहे कोई कुछ अथवा अन्ध को ही जीवन-सन्ध मान कर बने किन्तु अन्धकारत आचारमक जीवन ही है—

जीवन माना जाता है। रतन एक युवती है। जीवन रतन प्रधान हुआ करता है। किन्तु। रतन का रतन मार्गों के अधिक धाराओं से घस्त है—बहु प्रभावता धारावात्मक है और शीघ्र रूप से आवात्मक।

रतन के अन्तर्गत एक पक्ष के अन्तर्गत पाती है रतन की जीवन भर की व्यास तृप्ता को आजीवन बुद्ध न सकी। जीवन-सम्पन्ना के रूप की स्वाभाविक तथा प्रमुख माँग होती है प्रथम। ऐसा प्रेम जिसके परिशोध का सफल माध्यम होता है स्वस्व विवाह। पर रतन तो विवाहिता होती हुई भी अविवाहिता-सी है। साठ वर्ष के अकल्पनीय बकील साहब ने अपने एकमात्र पुत्र की भृत्य पर, उसे पत्नी रूप में जीवनाधार बनाया है। उसकी सखी भावना जब पहली बार उसके घर आती है तो समझ नहीं पाती कि रतन बकील साहब की बेटी है अथवा पत्नी। प्रेमचन्द के शब्दा में भी 'बकील साहब को रतन से पति का सा प्रेम नहीं पिता का-सा स्नेह था। उनके पास उसे प्रकट करने के लिये मन के सिवा और भीड़ ही क्या थी? उन्हें अपने जीवन में एक धार की बकरत भी सदेह धार की। अर्थात् बकील साहब के लिये रतन का पत्नीत्व एक धार मात्र है। उधर रतन भी भावना से कहती है "मुझे तो इनके ऊपर क्या आती है।" अर्थात् व्यक्तिपरक दृष्टि से रतन का पत्नीत्व क्या मात्र है। किन्तु पत्नीत्व न तो प्रमुखता पति का धार मात्र होता है और न ही उसकी सफलता पति पर तरस आने में होती है। साम्यता का मूल तो बहु अमर्षण की याचना होती है जिसमें एक गुरुगुणी-सी होती है धारम-मसार की उत्कृष्ट चाह होती है और जिसमें कन्धे से कन्धा मिला कर जीवन में उन्मत्त धारसर होने की सामर्थ्य होती है। यह तो होती है विवाह की आवात्मक स्थिति। परन्तु रतन किसके साथ कन्धा मिलाकर चले? उस कन्धे के साथ जिसे स्वयं धार की बकरत है? अर्थात् भरे जीवन का अमर्षण किसके प्रति करे—उसके प्रति जो अन्तः में तथा स्वभाव से पिता तुम्हें है? तो फिर क्यों न रतन का पत्नीत्व नैसर्गिक धाराओं का संकलन हो? अस्तु—रतन का विवाह धारम-मसार विवाह है और अन्तःम-मसार विवाह आवात्मक कभी नहीं हो सकता क्योंकि धारम-रहित ही तो आवात्मक होता है। प्रेम रहित विवाह की अस्पन्ना मरी चिका होती है। अन्तः से अन्तः ही की दृष्टि सम्भव है। अतः रतन को और भी दिया-विधम ही आता है। वह अपने धाराओं के लिए धार की धार में चल पड़ती है और यह बात उसे है कि उसे स्वयं इसका ज्ञान नहीं किन्तु उसे अपनी सीमाओं का ज्ञान अस्पन्ना है। उसके द्वार पर बकील साहब चौकीवादी कर रहे हैं अतः वह जो कुप भी खोजती है मर्यादित होकर ही।

प्रेमचन्द के विशिष्ट नारी-नामों का खरिज विमल

बकील साहब को उसका धाधार है किन्तु वह स्वयं धपपा धाधार हुंकी है
 बेतब-भ्यस्त रहने में। धाधुपस उसे इसीमिये प्रिय है पाटियों का धायोजन
 इसीमिये वह नित्य प्रति धर पर कछी ही खूती है क्योंकि 'उसका एकान्त
 नीरख बीबन इन विपयों की धोर उन्न मीति मपकता वा जैसे व्यासा पानी
 की धोर मपकता है।' किन्तु इतने से नौ धमाबपत मानव-मन की परितुष्टि
 सम्भव नहीं। धत धब खल की धक्य धावना भी उमरती है। पहली
 धार धब वह धामना को धर बुनाती है तो कछी है 'धाय तुम्हारे धाने
 से भी बहुत मुध हुआ। धिन धर धकेनी पड़ी खूती है। धी धबठपा कछा
 है किन्तुके धाध धाई।' धाध ही वह सखी नौ ऐसी धाहूती है जो धमठरम
 हो वह वही को धकते धैमय के कारख धिधी धाप। वह धठती है धातपा
 को 'धे एक महिलामों ने धुसावा उनके धर धई, धाहा कि धठनापा को ध नू
 मेकिन उनके धाधार धिधार देखकर उनसे धुर खूता ही धमका धासुम हुआ।
 दोनों ही मुझे धस्तु धनाकर धुठपा धाहूती थीं। मुझे लपया उधार से धई
 धौर धाय एक धे रही है। तुम्हारे की धीधों पर धीने उनका इतना प्रेम
 देखा कि कछूते सजबा धाठी है। धुम धड़ी-धाय-धड़ी के धिए रोडधसी धामा
 करो बहन।' इध तरह का धाधरु वही ध्यवित कर कछा है जिसके बीबन में
 समबयस्कीय इनेध धपया प्रेम का धबाध हो। धरी कारख है कि जो धी कछई
 उसके सम्पर्क में धाटा है वह लपये-लपसे के धिसधिले में उसे संदेह की दृष्टि से
 ही देखती है। धामना के धति को कंनल धनधाने के धिये लपए देती है किन्तु
 उतमें धधिक धिसम्भ हो धाने पर धीध कर कछी है 'न लपये धिसते है धौर
 न कंनल धिसता है' धौर धद्यपि लपये धापित से लैती है पर इधका यह धात्यर्थ
 नहीं कि उसे धन से ध्यार है यह तो उसके धिये धिधबाध-धाय की परध धी।
 यह संदेह-धुति भी धबाध-धुति की धयकल धपया सठन धेध्टा की धोर ही
 धपित करती है। एक स्थान पर तो प्रेमधम्य ने इध धनाध के उध पध को धौर
 भी इधका-धा संकेत किया है। धातपा के धति रपा के धाध वह धूना धूठती
 है तो जैसे उधमें परोध लप से उसे एक ठस्कीन-सी धिसती है पर उधके
 धति वह एकधम सजय हो धाठी है धौर सम्भरत' धरी कारख ह कि वह रमा
 के पत्र का उधर नहीं देती। धस्तुण कई धार तो खल स्वय ही धाने से बहुत
 धूर हो धाठी है धौर धाने धाप में एक धाधय धिरोध-धा से धाठी है।
 इधमें लपेह नहीं कि वह नापी है धौर उधमें धायु-धायना का धिसोध नहीं है परन्तु
 धाठी एक स्थान पर तो वह धामना से कछी है 'बहन मुझे तो संतान की
 धामना नहीं है वही धुमने रपान पर धह भी मुझे को धिसता है 'रनल

बाई को बाम-समाज से बड़ा स्नेह है। न जाने कहीं से इतने लड़के बमा हो जाते हैं। बस्तुतः यह सब कुछ रतन के जीवन में उसकी प्रत्यूष राग-भृति का ही परिणाम है। उसकी प्यास ही नाथ गचाठी है उसे। 'मुझे तो करना ही पड़ेगा' और 'मैं नहीं तो कौन करेगा'—एक ही बस्तु को देखने के दो दृष्टिकोण हैं। रतन की रागभृति में प्रथम का ही प्राधान्य है और निश्चय ही वह प्रभावशाली है। किन्तु रतन के राग के इस प्रभावशालक पक्ष की भी एक पार्श्व उपलब्धि है और वह है मर्यादा का पालन। कहीं भी रतन पत्नीत्व की स्थिति नहीं होने देती और स्थिति तो क्या देखने वाले को प्रतीत तक नहीं होने देती कि वह जीवन के प्रभावों से समझौटा किये हुए है। अपना सहन क्षमता के सहारे टिकी हुई है—अथवा उसे कोई प्यास भी है। इस प्रकार हम देखते हैं कि रतन के जीवन के प्रभावशालक पक्ष में उसके प्रत्यूष पत्नीत्व के साथ उसकी सकल भावना भासुपणप्रियता अकर्तव्य का ज्ञान तथा सहन क्षमता आदि की विशेषताओं से बने होने के कारण जिस राग की प्राप्ति होती है वह है मर्यादा-पालन। इस मर्यादा-पालन के अन्वय में है कुष्ठार्थ। वह पत्नी है और उसका पति भी जीवित है। अभी उसके पास है। दूसरी घोर आलसता का पति घर से भागा हुआ है और स्वामाधिक है कि उसे कुछ हो किन्तु जब रतन बीमार पति को लेकर कमकला जाती है तो "प्राण उसे (आलसता को) रतन का प्रसन्नी रूप दिखाई दिया। वह सचमुच सजागिनी है और मुझसे बढ़कर। रतन का वह मर्यादा-पालन बस्तुतः कुष्ठित व्यक्ति का मार्गदर्शक है।

दूसरी घोर, रतन की रागभृति का प्रभावशालक पक्ष भी है जिसके साथ सम्बन्ध है उसकी सेवा-भावना कर्तव्य-भावना तथा मानव सहानुभूति आदि की विशेषताएँ। वह सक्रिय साहस से अचानक की तनिक भी अतिव्यक्ति नहीं करती। ऐसा प्रभाव होता है जैसे वह ठीक ही आलसता से कहती है 'मुझे तो कभी यह क्या भी नहीं आया बहन कि मैं मुचली और ये बूढ़े हैं। सक्रिय साहस के प्रति उसे सहानुभूति ही नहीं अतिसुख बह उन्हें देखता समझकर उनकी सेवा भी करना चाहती है। उनके बीमार होने पर उबकी दृष्टि होती है 'अब कोई मेरा सर्वस्व लेकर भी इन्हें मर्यादा कर दे कि इस बीमारी की बड़ बूढ़ जाने तो मैं पुसी से दे दूँगी। कमकला पहुँचकर वह सक्रिय साहस की इतनी सेवा करती है कि उन्हें कहना पड़ता है 'मुझे डर है कि मुझे मर्यादा होकर तुम्हारी सेवा न करनी पड़े।' और सब प्रभाव जब दिक्कत जाते हैं तो उनके दिक्कत हो जाने पर भी उसे घोर रहता है कि वह उनकी प्रभावशालक

प्रेमबन्ध के विविध नारी-पार्श्वों का चरित्र चित्रण

सेवा न कर सकी। उन चरित्रों को मस्तक से स्पर्श करके धाब उसके हृदय में झिलना अनुपम उमड़ा प्राता वा मानो एक युग की संक्षिप्त मित्रि को वह प्राप्त ही इसी क्षण मुटा देसी। बाद के दिन वह अपने सारे बदन और धामपुण्य महापाम को बाध कर देती है। बिबबा के रूप में उसके चरित्र की सेवा-भावना को त्याग का स्पर्श मिलता है। 'बही रतन जिसने स्वयं की कमी हकीकत न समझी इस एक ही महीने में रौटियों की भी मुहताज हो गई थी किन्तु पति की सम्पत्ति को समेटने वाले यणिसुपुण्य के समझ वह झुंझती नहीं है। रतन तथा बाबपा के साथ वह एक पौध में खड़ी है और वही जोहरा नाम की बेरवा को जो सहायुभूति वह देती है बासवा भी वह नहीं दे पाती। अन्ततः वही बिबबा रतन की मृत्यु किसी रोग के कारण हो जाती है। प्राचीन मन प्रयावप्रस्त खरकर भी उसने दूसरों के लिए भावों की मुक-वर्षा की थी। प्रेमबन्ध के सम्बन्ध में 'रतन की मृत्यु का शोक वह शोक न था जिसमें प्राचीन हाय-हाय करता है बल्कि वह शोक जिसमें हम मृत स्थान करते हैं जिसकी मात्र कभी नहीं भूमती जिसका शोक दिन से कभी नहीं उतरता।'

इस प्रकार रतन के चरित्र में स्वामाबिकता की एक नयी विद्यमान है। किन्तु मानव-जान पर प्राप्ति होते हुए भी उसके सम्पूर्ण चरित्र को प्रेमबन्ध संक्षिप्त विकास नहीं दे पाये हैं। वह बात बहुत ही जलती है कि बिबबा हो जाने के उपरान्त मृत्युपर्यन्त का उसका चरित्र उपन्यास में मुत्तप्राय है। इतर-उत्तर दो-चार सूत्र बिबेरे कर उसके चरित्र का प्रस्तामार्थिक प्रस्त कर दिया गया है। निरवय ही उसकी चरित्रानिष्पत्ति यहाँ दोषपूर्ण है। बिबबा रतन को प्रेमबन्ध की उपयोक्तावारी इष्टि की प्रतिबन्धिता का है। बिबबा रतन को जन्मनि कैवल्य देने से तप्य का माध्यम बनाकर रख दिया है कि प्रायिक इष्टि से नारी बहुत ही पराधीन है। उन समय हिन्दू लोग बिल वैसी व्यवस्था भारतीय न्याय संज्ञिता में नहीं थी और सम्भवतः प्रेमबन्ध में बिबबा रतन के समय भी रतन की पुत्रिनियों के प्राप्ति के लिए प्रेमबन्ध में बिबबा रतन को परन्तु वैषम्य-गुणों की रतन तथा बिबबा रतन में यदि तुलना करें तो जान होता है कि पति-मन्त्रि के त्याग के उपरान्त को प्रेमबन्ध में कहा जा कि 'प्राय उसके वास्तविक जीवन का प्रारम्भ हुआ — वह 'वास्तविक जीवन' नाम की मस्तु रतन के चरित्र माध्यम में स्पष्ट नहीं हुई है। एक तो नारी के लिए अधिकार प्राप्ति वैसी योग्य को प्रेमबन्ध स्वयं ही वास्तविक जीवन की तर्प्यवता नहीं बलते (गौरवान में मेहता का वास्तव्य इस इष्टि में इष्टव्य है) और दूसरे

हैं — इसका धर्म यही है कि बौन भावना को झुठलाया नहीं जा सकता उसमें धारम-समर्पण की लीजता होती है जिसकी पूर्ति का स्वस्व-साधन होता है स्वम्भ विवाह । सो विवाह-पूर्व की निर्मला में बौन भावना प्रबल है और मन्मीरता भाङ्गुठता एकान्तप्रियता मारु-बहनों के प्रति चाङ्गक स्नेहलीलता निराप एब अनिच्छनीकता रङ्गना धारि—उसकी इन सम्पूर्ण चरित्र-विशेषताओं में बौन भावना धरवा भाषी पत्नीस्व की विज्ञासा का स्वर ही प्रमाण है ।

उपर्युक्त देखाएँ निर्मला के चित्रण से पूर्व ही प्रेमचन्द के मस्तिष्क में विद्यमान थी । उसके विवाह के उपरान्त उन्होंने उन देखाओं में रंग नरने मारम्भ कर दिने । बौन भावना की पृष्ठभूमि पर सब से पहला रंग जो उन्होंने भरवा है वासना का उषालीकरण । निर्मला के चरित्र में सर्वप्रमुख विशेषता यही है कि उसमें वासना का उन्मूलन नहीं मरितु उषालीकरण है । उषका विवाह स्वभाव-भेद से ही नहीं मरवस्था भेद से भी धममेम है । विवाह की मुहर-मात्र लग जाने से तो स्वाभाविक वासनात्मक संस्कारों की समस्या इन नहीं हो जाती । निर्मला के मन में भी इठलाठी हुई उमरों हैं । पति के खोससे प्रेम-प्रवर्धन को देखकर उसके मन में धाता है इस घर में धाव हू । “बह धपना क्य और मीधन उन्हें नहीं विज्ञाना चाहती क्योंकि वहाँ देखने वाली धारि नहीं है ।”

इसका क्याचित् यह कारण था कि धर तक ऐसा ही एक धावमी उसका पिता या जिसके सामने बह तिर मुकाकर, हैह पुराकर निकलती थी धर उनकी धरवस्था का एक धावमी उसका पति था । बह उसे प्रेम की नहीं सम्मान की वस्तु समझती थी । अतः निर्मला बहुत देर तक अपनी बौन भावना को झुठला नहीं पाती । उनकी वासना नृपि चाहती है । बह उसे अपने समकक्षक मन्साराय—पति के बड़े लड़के से सम्पर्क के रूप में मिलती है । ‘मन्साराय से हूँधने बोसने में उसकी विज्ञासिनी कल्पना उल्लेखित भी होती है और नृप्य भी । स्वयं निर्मला भी इस तथ्य को स्वीकार करती हुई कहती है “यह मैं जानती हूँ कि धपर उमक मन में पाप होता तो मैं उसके लिये सब कुछ कर सकती थी ।” इस प्रकार निर्मला के चरित्र में वासना का निर्मूलन नहीं है किन्तु धुमरी धोर उसे एक मामलिक विद्या की धोर प्रवाहित किया गया है । इसमें तो सम्येह नहीं कि भारतीय हृदि के अनुधार कल्पना को धरवा भूयित विचारों को भी धर्म ही के धर्मगत रमा गया है किन्तु यह भी मूठ नहीं है कि निर्मला उसी कल्पना के धारे ही उँबी उठी है । मन्साराय जैसे धालम्बन को पाकर बह स्वयं में भी उससे कञ्चुयित प्रेम करने की वाप न सोच सकती थी’ —यह प्रेम धर का कथन है जिसकी धरवा हमारे विचार से उनकी निर्मला ने ही उप

वृत्त सीधे चरित्रों में कर दी है। इतना होते हुए भी निर्मला के इस प्रेम प्रसंग का महत्त्व इस दृष्टि से अधिक है कि उसी के द्वारा उसके चरित्र में स्वान्ध्यात-अभिदान एवं धर्म्य मानवीय भवेदनाओं के साथ ही उस उन्ध्यातर्ष का भी मूलपाठ होता है जो उसकी उन्धेनी सुभा के डाक्टर पति के एकान्त विभास निमग्नता में भी उसके उत्तीव को चरित्र नहीं होने देता। यह एक घातक्य चरित्र किन्तु सत्य बात है कि उत्तीव रक्षा का पाठ उसने पति से अधिक मन्साराम के कष्टान्त से सीखा है। रक्ष्य मन्साराम के लिए वह अपने रक्त की अधिकतम रूढ़ तक देने को उत्तर हो जाती है। वही पृत्यु घातकीय उसकी प्रीतों के सामने गर्तन करती रहती है जिसके नाम्यम से मन्साराम ने उसे निष्कर्षक प्रमाणित करते हुए पाँ के सम्बोधन द्वारा भावीत्व के तन्मीर पक्ष की ओर अनुब्रु होने की प्रेरणा प्रदान की थी और इस उत्प की हृदयस्थ कष्ट रिता या कि विष्णुक प्रेम ही पर्य से हिर उद्य सञ्जटा है। चरित्रायी बेसी कठोर एवं कुच्छिन्न तन्त्र का भी निर्मला के चरित्र के इन्ही उदात्त पक्ष के कारण गर्म होता पड़ता है। कहा जा सकता है निर्मला की बाह्यता का उदात्तीकरण चरित्रिक घसाधारणता की प्रेरणा परिस्थिति-सापेक्ष अधिक है। हमारे विचार के मही कारण है कि वह अधिक स्वाभाविक एवं विश्वसनीय है—माधवी (बरवान) एवं सुयम (सिवा-सदन) घादि की चरित्र-परिच्छिपि से भी कही अधिक विश्वसनीय।

निर्मला के चरित्र की इच्छी प्रमुख विशेषता है सहनशीलता। एक तो धनमेत विवाह डूबरे प्रातिक हास और तिस पर गार्हुस्म्य-संघम्य। स्वाभाविक ही है कि निर्मला घण्टर्जाह में बेरना ही की प्रतिवृत्ति हो। चरित्रायी भी कहती है 'गुन्हाय बय का हृदय है महापानी। तिलप्रति ध्यम्य-बाणों की बीछार सचिच्छि हृदियों की ताक-म्यक विभिन्न घपरारों का घारोरण और क्या नहीं—निर्मला को सब सञ्ज है। पर किन्ते सधम्य कि "उसके हृदय में विष्णय की क्वाला-सी दहनती रहती थी जिसकी घण्टह बेरना ने उसे संज्ञाहीन-या कर रवा बा" ? 'तन्त्र' की रत्न के पति ने और कुछ नहीं तो रत्न का समझ तो बा इनके प्रति प्रणय को स्वीकार तो किया या किन्तु निर्मला को तो वह प्रभावामक साम्त्वना भी मसीब नहीं है। वह तो जैसे बनी ही जसम के हेतु है। प्रेमचन्द के चरित्रों में 'निर्मला की क्या उक्त संवहोत पक्षी की तरह हो रही थी जो गर्न की घपनी ओर घाते देकर उड़ना चाहता है पर उड़ नहीं सकता' उद्यनता है और तिर पड़ता है पक्ष कड़फड़ा कर रह जाता है। सब ही बरते बय तक निर्मला के जीवन से घनमीता किया है पताचन नहीं।

निर्मला अपने कर्तव्य से भी कभी व्युत् नही हुई है। पत्नी के रूप में दृष्टिणी के रूप में विमाता के रूप में पुत्री भगिनी एवं छोड़ी क रूप में—सबसे उतने प्रत्येक सम्भव मर्यादा का पालन किया है। इसमें लेशमात्र भी लम्बे नहीं कि पति से प्रेम उसे नहीं है अन्त में लोत्ताराम जब पर लोकर खाते हैं तो भी उस उनके बिरह का कुछ नहीं होता अपितु नहीं बची के अधिष्ठी की एक ऐसी चिन्ता होती है जो बची का ल में खाते के अभाव में होती है। लोत्ताराम के प्रेम-मदर्यन से उसे बिरहपूछा ही नहीं तीव्र हुआ भी रही है। फिर भी यह एक बलिवाग से कम नहीं है कि उसने उनकी सम्मान ही नहीं दिया उनकी सेवा ही नहीं की दृष्टिणी का लेश-बोला ही उनके सामने प्रस्तुत नहीं किया अपितु सम्पूर्ण भ्रान्ति की कर्तव्य के अभाव में समेटकर लोत्ताराम भी बिना है—पिता के समान पुत्र की वाचना को अस्वभाव दिया है आत्मोत्सर्ग किया है। दृष्टिणी के रूप में उसने सबको बिलाकर फिर स्वयं काया है। विमाता होती हुई भी वह कभीम साहब (पति) से अधिक सबको के अधिष्ठी के नियम में चिन्तित रही है। पुत्री के रूप में उसे पशु की भाँति जिस पर में हाँक दिया गया है वही भी उसने अपने पित्रुपक्ष की लज्जा का निवारण नहीं किया है। भगिनी के रूप में उसने लम्बे की अपनी लीची दुर्बला नहीं होने की है और छोड़ी के रूप में भी यद्यपि वह बहुत सफल नहीं तो भी बिरहासमातिनी नहीं बनी है। बस्तुतः कर्तव्य के क्षेत्र में निर्मला सबके प्रति कुछ-न-कुछ प्रबन्ध रही है, नहीं रही तो अपने प्रति—विशुद्ध होने के प्रतिरिक्त कुछ नहीं रही। कुछ आसौचकों न निर्मला के चरित्र के इस पक्ष को प्रतिबन्धी आदर्श के अन्तर्गत रखते हुए अस्वाभाविक ठहराया है। हमारे विचार से केवल निर्मला उपन्यास को पढ़ लेने से ही वह भ्रान्ति होती है प्रेमचन्द की नाटी मावना से अस्वभाव हो जाने पर यह अस्वभाव के प्रतिरिक्त शेष कुछ नहीं रह जाती। लोदी देर के लिए मन्थार्थ प्रतिपादन की दृष्टि से इसे कुछ अस्वाभाविक मान भी लिया जावे तो प्रश्न यह उठता है कि इसके प्रतिरिक्त निर्मला के चरित्र की ओर क्या निर्माणात्मक परिणति हो सकती थी जो प्रजाबोत्साविका के धाम ही हमारे मूर्खों का हृदय भी न करती ?

निर्मला का मातृत्व भी उसके चरित्र-समष्टि में महत्वपूर्ण रहा है। धार के उपन्यास लेशक समस्याओं के अन्तर्गत में युवती के पत्नीत्व अथवा रमणीत्व के समस्त जिस मातृत्व को उपेक्षित समझ लेते हैं, प्रेमचन्द की 'निर्मला' में उसके पशुर आरम्भ से ही विद्यमान है। लोत्ताराम के रोते हुए 'बालक को गोद में लिये हुए उसे वह लुट्टि हो रही थी जो भी अभी तक कभी न हुई थी। मान

पहली बार उसे आत्मवेदना हुई जिसके बिना घाँव नहीं चुसती अपना कर्तव्य-मार्ग नहीं समझा। यह तो निर्मला का दुर्भाग्य है कि विभाता के रूप में उसका आत्मस्य केवल दया के पर्याय से अधिक नहीं समझा गया पर अपनी मन्त्री कन्या की जन्म देने के उपरान्त उसे जैसे बँने का सहारा मिल जाता है। “आसिका को हृदय से लगा कर वह अपनी सारी-विचारों भूल गई थी मातृत्व के इस सङ्कार में उसके सारे क्लेश बिलीम हो गए थे।” उसका प्रति बन्धी के प्रति घरासीन हो जाता है तो वह बत-सी-मन बड़बड़ाती है “अगर तुम इसके बोझ से बने जाते हो तो धाव से मैं इस घर तुम्हारा साया भी न करने दूंगी। जिस रत्न को मैंने इसकी उपस्था के बार पाया है उसका निरादर करते हुए तुम्हारा हृदय फट नहीं जाता ?”—उपस्था क्या थी यह ती निर्मला की आत्मवेदना ही आती होगी किन्तु इतना धबधब है कि अभिष्य में वह कन्या के अभिष्य के प्रति विशेषतः विविष्ट रहती है और बलि के धन्वे में मन्दे के दिनों में एक-एक कीड़ी दाँव से चकड़ने लगती है। मरते वन तक निर्मला को यह चिन्ता मनी ही रहती है “आयव इससिये कि जिस कर्तव्य को उसकी अपनी माँ गिना नहीं पाई थी मातृत्व की वह सहज प्रतिक्रिया उसे तर्क नचोटती रहती थी।

उपयुक्त पाठारभूत विशेषताओं के अतिरिक्त निर्मला के चरित्र में उसकी विभी भुटियाँ भी हैं। उनमें से एक यह है कि आयेष की अवस्था के उपरान्त ही वह मन में समाई हुई प्रबवा प्रचरों से निकली हुई बात को तीसती है। ऐसे राज को जो किसी के सहार तथा किसी के बंधन्य का कारण हो समाज न पाया एक भापी कमजोरी होती है। मुबा के प्रति जो मृत्यु उसकी इसी अज्ञानता का परिणाम है। जो आसना कमी स्वर्ष उसके द्वारा भी अविश्रित रही थी मुबा के प्रति के प्रसंग में भी वह धबधब नहीं थी। इसी प्रकार, निर्मला की पारिवारिक सहजसौमता ने घर से बाहर उसकी आत्म-सम्मान की मानना को किसी सीमा तक बंधन रखा है। धीर कहीं नहीं तो नृत्यणा के विवाह में मुबा के प्रति के समझ उसी विदुष्यणा के विरोधी स्वल्प का सपनी करण हो गया आह्विय था।

वहाँ तक चरित्र-चित्रण का प्रश्न है, यदि अन्तिम प्रमाणोत्पन्न ही रत्न दया की बसोटी है तो निरवय ही निर्मला की अभिष्यक्ति सम्पूर्ण प्रमचन्द आह्विय में केजोड़ है। निर्मला नारी-जीवन का एक करलुतम अन्वय है जिसे पकटने के उपरान्त समाज के प्रति प्रेमचन्द एक तर्कबाहक के रूप में हृष्टि पोषक होते हैं। अविश्राय आसोचकों का मठ है कि निर्मला में भी प्रेमचन्द

को विवाह-समस्या के हल का कोई धोर नहीं मिला है। हमारे विचार से बात एसी नहीं है। सोनिया की समस्या समाधानरहित हो सकती है कुमन और माचबी प्रादि चरित्रों की समस्याओं के हल प्रपूर्ण हो सकते हैं—किन्तु निर्मला ने अपनी समस्या का हल स्वयं ही हमारे सामने प्रस्तुत किया है। उसकी समस्या है धनमेक विवाह की। मृत्यु-धर्म्या से संबंध के रूप में अपने उसका समाधान छोड़ा है—“निर्मला की सौध बड़े बेप से चलने लगी। फिर बाट पर सेट गई घोर बच्ची की घोर एक ऐसी दृष्टि से देखा जो उसके जीवन की सम्पूर्ण विपत्तिका की बृहद् प्रामोचना की बाणी में इतनी सामर्थ्य करी”। वस्तुतः यह दृष्टि नहीं है बिते ‘गिरना’ ने ‘चोड़ती पत्थर’ में ‘ओ मार का रोई नहीं’ कहा है। निर्मला धान भी कह रही है “बच्ची को आपकी घोब में छोड़े जाती हूँ। धरत बीती-बावती रहे तो किसी बन्धे कुल में विवाह कर बीबिया चाहे कबारी रबियेका चाहे बिय देकर मार डालिया पर कुपात के बने न मड़िया इतनी ही आपसे बिनम है।”

मुन्नी

मुन्नी प्रेमचन्द की धमर-नाम-सृष्टि है। जीवन की विरतिभूतक विवद्या मुमुक्षुओं का बँसा विद्या-परिवर्तन ‘कर्मभूमि’ की मुन्नी के चरित्र में उपलब्ध होता है बँसा सम्पूर्ण प्रमचन्द-साहित्य में नहीं मिसठा। माचबी धचबा वीनी की धाँधि मुन्नी को बीरगने में नहीं छोड़ दिया गया है। मुन्नी तो एक ऐसे पत्र पर धमसर हुई है जहाँ अपने-वचने का भेद भाव मिट जाता है जहाँ हृदय की धयाह वेदना सक्रिय रूप से सोकमंगल की घोर मुड़ जाती है और जहाँ व्यक्ति परम्परागत पात्रधर्मों के पात्र को क्षिप्त-विच्छिन्न करता, हृदा धारम-निष्ठ के सहारे जीवन से धावर्ष समझौता करके बिनम भाव से ऊपर उठने का प्रयत्न करता है।

मुन्नी के चरित्र के तीन मोड़ स्वतः स्पष्ट हैं। पहले मोड़ की भाषा पति गृह से लेकर पति की मृत्यु धचबा धात्महत्या के प्रयत्न तक की है। पति के धाय मुन्नी के धर्मिक की धमिभक्ति मद्यपि बहुत कम हुई है तथापि उसके परलीत्व के स्वरूप की पहचान वहीं पर ही होती है। धत उसके जीवन के इत पत्र को उसका परली रूप भी कहा जा सकता है। परली रूप में मुन्नी गतीत्व रता को सर्वप्रथम महत्व देती है। सतीत्व को बहु परिणीता की एकमात्र बलप्रदायिनी धक्ति समझती है। इससे बधित होकर एक नारी समाज की धीर अपनी गजरो में बिर जाती है। पोरे तिवाहियों धात्र सतीत्व बधित हो जाने के उपरान्त मुन्नी धात्रीधन किमी भी पति की करुणा को मन में समुचित

स्वान नहीं देती। यह उलक बरीरमात्र का ही स्तिरस्कार नहीं अपितु उसके सतीत्व का सर्वत्र के लिए घणहरण था। प्रमथन के सर्वों में "उसकी जिस बसु का घणहरण किया था उसे कौन रिखा सचठा था? कुट्टों को मार जाने इतने तुम्हारी म्याप-भुक्ति को सन्तोष होमा उसकी तो जो भीज जाती थी गई। मुन्नी स्वयं म्यावालय में कहती है "मैं तो बन्बान् से मनाती हूँ कि जितनी बन्बी हो सके मुझे संसार से उदा के जब पावक मु" गई तो भी कर क्या करोगी? समाज चाहे उस स्वान दे न दे उसकी घपनी दृष्टि में ही उसके सतीत्व की मृत्यु हो चुकी है—उस सतीत्व की जिसके बूते पर वह घाव भी किनी से कहने के लिये बिभबिता उठती है "मैं तुम्हारे पति को घपन पति का रीर बोने योग्य भी नहीं समझती" कितना र्वक था उस घपने पतीत्व पर। 'मेरा वह साटा-सा बसारा कितना सुखमम था"—घाव भी वह इस याद को भूल नहीं पाई है, किन्तु घाव तो वह एक कहानी है, उसके पीठे भी उसके सतीत्व को बरबत एक कहानी बना दिया क्या है। कुछ भी हो उस कहानी की याद को तो उनसे कोई नहीं छीन सकता वह उसकी घपनी है सदा-सदा के लिए घपनी। सतीत्व-रक्षा के हेतु जिस धात्म-सम्मान की धावरपच्छा होती है उसे तो कभी नहीं छोड़ा उठने—तब भी घीर बर भी। इसी धात्म सम्मान के बरेरणा स्वकन ही तो गोरी से प्रतिघोष लिया है उसन घीर इसी के कारण ही वह समाज के बसाधान को टुकरा भी देती है। बुबरे की बसा को वह धात्म-सम्मान में बाधक समझती है। कहती है वह "जब तक मैं घपने घाव को इस बोले में डासे हुए भी कि धायर मेरे मुप से कालिब छू" गई घीर घब मुझे भी घपनी घीर बहनों की तरह बिदवास घीर सम्मान बिनेगा। परन्तु मन की मिडारी के स्वार से किस्का पेट मरा है। यदि घाव सरकार मुझे छोड़ भी है, मेरे बारी-बहन मेरे लने में कुलों की माता भी डाल दें मुझ पर घपन्त्रियों की बरसा भी कर दें तो क्या मैं यहाँ से घपने कर जाऊँगी? हमें बीबन इसलिये प्याप होगा है कि हमें घपनों का प्रेय घीर बूसरी का घावर मिलता है। जब इन रो में से एक के मिलने की घासा भी नहीं तो बीबन बुबा है। घपने मुझ से घब भी प्रेय कर दें लेकिन वह क्या होगी प्रेय नहीं।" इन घन्नों में निहित घमम-सम्मान की मावना के कारण ही उसे घपने सतीत्व कथित बीबन से विनूय्या हो जाती है घीर वह घात्महत्या का प्रपान तक भी कर जानती है। सतीत्व एवं धात्म-सम्मान के साथ ही सहुन स्नेहमय धात्मत्व भी उसके चरित्र की प्रमुख बिद्येपता है। यद्यपि सतीत्व के सुट जाने के उपरान्त वह घपने बन्ने पर घपनी छाया तक नहीं पड़ने देती तो भी उसका मानूरन बना

पास ही पुछ सठठा है 'बासक बहुत बुझसा हो गया होबा ।' नारी में चाते समय उसने बासक को दूर से देखा या 'उसने दोनों बाँहें फँसा ली ली मानो बालक को गोद में ले रही हो—घोर मूर्च्छित होकर किर पड़ी थी। अपने ही धिमु के लिए नहीं अपितु बिल्ली के धिमु के हेतु भी वह उनकी मौकदानी तक बन जाती है। अमर का अपनी क्या सुनाती हुई वह कहती है मैं तुमसे क्या कहूँ बाबूजी मेरे स्तनों में दूध भी उतर धारा घोर माता को मीने इस बार से भी मुक्त कर दिया। इसी बरसम भावना के सहारे ही वह अपने सेव जीवन में सभी के लिए स्नेह बिखेरती चलती है। इसके अतिरिक्त जीवन के पहले मोड़ पर ही एक घोर भावना भी उसके चरित्र में आप्रव हुई है जिसका कि उसके जीवन में विशेष रूप से उत्तरोत्तर बिकाश हुआ है। वह है समाज-मंथन की भावना। न्यायालय में वह सभी को सम्बोधित करती हुई क्यूटी है 'यहाँ मेरी बिल्ली बहुत ब भाई हैं उन सबसे मैं यही निगा माँगती हूँ कि उस समाज के उदार के लिए सबदान से प्रार्थना करें जिसमें ऐसे नरपिशाच उत्पन्न होते हैं।' 'बस्तुतः यही से बड़ पकड़कर इस भावना के मविष्य में मुन्नी को बेधमन्त्रि का फल प्रदान किया है। इसी प्रकार जीवन के पहले मोड़ तक पहुँचते-पहुँचते मुन्नी के चरित्र में बासना का नाम नृत्य बेश मिया है समाज की यथार्थ स्थिति को पहचान मिया है और सतीत्व धारम-सम्मान बासस्थ बितृप्या एवं सुधार बाधि की विशेषताओं को धारमसात् कर मिया है।

मुन्नी के चरित्र का दूसरा मोड़ उसके पति की मृत्यु से अथवा धारमहत्या के मिये किये गए प्रयास से निकर बिल-बमन तक की बिकास-यात्रा की मिये हुए है। इसे प्रामीख-बिबबा-मुबती का रूप कहा जा सकता है। उसे धारमहत्या के हेतु डूबती बैसकर एक अमार बचा कर अपनी रँबाओं की बस्ती में ले घाटा है। इस छोटे-से नाँव में बाकर राजपूवनी मुन्नी पूरुंत रँबासिन मुन्नी बन चुकी है और गूदड़ बीबरी की बिबबा बह के नाम से धमिहित होती है। अतः इस रूप में उसकी सर्वप्रथम बिधेपता है उसका समभाव। मुन्नी के लिए सब पाठीय साधार पर मानव मानव में कोई अन्तर नहीं है। अग्निठ होने पर बिस धारम-बिरमृति एवं सामाबिक सम्मान की सम्नाबना उसे राजपूव-समाज से नहीं मिसी थी इस निर्बन एवं निम्नवर्णीय समाज में अथकी पूर्ण परितृप्ति हुई है। प्रेमचन्द के अर्थों में 'यहाँ उसका धावर है मान है वह अपनी पाठ-पाँव भूम गई, साधार-बिचार भूल गई और ऊँची बाधि की ठकुरइन बस्तुओं के साथ अछूत बनकर धान्यपूर्वक रहने लगी। वह घर की मालकिन थी बाहर का साठ काम वह करती भीतर की रघोई-पानी कूटना पीसना दोनों

रैबरानिया करती थी । वह बाहरी न थी । जोबरी की बहू हो गई थी । वह सब सारे सब की मामी है और इसी में धारम-मुष्टि भी प्रमुख करती है । अपने प्राचीन सामाजिक रूप की छाया तक से भी घब करती है । घबर जिसने कि पूर्व कथित मुकरने को भीतने में उसकी नैतिक सहायता की होती है जब अपनी प्राथमिकता पारिवारिक परम्पराओं के कारण वृहत्प्राप करके भाग्यवश मुन्नी के ही गाँव में आ निकलता है तो वह उससे कहती है "तुम्हारे हाथ जोड़ती हूँ यहाँ किसी से कहना नहीं ।" अस्तुतः वह समाज के एक तयाकथित ढँके बराबर से उतर कर नीचे आई है और उसने इस तथ्य को पहचाना है कि यहाँ की सरलता एवं धरमज्ञता यहाँ की मानमर्माबा एवं परम्पराओं से बहुत बड़ी है क्योंकि यहाँ सभी अपने हैं । वह बीरे-बीरे यह भी समझ जाती है कि यदि वास्तव में ही हमें निम्न-जातियों में कोई जादृति फँसानी है तो वह कोट-पतखून पहन कर कारों में बैठकर नहीं अपितु उस ढँकाई से एक क्रम नीचे उतर कर इनमें हिल-मिलकर ही प्रसारित की जा सकती है ढँकाई पर बैठकर घावाज लगा देने में कहीं बेहतर एवं वास्तविक यह होता है कि नीचे उतर कर सर्व में परे हुए व्यक्ति की बाँह बामकर उसे अपनी विचारधूमि तक लाया जाये । इसके लिए आवश्यकता होती है उस समाज की जो बतरणी से निकल करणा है उस में डूब रहे प्राणियों से नहीं । जिस प्रेरणा एवं जिस ढग से मुन्नी सभी धामीणों से गृह-गो-मांस के भक्षण की लोबा सेठी है वह उसके उदात्त समाज की प्रबल साक्षी है । उसके इस समाज को उसके चरित्र के साथ विपक्षमा नहीं पया है अपितु, सेवा र्याग एवं बलियान के हृद भाचार पर विकसित किया गया है । पो-मांस की घोर सपकते हुए जमारों के घामे वह गर्दन टेककर कहती है "अब जलाप्री बडाना पहला पडासा मेरी गर्दन पर होगा । —यह तो हुई मुन्नी की समाजना जीवन के इस डुमरे मोड़ में उसके चरित्र की एक धम्य भाचारक विद्येयता भी सर्व प्रमुख रूप से विकास की अंतिम रेखा तक पहुँची है वह है उसकी प्रेम-भावना । इतनी स्वल्प एवं विचरतनीय राव-भावना मायद ही प्रमथन्ध के किसी धम्य नारीपार्श्व में उपलब्ध होती हो । मुन्नी को घबर से प्रेम है और उन प्रेम का मूल मानव की महत्त्व वासना में है—इस तथ्य में तो कोई सन्देह नहीं किन्तु मुन्नी का प्रेम इस दृष्टि में महत्त्वपूर्ण है कि उसमें मानना का उदात्तीकरण है । इस प्रेम में उसे घबर के साथ ही नहीं अपितु जीवन के साथ एक रावतरमक तार में बाँध दिया है । जीवन के प्रथम मोड़ पर जिन जीवन विहृष्या के कारण उसने कहा था "अब मेरी धामने यही दिवती है कि मुझे हृषियार या किसी डुमरे तीर्ष-स्वान में

मेव शीघ्रिय" वह विरहित सम्भवतः उसके लिए जीवन में और भी अधिक कुशाघों की वरदाहिनी होती किन्तु धमरक रूप में एक साकार धाधार को पाकर वह जीवन-स्वास्थ्य की ओर खिंची है। दार्शनिक तृप्ति को वह अब तक बहुत परतन चुकी है और वह धमर वह भी जानती है कि धमर प्रविधाहित नहीं है पर इससे उसकी चारणा में कोई धमर नहीं आता। उसे तो केवल इतनी चाह है कि जमानों की उस बस्ती में कोई ऐसा पहुँचा हुआ भी हो जो उसे सही रूप में अपनी समझ सके। वह धमर से बार-बार कहती है "मैं तुमसे और कुछ नहीं माँगती। अब इतना ही चाहती हूँ कि तुम मुझे अपनी समझ में और यह मुझी ही की नहीं साधारण से प्रसाधारणतम व्यक्ति की भी मुझ होती है कि कोई उसे ठीक समझे। धमर प्रसाधारण गुणों से युक्त होते हुए भी अब मुझी को अपने साथ भाग चलने को कहता है तो वह प्रत्यासा ही उसके मुँह पर हाथ रख देती है और कहती है "अब और कुछ नहीं कहना। मरब सब एक से होते हैं। मैं क्या कहती थी तुम क्या समझ गए। मैं तुम से सवाई नहीं करूँगी तुम्हारी रखेनी भी नहीं बनूँगी। तुम मुझे अपनी बेटी समझते रहो यही मेरे लिए बहुत है। इस प्रकार उसके प्रेम की परिपुष्टि सेवा में निहित है। धमर को कोई कष्ट न हो कोई मानसिक दुःख न हो—वही उसका प्रेम है। धमर समाज-सेवक है। उसकी चरित-गतिमा के कारण मुझी को उसकी निरन्तर चिन्ता लगी रहती है। शुभ कहीं पाठ हो जब तक पाओगे"—सेवा पर प्रामित्त अपनी प्रेम भावना का वह इतना प्रतिकार तो समझती ही है। हाँ धमर के साथ मुझी के मान एवं हास-परिहास को देखकर एक दो मरार्थवादी धालोचकों ने वह चारणा बहण की है कि यदि तो मुझी धमर के हाथों में कठ्युतनी है किन्तु सामाजिक विवक्षताओं के कारण वह दबी-दबी-सी रहती है, प्रेम की किसी महती प्रेरणा के कारण नहीं। हमारे विचार से यह ठीक है कि मुझी धमर के प्रेम की कठ्युतनी है परन्तु इसका कारण यह है कि धमर के बड़ मान सब के प्रभावस्वरूप वह बीरे-बीरे उसे प्रतिकार का नहीं प्रपितु धर्मता का विषय समझती जाती है मान एवं हास-परिहास वह इसलिये करती है कि धमर उसे भाभी क्वत्ता है सामाजिक विवक्षता नाम की कोई वस्तु उसके चरित के इस मोड़ में नहीं है। धारम-सम्मान की पहुँसे जैसी भावना ही अब भी उसमें विद्यमान है किन्तु उसने चिन्मत्ता का कवच धारण कर रखा है। फिर भी अब प्रयास ध्यंस्य कसता है कि वह धमर से सवाई क्यों नहीं कर लेती तो वह विद्रोह-सी करती हुई तर्काक से उत्तर देती है "अब मेरे मन में वह बात या आयवी तो कोई रोक भी न सकेगा।" यदि उसका प्रेम वातना पर प्रामित्त होता तो सम्भवतः वह

इतना निस्संकोच उत्तर न दे पाती) अपनी प्रेम का सम्पूर्ण चित्र उसके सम्पूर्ण यथार्थ मानवधर्मों के साथ उसके सम्मुख सर्वदा उपस्थित रहता है। अपने पत्नी-पुत्र के क्षयिक-ले क्षयिम मसे में जब धमर उसके प्रति उदासीनता प्रकट करता है तो वह सब कुछ भापतोस कर कहती है "तुम्हारे मन की बात समझ रही हूँ लेकिन तुम्हें प्रेम हो गया है। इस प्रकार मुन्नी का प्रेम बाह्यलापरिहृत ईर्ष्याविहीन एवं सेवा भादि जीवन के उच्च मूल्यों पर आधारित है। इसके बिना उसका जीवन एक शुष्क रेतीला बहाइ बन जाता है। पति की मृत्यु के उपरान्त वह धमर से कहती है "धम मरते भी न बना जिसके लिए मरती"—धीर धमर के रूप में उसे यही आधार मिला है, इससे प्रसिक्त नहीं। प्रेम की इस उत्सर्व-भावना के प्रतिरिक्त जीवन के इसी मोड़ पर आत्म-सम्मान एवं आत्मोत्थान भादि की विवेकताधर्मों का समाहार भी उसके चरित्र में हुआ है। व्यक्ति में परिवर्तन मदि उत्पाद-विद्या की धीर नहीं होता तो मुन्नी के पशुसार वह एक हीन कोठि का जीवन हाता है जिसमें मनुष्य को केवल अपने प्राणों की ही चिन्ता रहती है। वह कहती है 'जान उन्हें प्रिय होती है जो नीच हैं धीर नीच बने रहना चाहते हैं। जिसमें साब है, जो किसी के नामसे छिर नहीं नीचा करना चाहता वह मर भी सकता है। इसके साथ ही एक स्थापक सहानुभूति की भी उसके चरित्र में प्रथम मिला है। नाम में स्त्री से भी उसका विरोध नहीं है। मूढ़ नीचरी जब पिछली अवस्था में एकदम ही उदास पीना छोड़ देता है तो मुन्नी चिन्वित हो जाती है धीर कहती है 'जुम उनके (धमर के) कहने में न घामो बदा। धम छोड़ना तुम्हें पबनुम करेगा। कहीं बेह में दरद होने मसे।" इस प्रकार की सहानुभूति उस पुण्य से ही नहीं बौब भर से ही नहीं अपितु समस्त कृषती हुई मानव-समृति के साथ है। यही कारण है कि उसकी जिजासा समान एक देस की समस्याओं के प्रति बढ़ती जाती है धीर जितनी ही अधिक पहचान होती है उतना ही अधिक उसका व्यक्तित्व विद्युम्भ होकर पुम्भ एवं धोपण के प्रति हृदय भर घठता है। वह सोचती है 'हाकिम गंसार पर राज करता है तो क्या रैयत का दुःस-दर्ब म सुनेबा ? धीर जब इत ज्ञान का उत्तर उसे प्राप्त बकायामक ही मिलता है तो वह अबत पढ़ती है धीर उस उबाम में सभी को आन्विमय देचना चाहती है। धमर को जब मुकमों के ही हेतु पुलिन बकफकर से जा रही होती है तो मुन्नी से नहीं रहा जाता वह चिन्ता उटती है 'रतने जाने बड़े पाकटे गया हो ? उतार मो मोटर के।" घोषण के प्रति विद्रोह का यह धीमा स्वर ही धाये बनकर उसकी देवमार्गि की भावना में प्राण भरता रहता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मुन्नी के चरित्र के इस दूसरे मोड़ पर समभाव प्रेम त्याग सेवा धारम-सम्मान धारमोत्थान व्यापक सहानुभूति एवं किसी सीमा तक विद्रोह धारि विशेषताओं का प्राधान्य है। ये विशेषताएँ उसके चरित्र के पहले मोड़ की ही विशेषताओं का परिस्फुटि-सापेक्ष विकास हैं। एक धारमिक तथा धारमोत्थान स्फुरण नहीं। वहाँ का सतीत्व यहाँ पावन प्रेम की घोर मुड़ बना है। धारम-सम्मान विद्रोह की घोर उन्मुख हो बना है। जीवन की विद्रोह का त्याग बलिदान एवं सेवा की पहचान हो गई है। वहाँ का वास्तव्य यहाँ के समभाव में परिणत हो गया है और वहाँ की समाज-संघर्ष की भावना धारमोत्थान एवं व्यापक सहानुभूतिमयी सक्रियता की घोर प्रसरण हो गई है। तथापि इन सभी विशेषताओं में कोई निश्चित विभाजक रेखा नहीं खींची जा सकती। ये सभी एक-दूसरी की परस्पर-पूर्ति हैं क्योंकि मानवता का तन्तु इन सब में प्रमुख रूप से अनुस्यूत है।

मुन्नी के चरित्र का तीसरा मोड़ महत्त्व की शुष्क व्यवहार से धारम्य होता है और उसकी सम्पूर्ण जिन-बाधा तक के विकास को समेट लेता है। इसे मुन्नी का दार्शनिक रूप कहा जा सकता है। इस रूप में उसके चरित्र की सर्वप्रमुख विशेषता है सेवाभक्ति और धारम्य के प्रति प्रसन्नता तथा त्याग की भरपूर मान लेनीय समस्पर्धों के प्रति धारम्य सत्यनिष्ठता एवं त्याग तथा सेवा धारि धारम्य धारमिक विशेषताओं का चित्रण इसी की परिपूर्ति के हेतु हुआ है। निर्गत समाज के सम्पर्क में धारम्य तथा धारम्य से महती प्रेरणा लेकर मुन्नी सेवाभक्ति की घोर उन्मुख होती है। सामाजिक समस्पर्धों को धर वह पूर्णरूपेण समझती है। वह कहती है "जिसे देखो गरीबों का ही रक्त बहने को तैयार है। हम जमा करने को नहीं माँगते न हमें भोज-विज्ञान की इच्छा है। लेकिन पेट की रोटी और तन ढाँपने को कपड़ा तो चाहिये।" इस समस्या का सुमध्यम का सर्वप्रथम साधन उसके पास नहीं है कि धरने वह को धर स्तर तक विकसित किया जाए जहाँ पहुँचकर वह निरीह एवं उदासीन भाव से धारम्य को सहन न कर सके। इसीलिये मुन्नी का वह यहाँ प्रत्यक्ष जागृत है। जिन में जीवितारित तक की डाँट-उपद्रव को सहन न करती हुई वह कहती है "हाँ रागी बनकर धारि हैं। किसी की चारु करणा मरु काम नहीं है। बलमनसी से कहोनी तो मैं तुम्हारे भती के घर में भद्रू सपा दूनी विविन मार वा भय दिखाकर तुम मुझसे राजा के घर में भी भद्रू नहीं सबबा सकती।" "तना समझ रखो। मुन्नी समझती है कि इस व्यापक धारम-सम्मान के साथ ही व्यक्ति के चरित्र में त्याग तथा सेवा की

बरिमा भी होनी चाहिये। सुखदा से वह कापवास में कहती है मगवान् तुम्हारा मतोरब पूरा करें बहुमी। यही मसतप तपाने वाली रानियाँ सब तपस्या करने लगीं वो मगवान् बरवान भी बरयो ही रेंगे।

वैशम्पति वो ऐसा भुक्त है जिसका जमार परिस्विति-सावेज होता है। जिस प्रकार विद्याल सागर की तरंग बवार माटे के उपरान्त पुन धबिधुग्ध एवं प्रप्यत-भी मपती है उसी प्रकार वैशम्पति मपवा समाजमक्ति की लहर भी सामयिक हुमा करती है। मय मुन्नी भी कारावाह के जीवन के उपरान्त पुन धपने व्यक्तितगत जीवन में क्करम रखती है किन्तु वहाँ वह जीवन को धीर भी धबिक मुनसान एवं बेचनामय पाती है। मयर को मपनी परनी सुखदा मिस गई है मुन्नी मय उसक लिए सराहनीम मते ही हो साधारिक मपवा साम्यत्व-जीवन में महत्वहीन है—पहले वह उसे 'मामी' कहवा वा अब 'मुन्नी बहन' कहवा है तरह-तरह क नाच मचाकर जैसे उससे मसग हो गया है। मुन्नी को वो सराहना से कही धबिक धास्मीयता की धावस्यकता है किन्तु मय वही म्माकार उसे धिक्कता हुमा धिजाई पड़वा है वो वह मपने मपको बेचना की महन रानिसा में जीवन-सागर के किमारे पर धामोय धकी हुई जाती है—निस्सहाम निवट धकेमी "ममय विरल-माव से धिर मुकामे धकी है।" पर नहीं यही से मुन्नी के जीवन में एक बीबा धीर सर्मभेष्ठ मोड़ या धावा है धिक्की धोर इधित करके ही प्रेमचन्द ने धोड़ दिया है धीर वही धसकी चरित्र-ध्वति है। कौन कहवा है कि मुन्नी धकमी है धीर वो पही रतकी मंडिर पर धाकर बैठ मया वा वह धाकधपामी होने क नाठे उसकी कुसिहया के पानी से कहीं बहुत दूर उड़कर मला मया है ? नहीं वह धकमी नहीं है जीवन की स्मृतिपाँ उसकी धपनी है परनी की मय उसकी धपनी है—वेदना उसकी धपनी है। जीवन का धसने कौन सा धप नहीं देवा ? पत्नी रूप में धाठौरिक मुन भोमा है, विमवा रूप में पबिध प्रेम के धर्पन किये हैं बन्दिनी रूप में समाज को परसा है—ऐसा है ही मया वो रतने नहीं देवा है। काई मपना ? नहीं धब सभी उसके धपने हैं। उसकी बड़कन मय धपनेपन की प्रत्येक धावाह पर साज बन जाया करेपी।

धनिया

होरी कितान की पत्नी धनिया प्रेमचन्द के रलिन-धमाय विपयक लच्छूर्ण साम्य-धमन की मूक संवेधना है जिमवा प्रेमचन्द-नाहित्य में धाधोरान्त धामो रूप होता रहा है धीर वो निजी सनीयता तीव्रता विधुग्धता एवं धावकता

की सर्वोत्कृष्टता के कारण धमर हो गई है। उसके चरित्र में ऐसा कुछ है जो सुमित्रा बिसागो एवं मुन्नी यादों में बिखाया तो पड़ा है पर धम 'गोदान' में एकात्मित होकर बोल ही नहीं उठा यद्यपि धनुष्य मार्ग की विकास रेखाओं पर धमसर भी हुआ है। दम इष्टि से यनिया प्रेमचन्द की प्रथितीय चरित्र सजना है।

यनिया बीबन में सब कुछ पड़े सजनी है पर धमसम नहीं। धम्याय के प्रति बिबोह का स्वर ही उसके चरित्र की महत्त्वपूर्ण विशेषता है। धम-नीच पर मायारित धाम की जिस सामाजिक व्यवस्था के प्रभावस्वरूप 'प्रेमायन' की बिलासी बटखती ही रही 'पूख की राठ' की मुन्नी धमानी ही रह गई, 'तंयाम' (माटक) की गजेसबरी बहलती रही और 'कमसूक्ति' की मुन्नी भी विविध धाधार के लिए कलकती ही रही—यनिया उसके प्रति यनायस्वक एवं तथा कथित सहनशीलता की ज्येता कर याधिरी सस तक बूमखी रही है। बिबोह का पूर्वाग्रह लेकर तो वह कभी नहीं चली किन्तु उसके धमस्तल में एक महत्त प्रसलीय विद्यमान है जो स्वतः ही उबल पड़ा है। 'धमने बिबाहित बीबन के इन बीस बयों में उसे धमखी ठरह धनुष्य हो गया या कि बाहे किठनी ही कठर-भ्योत करो किठना ही वेर-तन काठो बाहे एक-एक कीड़ी की योत से पहना धमर धमान बेबाक होना मुस्किल है। ठिर भी वह हार न मानती थी और इस विषय पर स्त्री-मुस्य में धामे दिन उपाय बिबा चरता था। उमखी धः सस्तागा मे धम केवल तीस बिब्या है, तीस सडके बचपन ही मे मर गए। उसका मन धाम मो कहना था धमर उनकी बवाबाक होती ठा के बच बाते पर वह एक धमे की बवा भी न मयबा लकी थी। उसकी ही उध धमी बवा थी। धलोतवा ही सभ ठा वा पर गारे बाता पक गए य बेहरे पर भूरिया पड़ गई थी। सारी देह रग गई यो वह मुन्दर बेहूपा रंग ठाबसा हो गया या धोर धाँसों मे भी कम गूमने मगा था। पेट की बिब्या ही के कारण तो ? कभी यो बीबन का मुक न मिला। रग बिबस्वाधी बीर्णवस्था मे उसके धामसम्मान की सवासीलता का रूप है बिबा था। जिस बूटखी में पट को रोठियां भी न मिके उनके लिए धतनी सुधायक बयों ? इस परिस्थिति में उनका मन बचकर बिबोह किया करता था धोर धो-बार पुडकियां जा भेने पर ही उसे यनार्थ का ज्ञान होता था। —प्रेमचन्द के सखों में यह है यनिया क मन का धमशीय। यही धमशीय बीरे-बीरे उनके चरित्र में यमाक-व्यवस्था के प्रति बिगुम्पुा का रूप धारण कर लेता है। जमे त्रिगुम्पुा है जम यमाक व्यवस्था से यिममें धाधिक याध्यां विद्यमान है किन्तु जे पुरा है जम सनाक

स भी धन्य कहियों एक दरम्पराओं के कारण मनुष्य की अस्तित्व गरिमा को कुचल डालता है अपने कठोर नियन्त्रण में उसे विकसित होने का अवसर तक नहीं देता—जो समाज व्यक्ति के प्रति विनित्त होने का दम तो भरता है किन्तु प्रत्येक इकाई की परबाह नहीं करता उसे समझने का कष्ट तक नहीं करता । कुल प्रतिष्ठा अर्थ-नीच एवं बाति भेद की प्राचीनों को जो समाज रक्त की नीच पर खड़ी करना चाहता है उसका तो आधार ही सहारात्मक है । सबिन निर्माण का जब तो घाहम्बरों से रहित होता है । अतः अनिया महसूस करती है कि परम्परा की रक्षा से प्रथम एक मानव की रक्षा की स्थान मिलना चाहिए । वह तीव्र चारों में कहती है 'हमका कुल प्रतिष्ठा इतनी प्यारी नहीं है महाराज कि उसके पीछे एक भीष की हत्या कर डालत । व्याहृता न सही पर उसकी बाह तो पकड़ी है मेरे कंठे में ही । किस मूढ़ से निकाम देती । बही काम बड़े-बड़े करते हैं मूरा उनसे कोई नहीं बोलता उन्हें बलक ही नहीं मगता । बही काम छोटे घादमी करते हैं तो उनकी भरजाब बियड जाती है नाक बट जाती है । बड़े धारमियों को अपनी नाक दूसरों की जान से प्यारी होती हये तो अपनी नाक इतनी प्यारी नहीं ।' अनिया को ऐम समाज से भी गफुरत है जिसम गुप्त रूपेण पापाचार को प्रोत्साहित किया जाता है किन्तु पापी से तीव्र बुरा की जाती है और इतना ही नहीं बरि कोई सठा हुषा हाथ स्वयं भुक्कर विरे हुए को घामना चाहता है तो उसकी लपाकबिठ पुष्टि के हेतु विविध दण्डों प्रता रणार्थों एवं प्रामदिकतों का विधान किया जाता है जो उसकी भी कमर तोड़ डालते हैं । समाज को नियुव का प्रबिचार है किन्तु बड़े नियुव परिस्मिति धापेण निष्पक्ष एवं निरीह होना चाहिए विभिन्न स्थापों पर आधारित मही । जयम पापों के निराकरण की लमता होनी चाहिए पापी के तिरस्कार भाव की मही । अनिया बेखती है कि दम हलि से ता मारी के घौर भी प्रथिक परदलित होने की सम्भावना है । पुरप किसी की बाह पकड़कर बासना मृष्टि के उपरान्त मंदू में कासिक सपाकर घाय मकता है पर मारी ? घोर चिर ऐमा समाज ?

“ दम कल्पना से ही अंधे अनिया तिहर उठती है घौर घनामाम हा उसक हाथ मृनिया एवं छिन्मिया को घाय सेने के हेत उठ जाते हैं—“बही माधवी जिमने होरी के निवा किसी पुरप को घाग भरकर दसा भी न पा इन पापिष्ठा का मगे सपायें उसमें घायू पोष रही की घौर उसके प्रसू हृदय को घपने कोमल दाम्यों में घालत कर रही थी अंगे को चिहिया घपने बन्ध को परो में दिनाये बैठी हो ।” बन्द ममी को मुता-मुताकर कहती है मुझ में दाना कहा जरीबाना इमसिये लिया जा रहा है कि मैंने अपनी बहू को क्या

घपने पर मैं क्या। क्यों उसे घर से निकालकर साइकल की डिपॉजिट नहीं बना दिया। यही ग्याय है एं ? मैं न एक दाना घनाब हूँपी न एक कौड़ी डाँड़ हूँ नहीं रहना है बिगादरी में। बिरादरी में रहकर हमारी मुकुट न हो जायेगी। भव भी घपने पसीने की कमाई काठे है ठव भी घपने पसीने की कमाई खारोपे।”

बनिया का बस चले तो वह परीबों का रक्त बूसन वाले बूसखोर सरकापि कर्म बारिबों एवं सामाजिक टेकेदारों को गोपी से उड़ा दे। जिस सूठी इन्वत की रसा के हेतु निम्नवर्गीय हूपक बूसखोरी को बझबा बेटे हैं उसे भी वह हेव समझती है। बाव उस नरीब की मरी है तलापी भी उलो के बर की होने की जा रही है और तिस पर जयका पति है कि मुकना चाहता है। वह बर की इन्वत की रसा के हेतु बारीगा से कहती है “हाँ दे दिया। घपनी नाय भी बार डानी फिर ? बिटी बूसरे का जालबद तो नहीं माय। तुम्हारे तहकी अत मे यही निष्कलता है तो यही निष्का। पहना तो मेरे ह्याय में हूपकडिमा। बेख निमा तुम्हाए ग्याय और तुम्हारे घबकन की बीड। गरीबों का गला काटना बूनपी बात है। बूब का बूब घोर पानी का पानी करना बूसपी बात”। बनिया का बिडोह पति के घम्याय के प्रति परनी का बिडोह भी है। बीबर उसका घपना बैठा है। साधारण माँ इकलते पुब के मुनाहों पर घाबरण ही दाना कपती है। किन्तु पति-कम मैं अब वह भी घसकन रहता है तो बनिया उसका बीप छुनिबा के माणे नहीं मड़ती। उसकी सुर्मदा को वह पति का घम्याय ही समझती है। घपने पति तक को वह गुना बेंती है “बडा बीर है तो किसी मर्द से नड। जिसकी बीड पकड़कर लामा है उसे मारकर बहादुर न कहलायेवा। तु सभ भडा होगा मैं इसे रोटी-कपडा बैठा हूँ। घाब से घपना बर संजाल। बेख तो इसी नाँब में तेरी छापी पर मूल बलकर रखती हूँ कि नहीं घोर इससे घम्याय पाउंपी पहननी। इच्छा हो बेख ले”। बनिया का बिडोह उक्त पारिवेशिक घम्याय के प्रति भी है जिसमें एक माई बूसरे के प्राणों का बाइक हो घोर बूसरा बुपबाप पढ़ने की मताओं को गिरोबाय मागता जावे। उसके अनुसार घाब का बुन तो जीने का अधिकार ही तमी बैठा है जब ई” का जबाब फुल से नहीं पत्पर से दिया जाय। इसके बिना घारम-मम्माम की रसा घम्याय नहीं है। जो बेबर उसके पति के शत्रु है वह उन्हें कभी क्षमा नहीं कर सकती। पति से कहती है वह “मैंने तुमसे ती बार हजार बार बड बिबा मेरे मूँह पर जाइयों का बपान न किया करो उनका नाम मुनकर मेरी बैह में घाय लग जाती है। घाप नाँब बेखने घाबा उड़ी के पाँव में मैडवी मगी हुई भी गम्याय बावें बीने ? अलन हो रही होवी कि इसके बर नाम मागई। छती पटी

बाती होती' ; पुनः एक के अन्वय को अनिया विस्मृत नहीं कर पाती । 'एक दिन होरी ने मोरर के पास दो-तीन दिन के भियु जाने का प्रस्ताव किया । मगर अनिया अभी तक मोरर के कठोर शब्द न भुली थी । वह मोरर से एक पैसा भी न लेना चाहती थी । —सद्योपत यही है अनिया का विशीही रूप । जैसा कि हम पहले कह चुके हैं इसके स्वरूप की खोज महाग्रहों में नहीं करनी चाहिये । बस्तुतः अनिया का विशीह मार्क्स धारि से घनिष्ठ अनुप्रतिष्ठ न होकर बहुत कुछ मानवतावादी है । उसके चरित्र में इसका मूल है बुद्धिष्ठ धात्म सम्मान जिसने निरन्तर अपनी धनिध्वनि एवं कार्यान्विति का प्रवसर देता है । यही कारण है कि अनिया की प्रवसा करके कोई भी मत्तलव ऐंठ ना सकता है । मोसा द्वारा 'ऐसी लदमी ऐसी सलीकेदार' धादि विधेयणों को मुनकर वह ठुमी नहीं समाती । अन्वय के प्रति अनिया की सम्पूर्ण विशीह भावना में धात्म-सम्मान की तीव्र बूझ निहित है । जीवन सक्नों में धन्तव्य उसकी कमर तोड़ जाती है पर वह अन्वय के धामे नहीं झुकी—यद्यपि यह भी मत्त है कि अन्वय उसकी प्राण-व्यक्ति पर धाविरी हम तक बोट करता रहा है । अनिया ने हार नहीं मानी पर हमका यह तात्पर्य नहीं कि उसने जीवन में झुक्ना सीखा ही नहीं । उसका कहना है 'हैट का बबाब बाहे पत्तर हो' लेकिन समाज का बबाब तो नाली नहीं है ।' उसने झुक्ना बाहा है लेकिन सम्मान सहित अन्वय प्रेयधम्य के सक्नों में 'स्त्री-सुक्य वीनों बंसे समाज को चुनौती दे रहे हैं कि कैं कोई उनका क्या कर लेता है' धोर सपर 'समाज की रिता देवा कि उसकी मर्यादा तोड़ने वाले मुख की तीर नहीं खो सकते । इन दोनों के मर्द में प्रवचन यह भी विद्याना बाहते हैं कि जब तक समाज को व्यक्ति का धीर व्यक्ति को समाज का ध्यान नहीं है, तब तक समस्या का कोई भी मुनिविष्ठ सीखा समाधान सम्भव नहीं है ।

अनिया के चरित्र की दुगरी बहुत विधेयता यह है कि जहाँ यह बाह्य दृष्टि से अपने पति की पीड़ की हठी है वहाँ धात्मरिक्त दृष्टि में उसकी कुचली हुई धात्मा भी है । कहा ना सकता है कि अनिया होरी के विद्युत्प्र प्रन्तर का उदक है । होरी के व्यक्तित्व की सबसे बड़ी पूंजी—ईमानदारी धरमता एवं कहलवीलता तथा उदात्ता धादि गुण—अनिया ही का ध्यापदार्थिक समाज धारेस एवं मर्यावित कर है । होरी यदि लोपित वर्म का प्रतिनिधित्व करता हुआ दिन धाम कर जीवन के प्रत्येक मोड़ पर समझीता करने को मुक्त जाता है तो अनिया इस लोपित वर्म के धन्तव्य की कान्ति है जो सब कुछ कर सकने की सामर्थ्य रखती हुई भी जीवन की विवगताओं को पराजित नहीं कर

पाती। यही कारण है कि होपे घोर घनिमा के साम्यत्व में एक अनुपम सार्व-जस्य है। पत्नी की दृष्टि से घनिमा होरी की प्रेरणा है सम्पूर्ण है—सर्वस्व है घोर उमे जीवन-सर्वस्व मानकर जन्ती है। इसी से घनिमा के साम्यत्व में सरसता घोर मापुर्ब से घोरप्रोत एक सजीवता विद्यमान है। यह ठीक है कि घनिमा में व्यक्तिगत जीवन में निरलस घनाकों का ही मंह देखा है घोर साम्य की विडम्बनाओं को ही सहा है किन्तु होरी जैसे पति को पाकर जैसे वह सब कुछ विस्मृत कर देना चाहती है। होरी ने उसको पीटा भी है बुरा-भसा भी कहा है किन्तु उसके बीमार होते ही वह नाम का अधिक प्रयत्न नहीं कर सकी है। होपे उसका बहुमुख्य एवं दुर्लभ 'हीरा' है। वह बिना पामे कही बाहर जाने मगता है तो घनिमा कहती है "घरे कुछ रखानी तो कर सो ऐसी पत्नी क्या है?" घोर जब मजाक-मजाक से ही होरी अपनी मनोव्यथा को दबाता हुआ कहता है 'साठे तक पहुँचने की नीव न घाने पायेगी घनिमा ! उसके पहले ही बस बँबे' तो घनिमा की सम्पूर्ण उगारमक अनुभूतियाँ जैसे एक साथ ही झनझना उठती हैं। 'अच्छा रहने से मत घबुध मुह से निकालो। तुमसे कोई अच्छी बात भी नहे तो लकते हो कोधन'—उस क मुह से घनामास ही निकल जाता है। 'होरी चाँदी कन्ने पर रककर बर से निकलता तो घनिमा द्वार पर खड़ी उठे बेर तक बेसती रही। उसके इन निघरा भरे पक्षों ने घनिमा के चोट लामे हुए हृदय में घातकमय कम्पन-सा दास दिया था। वह जैसे अपने मारीत्व से सम्पूर्ण उप घोर बत से अपने पति को घनयदान दे रही थी। उसके घन-करस से जैसे घासीबाँबों का ब्युह-सा निकलकर होरी को अपने घनर द्विपाम लेता था। विपन्नता के इस घबाह सागर में सोहाग ही वह तूल था जिसे पकड़ हुए वह सागर को पार कर रही थी। इसीलिये तो घनिमा सतीत्व को नारी की एकमात्र सम्पदा समझती है। भासा की पत्नी सतीत्व से घन हो जाती है तो घनिमा कहती है भासा को 'घब तो तुम्हाए बर्म यही है कि मंदास से उसका तिर काट सो। घंती ही तो पापोग। काँधी इस घीझानवर से घन्यही है। घोर सब ही होरी को घन्तिम घाँस लेते देखकर घनिमा को लगता है जैसे उसके जीवन घोर सतीत्व का घापार लिखकता जा रहा है। 'घब वह दिन को घोर कियता कठोर करे ? अपने पति के प्रति उसका जो कर्म है क्या वह उसको बताना पड़ेगा ? जो जीवन का संघी था उसके नाम को रोना ही क्या उसका बर्म है ? घोर है घाबाज घाबी—मोशन करा हो घब बही समय है। घनिमा बल मति उठी घाय जो मुतली बेची थी उसक बीच घाने पंसे मारी घोर

पति के टण्डे हाथ में रखकर सामने खड़े बातावीन से बोली— 'महाराज पर में न पाप है न बलिदान न वैसा । यही पैसे हैं यही इतका गोदान है । धीरे पछाड़ जाकर फिर पड़ी । जब बीबन-साथी ही मही रहा तो बनिया भी रह कर क्या करे ? किसके लिए बिये ? बीबन मर उसने पति का साथ दिया है मृत्यु को प्रत्यक्ष देख कर वह कंस पीछे हट जाय ।—यही है बनिया का धमर पालीख । वह मसे ही धमपद पैबारिन है किन्तु साक पड़ी-सित्तियों को पालीख का पाठ पढा सख्ती है ।

गृहिणी धमदा गृहस्थितन रूप में भी बनिया का चरित्र महत्त्वपूर्ण ढंग से सामीप्य बीबन की घाबसं स्वाभाविकता का प्रतिनिधित्व करता है । इस रूप में उसकी सर्वप्रथम विशेषता है सहनशीलता । धम्याय के प्रति वह जिसनी ही पसहनशील है साहस्य विचरताओं को वह उतने ही धैर्य से भेसती भी है । वह पर की साहसिक धम्य है किन्तु होरी के धम्या में 'इम साहित्यन मे गोबर की मां की जो दुमति हुई है वह मैं ही जानता हूँ । बेचारी धमनी देव यानियों के कटे-पुराने कपड़े पहनकर दिन काटती थी कुछ भुखी सो रही होगी लेकिन बहुओं के लिए पलवान तक का ध्यान रखती थी । धमनी देह पर पहने के नाम कपडा धावा भी न था देवयानियों के लिए दो-दो चार-चार पहने बनवा बिये ।' होरी के साहस्यों की कबी धमन की कि उसकी धरबानी हार में काम करने क्यों नहीं जाती । धाव उसत धमयोद्धा कर मेने धर भी होरी का बगु धतया तो बनिया से यही कहता— 'धर बैठे, धर बैठने वाला भी कोई धाहिए कि नहीं । मेना-मेना धरना उठाना ममासना-सहेजना यह कोन करे । किन्तु धाव तो बनिया को धर से बाहर रोतों में भी काम करना पड़ता है मखपूरी पर बीना पड़ता है । धनिया धीर तीनों मकधियां ठग के कट्टे भिये गीली नादियों न लखरय कीकड़ में सनी हुई पाती है धीर धट्ट पटक कर धन धारने ही लपती है कि बातावीन की टांग धर पर सवार हो जाती है गृहस्थी के लक्षामन के हेतु यह भी करता पड़ता है धनिया को । धर से बाहर यह सक्रियता भी बनिया के गृहिणी रूप की विशेषता है । तिम पर भी जब होरी का हाव धतबाने ही उसके साथ धम्याय कर बैठना है तो वह रोती है धीर माधवी है— 'म धर में उसने धाकर क्या नहीं मेना धिम-धिम तरह पेट तन नहीं काग धिम तरह एक-एक सत को धरनी किस तरह एक-एक पैसा धागा को ठग पीचा किस तरह धर मर को धिलाकर धाप पानी पीकर सो रही धीर धाव धन मध बलिदानों का यह पुरस्कार ।' रमाय भी इस प्रकार धनिया के साहस्य रूप की विशेषता है । संघर्षों के धनधरत प्रहारों ने प्रताडित ध्यक्ति

प्रायः ईस्वरोन्मुखी हुमा करते हैं। दृष्टिहीन-रूप में बनिया भी नास्तिक नहीं है। बिना यह कहे कि 'मगवान् बैठे यह सब भग्याय देस रहे हैं और उनकी रजा को नहीं रोकते। जब और द्रोपदी की रजा करने संकुष्ठ से पीड़े का प्रायश्चित्त भी मैं छोड़े हुए हैं वह कैसे सम्योप धारण कर सकती है। साथ ही बनिया एक प्रामीण दृष्टिहीन की भाँति कुट्टक परम्परागत धार्मिक-मुष्क धर्मविवेकाओं में भी भास्वा रखती है। वह भाकास की धोर देखकर बोसती है—'गाम के प्राते का मानन्व तो बब है कि उसका पीरा भी मन्वा हो। मगवान् के मन की बात है। वह गाय को सात परतों के धन्वर सिपाकर रक्षना चाहती है उसे डर है कि किसी की दृष्टि न लम जाये। स्वयं पत्नी उसने कुछ बुझा नहीं किन्तु बाताबीन को कहती है 'भरे नहीं महाराज इतना डूब कहीं बुझिया तो हो गई है। फिर महीं रातिब कहीं बरा है। इसके प्रतिरिक्त दृष्टिहीन बनिया की एक धन्व विधेयता भी है। धारम प्रथवा की स्वामाधिक दम्बा के होते हुए भी वह धातिम्य-सत्कार में निस्वास रखती है। इस दृष्टि से उसका मार्गस्वय रूप स्वार्थ पर धाभित एवं संकुचित नहीं है। वह पोकर को समझती है 'भाबमी धार पर बेटा है उसके लिए घाट-बाट तो बान नहीं बी अर से मये सुनसुनाने। कुछ तो मनमंसी चीखो।

धनिया के चरित्र का एक असाधारण एवं धर्मसंयत्नीम मोचनिक पक्ष भी है—यह है उसकी मानवीय एवं व्यापक सहानुभूति। साधारण पत्नी जहाँ निष्ठी धने-सम्पत्तियों को भी दूर-दूर से ही देखना चाहती है वहीं धनिया के घर में तो उन धाम्य प्रवृत्तियों के लिए भी प्रचुर स्थान है जिन्हें समाज पति तारों की सजा देता है। सुनिया एवं सिनिया के प्रति उनका व्यवहार इसी अक्षामान्य उदारता का परिचायक है। विधवा सुनिया को उसके पुत्र पोकर द्वारा बर्म रह जाता है। धनिया इस धार्मिकहीनता को अपने घर धारि देखकर पहले तो अक्षेपित हो जाती है किन्तु परिस्थिति पर ठबे मन से विचार करने पर वह होरी से इतना ही नहीं कहती 'बचो तुम्हें मेरी चीह उस पर हाम न उठना वह तो धाम ही रो रही है। अपितु सुनिया का विवाहित बहू की भाँति रखती है और जब सुनिया का पिता उसे निकाम देने को कहता है तो धनिया पत्नर की सकीर बोलती हुई कहती है 'तो महतो मेरी भी सुन लो। जो बात तुम चाहते हो वह नहीं होयी थी जमम न होयी। सुनिया हमारी धाम के माध है। तुम बर्म ही तो म जाने को कहते हो मे धामो-धमर इससे तुम्हारी कनी हुई नाक बुझती हो तो जोड़ लो पुरकों की धावरु बचती हो तो बजा लो। सुनिया से कुपई जकर हुई। जिन दिन उसने मेरे घर

प्रेमबन्ध के विच्छिन्न माटी-मात्रों का चरित्र-चित्रण

में पाँव रखा मैं मरुद लेकर मारने लगी थी लेकिन जब उसकी घाँसों में भर भर मौजूद होने लगे तो मुझे उस पर बयां आ गयी। तुम सब बूढ़े हो चले मरुतो। पर भाव भी तुम्हें सपनाई की भुल सवार है फिर वह तो घामी बरबी है। घोर धनिया मरुतो से ही नहीं समाज भर से टक्कर लेती है। मुनिया की रसा के हेतु। ऐसा ही व्यवहार बसका सिद्धिया के प्रति है। मुनिया तो जसा उसके बेटे की कुछ समझती थी। परन्तु सिद्धिया चमारिल से तो मानबटा के प्रतिरिक्त जसका कोई ऐसा माता भी नहीं है। बातावीन के बेटे मातावीन द्वारा जब उसके दर्भे रह जाता है मातावीन उसे ठोकर मार देता है घोर चमारों की बिराबरी तक जब उसका बहिष्कार कर देती है तो बनिया ही है जो उसका हाव नामकर घोर ब्याई होकर बहती है "जयह की कीम कमी है बेटे। दू चत मेरे भर काम भी स्वयं करती है। बसका सहज स्नेहमय मातृरूप जैसे किसी भी पीड़िता को देखकर जयह माता है घोर उसके हाव सहायता के प्रति भी प्रत्यत उठते हैं। यहाँ तक कि वह अपनी उस बैरवानी पुनिया के प्रति भी प्रत्यत सहायुक्तिपूर्वक व्यवहार करने लगती है—जिसके पति ने उसकी नाब को पहार देकर मार डाला था घोर उसकी तथा उसके पति की बौर घबड़ेलना की थी। किसी भी मतमस्तक को मुनिया प्रसन्न नहीं समझती। यह तो था बनिया का व्यापक मातृत्व किन्तु उसका एक निजी मातृरूप है जहाँ वह केवल तीन संतानों की माँ है। इस दृष्टि से धनिया एक सहज बलता एवं त्यागमयी बनती है। मोबर परदेष्ट से भर माता है तो धनिया "उसका फिर अपनी छाती से लगाकर मानो अपने मातृत्व का पुरस्कार पा गयी। उसका हृदय दर्भ से जमड़ा पड़ता था। भाव तो वह पानी है। इन फटे हाल की राती है। कोई उसका मुँह देखे उसकी घाँसों देखे जसका हृदय देखे तो प्रेमबन्ध निपटते हैं "धनिया बैठी रो रही थी जैसे कोई उसके हृदय को घारे से बौर रहा हो। उसका मातृत्व उस भर के समान हो रहा था जिस में धाम नय पर्यं हा घोर सब कुछ भस्म हो गया हो। बँठकर रोने के लिए भी स्थान न बचा हो।" पुत्र तथा बहू के बने जाने पर "धनिया को बार-बार मुझ की याद आती रहती है। बच्चे की माँ तो मुनिया थी पर जसका पालन धनिया ही करती थी बाल्य का यह नया हो उसकी विपत्ति को सुनाता रहा था। जीवन भर धनिया को बच्चों को दौट लगाने हुए किसी ने नहीं सुना हाव उदाते हुए किसी ने नहीं देखा। इतना सब होने पर भी धनिया के बाल्यत्व

घपना मातृत्व की विशेषता यह है कि वह उसके पत्नीत्व का साधन बनकर धाया है। मातृत्व की वृत्तियों को दिल से निकाल फेंकना तो घसम्मन है किन्तु यह सब है कि व्यावहारिक रूप में बनिया ने उस वास्तव्य को बचा डालना ही उचित समझा है जो उसके पत्नीत्व घपना साम्यत्व का के सामरस्य में विघ्न डालता हो। वह पहले पत्नी है फिर बननी है और उसके उपरान्त मातृवी है।

बनिया न चरित्र का एक ऐसा पल भी है जो स्वयं उसकी स्त्रानि का कारण है किन्तु जिस पर उसका कोई बंध भी नहीं है। जीवन की विषयताओं ने उसे इस प्रकार दबोच रखा है कि कई बार उसे बूझने की सहानुभूति पर जीना पड़ता है। घर में जाने का कुछ नहीं है, वह स्वयं तो खाली पेट रह सकती है किन्तु परिवार के घम्य सदस्यों की दशा देखकर घपनी बेचपनी द्वारा उद्घाटनार्थ जाने पर घनाज को भी उसे प्रहृष्ट करना पड़ता है। प्रेमचन्द के कथनों में 'बनिया ने मनाब तो रक सिया पर मन में लम्बित और घपमानित हो रही थी। इसी परिस्थिति का सामना उसे घपनी पुत्री सोना के विवाह में भी करना पड़ता है। पति से शरोप कहती है "साफ-साफ क्यों नहीं बोसते कि नङ्की को बेचने को कहते हो" और उबका बंध बसता तो वह घपनी नङ्की को किसी राजा का लीपती किन्तु यहाँ भी उसे पराभित होना पड़ता है—यही सोचकर सन्तोष करना पड़ता है कि घनमेल प्रायु के मनुष्य के साथ ही सही खाते-पीते घर में जो जा रही है। धार्मिक इष्टि के वह किन्तनी पराधीन है—मरते वन तक वह इस तन्म को मुठमा नहीं बनी।

कुच मिलाकर जीवन के प्रत्येक क्षण में बनिया ने परिस्थितियों से चुमने का भरसक प्रयत्न किया है और स्वकिणत क्षेत्र में वह बनते कहीं ऊपर उठी हुई है। यही कारण है कि धारम से लेकर मन्त तक बेदनाओं से बरे हुए उसके चरित्र में एक प्राणवृत्ता है जो किसी भी बाह्य की सहानुभूति को बरबस चीच देने की सामर्थ्य रखती है। और यहाँ तक उसके चरित्र में चित्रणकता का प्रयत्न है वही भी हमारे विचार उ ऐसी स्वाभाविकता प्रेमचन्द के किन्तनी भी घम्य नारीपान में उपसन्न नहीं होती। एक घपन्त सीमित रोग के भीतर जिस कीवल जिस धनुभूति एव जिस व्यापकता के साथ बनिया की धार्मिक धर्मव्यक्ति हुई है उसकी प्रभावोत्पादकता की इष्टि से हमें यह कहने में तनिक भी संकोच नहीं कि हिन्दी साहित्य की इस घमर-निधि के चित्रण में प्रेमचन्द पुरुषपेणु सफल हुए हैं।

प्रेमचन्द के विद्रिष्ट नारी-पात्रों का चरित्र-चित्रण

गोविन्दी देवी

'योगान की गोविन्दी घोर ध्याप कहानी की प्रियबदा—इन दोनों की मूर्ति प्रेमचन्द ने पाश्चात्य नारी से भारतीय नारी की उत्कृष्टता के निमित्त की है। परन्तु यह स्वामात्रिक ही है कि इनमें उनकी नारी भावना का आदर्श अलग-अलग मरा गया हो। यहाँ हम केवल गोविन्दी देवी को ही लेने क्योंकि उनके चित्रण की रेखाएँ प्रियबदा से अधिक पुष्ट हैं। परन्तु अधिक विवेकवसनीय हैं।

'वह जो बहुर को गाड़ी पहने बहुत यन्त्रीर घोर विचारशील सी है — इन आरम्भिक परिचय से ही सामाज्य हो जाता है कि मिस्टर खन्ना की पत्नी गोविन्दी एक भारतीय महिला हैं। उनके व्यक्तित्व का संघ प्रत्यय भारतीयता का परिचायक है। 'वह अस्वरा म हो पर बपवती घबराय है, मेहुवाँ रंग गुडील मोम बाँहें मुझ पर एक प्रकार की घबराई बियम गर्ब की झलक भी है मानो संसार के व्यवहार और व्यापार को हेय समझती हैं'— इन शब्दों में निर्दिष्ट रूप बग्गा घारम-ममान एवं घनासक्ति घादि विशेषताएँ गोविन्दी की भारतीयता की ही समझावित हैं। बन्धुन गोविन्दी का सम्पूर्ण चरित्र एक आदर्श भारतीय परिदोता दीर्घक के अन्तर्गत सकलित क्रिया वा सकता है। परन्तु प्रति कर्मा भी हा यह माना गया है कि वह अपने को सर्वदा उनके अन्तु रूप बास जिया करती है। प्रति प्रणय की दृष्टि से गोविन्दी भी एक अजित व्यक्तित्व है किन्तु 'यह सब कुछ होने पर भी खन्ना उनके संबंध में गोविन्दी की दृष्टि घोर अपमानिता होकर भी खन्ना की लीजी है। उनके लगेनी रोयेगी पर खेमी उड़ी की। उनके पूषक बीबन की वह बाई बचनना हो नहीं कर सकती। एक बार वह विमुग्ध होकर खन्ना से दूर हो जाने की कल्पना करती भी है परन्तु पुन बर्तव्य-बचनना के साथ मत हा जाती है। भारतीय पटिलीना की सुपरी विशेषता दोनों है उनकी मनोबलीमना तथा एक मौलित सामाजिक दाजरे के भीतर ही रहना। सो गोविन्दो भी पाश्चात्य मध्यता से रबी हुई मामती की भाँति तमात्र भर की पूषककड़ एवं निर्बाध रूप घ पुषक तमात्र तथा ममा-मोमादृष्टियों की बीबानी नहीं है। हाँ जहाँ उसे बीबन के मय-मय को उपदेय पर्व सुना देती है वहाँ वह प्रबल्य बीबन की मार्सकता के देतु कुछ घइए करम के उदेय मे जाती है। मेहुता की बन्धुता वह रानीमिदे मुनेने जाना है कि उनमें नारी के प्रति बीबन भार का संबंध होता है। आदर्श

भारतीय नारी के मन में कभी भी यह भावना नहीं उठती कि वह पुरुष की दबल है और वस्तुतः पुरुष से भय है। वह उसे अपने अधिकारों की सक्रिय भाँप करती चाहिये। मेहता जब पुरुष को 'मेवता' और 'अन्धकार' तथा नारी को 'बेवता' और 'अज्ञान' मान कर बसते हैं तो गोविन्दी इसे नारी और पुरुष के बीच की सार्थ मागतरी हुई कहती है "भूल जाइये कि नारी खेच है सारी जिम्मेदारी उसी पर है, अन्ध पुरुष है और उसी पर गृहस्त्री का सारा भार है। नारी में सेवा और संयम और कर्तव्य बड़ी पैदा कर सकता है। अगर उस में इन बातों का अभाव है तो नारी में भी अभाव रहेगा।" यह भावना और कोई नहीं भारतीय 'मर्दानगी' की व्याख्या मात्र है। भारतीय नारी भोग विनास को न तो जीवन का साधन और न साध्य ही मानती है। अर्थ-व्यवस्था भी उसकी दृष्टि में जीवन का अत्यन्त नीच तत्व होता है। उसके लिए तो प्रेम और कर्तव्य साधन तथा आत्मिक धार्मिक जीवन-मध्य होता है। पारिवारिक रूप में आर्थिक दृष्टि से पूर्णरूपेण सम्पन्न होने पर भी गोविन्दी प्रति प्रेम के लिए उस लुपिता की भाँति लजसती रहती है जो तुपाद्यान्ति के हेतु सागर-तट पर पहुँच गई हो। ऐसी दसा में वह बर्न अथवा कर्तव्य का अन्वय लेकर ही जीवन से समझौता किये रहती है। प्रेमचन्द के कर्णों में 'विनास के इस आरे सागर में वह व्याधी पड़ी रहती है' बर्णों का ज्ञान-मानन और गृहस्त्री के छोटे-मोटे काम ही उसके लिए धर्म कुछ है। वह जगमें इतनी व्यस्त रहती है कि भोग की ओर उसका ध्यान नहीं जाता।" आदर्श भारतीय नारी के सम्मुख जब परिस्थितिक बह समस्या या सज़ी होती है कि मैं केवल माता ही तो नहीं हूँ नारी भी तो हूँ" तो अस्वा-विचार से वह इसी निष्कर्ष पर पहुँचती है कि "नारी केवल माता है और उसके उपरांत वह जो कुछ है वह सब मातृत्व का उपक्रम मात्र है। गोविन्दी के तो जीने का आधार ही उसकी उत्सव भावना है। अपनी सत्याग के प्रति अटूट कर्तव्य-बन्धनों के कारण ही वह अपना अस्तित्व बनाने रहती है। भारतीय नारी सुसंरक्षित तथा संस्कार प्रभाव में भी विश्वास रहती है। गोविन्दी का भी यह प्रबल विश्वास है। जल्दा जब ठीक मार्ग बर धा जाता है तब वह उनसे कहती है "अब तुम्हारे लड़के पावनी बनें। एक आदर्श भारतीय गृहहिणी ईश्वर की अथवा कर्म-सिद्धांत में विश्वास रहती हुई त्याग तथा सहनशीलता को कभी भी हाथ से जाने नहीं देती क्योंकि विपत्तियों को वह तप का अन्वय समझती है। गोविन्दी देवी शक्त की साक्षात् प्रतिमा है। वह पति से कहती है 'सिद्धि प्राप्त करने में अन्ध कोई अन्ध भी हो तो उसका स्वागत करो। तुम इसे विपत्ति समझने ही क्यों

हो ? क्यों नहीं समझते तुम्हें धन्याय से कहने का यह अवसर मिला है । मेरे विचार में तो पीढ़क होने से पीड़ित होना कहीं घण्ट है । अपनी त्यागवृत्ति के कारण ही वह पति के दीवाने को भी विरोध महत्व नहीं देती वन के त्याग हाथ धात्वा की प्राप्ति के लोरे को वह मर्हंगा नहीं समझती । एक व्यापक सद्दानुवृत्ति भी भारतीय सुपुहिणी की विशेषता होती है । गोविन्दी भी इससे वंचित नहीं है । माकठी से उसे बुरा नहीं प्रसित सुपारोन्मुखी सद्दानुवृत्ति है । मकडूरो की समस्वा का वह मेहता के इन्हीं सखो में समर्जन करती है जो धारमी अपनी जान अपाते है उनका हक इन लोगों से क्या है की केवल क्या लपाते है । इसके अतिरिक्त प्रतीक्षा एवं क्षमा भी भारतीय नारी की निजी विशेषता है । गोविन्दी पति के वह कहने पर "हाँ प्रिये हम तबाह हो गये जिस सान्त्वना के उपकार से उसे क्षमा कर देती है वह उसकी इसी उदात्ता का ही लहज स्वल्प है ।

सद्वेनव मेहता ही के सखों में कहा जा सकता है कि गोविन्दी देवी 'एक भक्तपति की पत्नी है पर विनाश को तुम्हें समझतो है' जो ज्येदा और धमा-वर सहकर भी अपने कर्तव्य से विचलित नहीं होती जो मातृत्व की बेबी पर अपने को बलिदान करती है, जिसके लिए त्याग ही सब से बड़ा अधिकार है और की इस योग्य है कि उसकी प्रतिमा बनाकर पूजी जाने । प्रतिमा प्रस्थापन प्रायः धमाधाररुता के माध्यम से विद्या-परीक्षा के हेतु किया जाता है । गोविन्दी की विमिति भी उपयोजन हुई है ।

रानी सारन्या

प्रमथन के नारी-नामों में रानी सारन्या का विधिष्ट स्वाम है । जीवन में नारी का मुकाब प्रायः एक समय का क्रमल पक्ष की धार ही अधिक होता है किन्तु सारन्या के चरित्र में सत्ताइ बृत्ति का धमाधारण प्रस्फुरण हुआ है । यही कारण है कि एक घाटवै राजपुत्र बली की शक्ति धान पर मर मिगना ही उसके चरित्र की सर्वप्रमुख विशेषता है । सारन्या के लिए जीवन की धार्मिकता इसी राष्ट्रीय धर्मिमान एवं धार्मिक उन्मत्ता में निहित है । उसका धनुधार अपनी धान का पालन ही लक्ष्मिर्न कर्वादा-पालन होता है । उसकी नारी टिक उसके प्रतिभूत है वह सामान्य जीवन को परिस्थितियों की बलिबेरी पर केवल धान के लिए, होम करना नहीं चाटती । एक बार उसका पति धनिवर्द्धनिह युद्ध में पराजित होकर लौट आया था तो उसने उसकी विचरुता को अपनी धार्मिक की छाह देनी चाही की परन्तु सारन्या ने कहा था 'भैया

तुमने क्रम की मर्यादा तो ही। ऐसा कभी न हुआ या धीरे धरती माभी को उत्तर देती है कि उसका पति इस समस्या में भागकर घाटा तो वह उसकी छाती में छुप भौंक देती। यह तब की बात है जब सारंग्या अधिवाहिता थी। विवाहिता होने के उपरान्त तो वह अपनी भाव भावना को सक्रिय रूप देती है। उसके पति अल्पतरुय जब धोरछ की स्वाधीनता को छोड़कर मुस्लिम राज्य की जागीर हिस्सी में भा जाते हैं तो सारंग्या तब तक उदात्त रहती है जब तक कि उसका पति वापिस धोरछ नहीं आ जाता। इतना ही नहीं वह एक भोजे को पाने के लिये 'उज्ज्व राज और राज-सम्मान' सब हाथ से लो देती है। जब बाबसाह उससे पूछता है कि क्या वह एक भोजे के लिए ही राज्य का त्याग कर रही है तो वह निर्भीक होकर उत्तर देती है 'नहीं उस स्वार्थ के लिए जो संसार में सबसे अधिक मूल्यवान है। जब राजा पुन पूछता है कि वह क्या है तो वह उत्तर देती है 'अपनी भाव'। इसमें कोई शक नहीं कि अपनी भाव की भावना से किसी प्रकार भी समझौता न कर अपने के चारु ही उसका नविष्य कष्टकर्म बनता है पर उसे वह किसी भी मूल्य पर त्याग नहीं समझती। वह पति की प्रेरणा पाकर उसकी हत्या करती है जबकि उपरान्त अपनी भी पर अपनी भाव को प्राप्ति नहीं छोड़ती।

उदाहरण पर साक्षित बीरता उसके चरित्र की दूसरी प्रधान विशेषता है। वह पति को बारी भाव से ही प्रेरित नहीं करती अपितु युद्धभूमि में अक्रमण्य युद्धकारों का हस्ता लेकर पकी-हायी हुई सेना में मजबूत भी भरती है। युद्धभूमि में जिस अस्त्र को पकड़ने की सामर्थ्य किसी में भी न थी उसे वह महज ही अपने पीछे लाता भती है। निर्भीकता के कारण ही वह दाही दरबार में न्याय की मांग के हेतु पैदलों सहित पदात्ता-सी भ्रमण करी हुई पहुँच जाती है। जिस भीति वह अपनी तथा पति का अन्त करती है वह भी असा पारल्य बीरता का साक्ष्य है। वह बीर-परिणीता ही नहीं बीर-वस्तुता भी है। अपने सर्वप्रिय पुत्र अन्तसास को वह अपने ही हाथों मृत के मूँह में धेजने से तनिक भी नहीं कतराती। परन्तु सारंग्या की बीरता में मृदुलता नहीं है। अनुपम भी जब विद्विगिता कर सहायता के लिए हाथ फेंकता है तो वह अपने पति से कहती है 'आपको मरव करनी होगी। इस प्रकार उसकी बीरता सचरता को मँजोये हुए है। जीवन ही सारंग्या के लिए रणरोध है। पत्नी रूप में अमका जीवन तनिक भी पैर का जीवन नहीं है किन्तु बड़ी-बड़ी धारणियों में भी अपनी बीर भावना के कारण ही वह व्यक्तियुक्त जीवन से पलायन करने की बात तक अर्थों पर नहीं जाती।

प्रेमचक्र के विशिष्ट तारी-गानों का चरित्र-चित्रण

सारम्भा के व्यक्तित्व में यद्यपि क्रोमस तब कठोर तब से प्रपेलाइज्ड
 वास्तव मौख है तथापि इसका यह तात्पर्य नहीं कि वह अपने रागात्मक कर्तव्यों
 के प्रति उदासीन है। वह एक भावण पत्नी भी है जो मुजमुमि में भी जोड़े
 से उतरकर पति के चरणों पर सिर झुका देती है और भीषण प्रापदाओं में
 भी यही कहती है "मेरी हार्दिक अभिसाया है कि मर्के तो यह मस्तक प्रापके
 पर-नमनों पर हो। पति की आज्ञा को उसने अपनी उबासी को क्षिपाकर
 भी अपनी उत्साह-वृत्तियों को बचाकर भी सिरोधार्य समझ है। पति-आज्ञा
 से बचन-बद्ध हो कर ही वह पति की स्वीकृत मृत्यु का चरण बनी पर पति
 से बिना छूकर स्वयं उसने भी जीना नहीं चाहा। वह चाहती तो भीबित
 छू सकती थी। उसके साहस और धैर्य को देखकर मुगल सरकार ने कहा
 भी था—“रानी साहिबा पूजा गवाह है हम सब प्रापके गुनाह हैं। प्रापका
 को हुकम ही उसे बसरोचरम बजा जाये” परन्तु सती सारम्भा इसका उत्तर
 उपहार अपने हृदय में मुसाकर देती है। वह प्राजीवन अपने पति की प्रेरणा एक
 राजपूत वधि की सम्पत्ति रही है। “राजा को भी ज्ञात था कि वह बेबी को
 हृदय में मेरी पूजा करती है सारम्भा है।” इसलिये जिस पति को पाकर
 सारम्भा को 'महमायी' मुगल की प्राप्ति होती है उसके बिना वह कैसे भी
 सकती थी। सारम्भा की क्रोमस वृत्तियों से समुद्र उसका मातृत्व भी मर
 नहीं हुआ है। मरु नर के लिये ही सही पर वह सोचती प्रकल्प है "हाय !
 इस पुत्र के लिये मैंने अपना प्रिय पुत्र हाथ से छो दिया" पर यों ही यह
 विचार घाता है कि "कामर के दुकड़े को इतने महंगे बामों किसने मिया होया"
 तो वह स्वयं को वात्सल्य-वधिता समझती है।

इस प्रकार सारम्भा का चरित्र परम्परागत और राजपूतनी के रूप में
 चित्रित हुआ है। उसमें व्यापक वैद्यमतिक तो नहीं और मानवीय सेवा प्रादि का
 सम्मिश्रण भी नहीं किन्तु भारतीय सम्मान एक भक्ति प्रकल्प विद्यमान है। इत
 दृष्टि से उसके चरित्र की स्थापना की सीमा दूर तक नहीं जाती परन्तु जिस
 एक जाबोद्बोधन के लिये कहानी में चरित्राभिव्यक्ति हुपा करती है उसकी
 दृष्टि से वह प्रकल्प ही सफल है। जहाँ तक स्वाभाविकता का प्रश्न है—
 परम्परा-चित्रण प्रायः स्वाभाविकता की परवाह नहीं किया करता। सारम्भा
 के चरित्र में एक-बो स्थान पर प्रेमचक्र ने प्रसंगी मनोबैज्ञानिक वृत्तियों की घोर
 निर्येव किया भी है पर प्रत्येक चरित्राभिव्यक्ति की तीव्रता के समय वह
 भावना पुनः ही सती है।

उमा

बोड़ी-सी झलक दिखाने के उपरान्त ही 'प्रेम की बेनी' (गायक) की उमा के जीवन का पटाघोष हो जाता है परन्तु प्रभावोत्पादन की दृष्टि से यह झलक मानिक एवं पिरस्पायी है। इसका महत्त्व और भी अधिक इस दृष्टि से है कि सम्पूर्ण प्रेमचन्द-साहित्य में इस चहुँप-विशेष से ऐसी धनिभ्यक्ति सम्भव नहीं हुई है। एक सुपत्नी किस प्रकार एकनिष्ठ पति की ही धनधरत बासला का बिकार होकर मृत्यु का घास बन जाती है—उमा के चरित्र का प्रतिपाद्य यही है।

व्यक्तिगत रूप से उमा के चरित्र में बड़ा निष्कामता सन्ना एवं नायी-मुत्तम ईर्ष्यामुक्त सत्वता—इन चार विशेषताओं की अभिप्रायभक्ति हुई है। उमा बिबाह-सम्बन्ध को धारण भारतीय युवती की भाँति धारण एवं बड़ा का विषय ही नहीं मानकर बसती अपितु समस्त सोहान-विश्वों को भी बाह्य सन्ना के रूप में बहूत न करके कर्तव्य और धात्म-समर्पण के प्रतीक मानकर बसती है। वह बेनी से कहती है 'जिसे तुम गुलामी की हककी और गुलामी का ठीक कहती हो उसे मैं धत और कर्तव्य और धात्म-समर्पण का बिज्ञ समझती हूँ। मरते समय भी वह पति से एकमात्र याचना यही करती है 'बचन हो कि मैं मर जाऊँगी तो मेरी सोहान-सिन्धूर की बिबिया पर रोब हो कून बड़ाघोषे। उसी सिन्धूर में तो मुझे तुम्हारा प्रेमदान दिया था। तुम्हें छोड़कर मुझे ससार में उससे शिव और कोई बस्तु नहीं है। निष्काम भावना उसकी बहाँ प्रकट होती है बहाँ वह बेनी से कहती है 'पुरुष अपने कर्तव्य से धाँसे बन्द कर से तो क्या स्त्री भी बन्द करले स्त्री परिवार का मुख्य धंग है इसलिये उसे बन्दनों की रबावा बकरत है।' वह यह मानकर बसती है और अपने निबिरोध जीवन में अभ्यामित करके भी बिषा देती है कि निष्काम कर्म के लिये स्त्री को पुरुष से अधिक अधिकार प्राप्ति बचन स्वच्छन्दता प्रादि की माँग करना ठोभा नहीं देता। वह अपनी प्रसरा निस्संकोच होकर अपने ही मुँह पर नहीं तुन सकती। इससे उसकी स्वामाधिक सन्नाधीनता का पता चलता है। "तुम बोलों मिलकर मुझे बनाघोषे तो मैं बनी जाऊँगी"—ये सव्य उसके हृदय की सरसता एवं सच्ची सहुदयता के चोटक है। उसके चरित्र में एक ईर्ष्यामुक्त सत्वता भी बिद्यमान है। उसकी सच्ची बेनी जब उसके पति से धाँसे विभाती है तो वह बेनी की तीव्र नेत्रों से देखती है और जब बेनी बैठकस्तुड़ी से बोध उच को प्यालो तुनाने के लिये प्यालो वाली कोठरी में से जाती है तो वह 'मैंने धम्या से कहा भी नहीं बनी धाई' वह मुझ पर नाउच होने लगेयी"

—इतना बड़कर ही बन्धु दुका लेती है।

बन्दी-रूप में उमा पारशराम पिताओं से प्रभावित जेनी से वेपथ्य-दर्शन के हेतु विचित्र हुई है। जेनी ने एक बार कहा था—“घपनी हस्ती को पति की हस्ती में डुबा देना इतना बड़ा त्याग है जो मैं नहीं कर सकती।” किन्तु उमा के चरित्र की तो सर्व प्रमुख विशेषता ही यह है कि उसने अपने प्रतिष्ठित को पति के प्रतिष्ठित में निश्चयेप कर दिया है। सहनशीलता त्याग तथा समर्पण उसके पाठिभक्त के धर्मिण्यार्थ धर्म हैं। उसका पति उसके भीते भी एकनिष्ठ प्रबुद्ध ही है पर वास्तव-भूति पर निर्भर नहीं रह सकता। परन्तु उमा उसे भी पति की धामा एवं पत्नी-धर्म के रूप में स्वीकार्य ही समझती है। साम-भर में जो धर्मपाठ धीरे धीसरा गर्भ इस प्रसङ्ग बेचना ने उमा को कितनी घाटी रिक्त तथा मानसिक दासता ही होनी यह सहज अनुमान का विषय है। जेनी डाक्टर के घरों में विद्यमान उमा वैसी घाई थी जैसे उन्हें बेचा था। जिसे हुए मुनाब का-सा बेहूषण था। एक घाम के पन्धर उनकी यह उमा हो गई कि रोह में बहिर का नाम नहीं। इसके जिम्मेदार धाम हैं।” किन्तु सहनशीलता उमा पति को बोपी न टट्टरती हुई यही धीसती रहती है “धीसत इतना धस्त्रिह है जैसे इसकी धम्पना भी न की थी मानो एक स्वप्न था कि घाई मुबते ही बायब हो गया।” पर वास्तविकता तो यह है कि उसन अपने सरीर को जैसे मुन्ध उमरकर पति के निचे त्याग दिया है, बलिदान कर दिया है। उसने तो धावीजन समर्पण की धावना से ही पति-प्रेम को पहल्य दिया है। वह मुस्तु उम्या पर भी जब कि उसके पति को धात्य-रूपों पर ध्मानि हो रही होती है, यही कहती है “मुझे उनके धामे से कष्ट होया ? यह उनका प्रेम है जो मुझे जिम्मा रने हुए है जम्मा। यह ज्योति मुझे धीजन प्रदान कर रही है नहीं तो धन तक यह धीजन क्य का धुरु पया होता।” जेनी डाक्टर उसके पति से कहती है “अपने कर्त्तव्य का बडे धान न था। वह तो इतना ही जानती थी कि धाय उसके स्वामी है धायकी इच्छाओं के धामे तिर मुकाना उचध कर्त्तव्य है। उसे क्या मामूम था कि वह धायकी कामुच्छा के धामे तिर मुकानकर अपने निचे विप को बो रही है।” बति के प्रेम में निहित कामुच्छा का ज्ञान उमा को नहीं था—यह कहता तो उसकी चरित्र-भरिमा को क्य करता है। उसके ध्यतिभक्त रूप का प्रतिपासन ही है उचध पत्नीत्व। यहि दोनों में धनधानेपन एवं धधधधधध के उचध होते तो ऐसा कहा था खकता था। बस्तुतः उमा ने देना ही देना सीखा है पति के प्रतिदान में उसने बिली भी बस्तु भी चाह नहीं की है धीर को बिल गया है बडे पति की इच्छा-भूति का धर्म उमरकर धिरी-

कार्य किया है।

कलारमक दृष्टि से समा के चरित्र-चित्रण में विकास उभार भवना स्वाभाविकता की खोज करना उतना ही स्वर्ण है जितना कि प्रेमचन्द के नाटकों में विकास की मचीन रेखाओं का अन्वेषण करना। परन्तु प्रेमचन्द की नारी-भावना में अन्तर्निहित उपयोपितावाची भवना लोकमोपमिक तर्कों की अतिचार्यता की दृष्टि से समा का चरित्र विशेष तथा निष्ठी महत्त्व रखता है। हमारे विचार से पति-पत्नी के मूल-सम्बन्धों के प्रौचित्य का प्रतिपादन समा के विषये अत्यन्त आवश्यक है। लोक का विषय है कि हिन्दी-उपन्यास तथा नाटक प्रायः लोक-मन्य के ऐसे पक्षों से बहुत दूर अनावश्यक समस्याओं एवं मनोवैज्ञानिक गुरिषयों के सुलझाव के प्रयत्न में और भी अधिक जलजले जा रहे हैं; सामान्य पाठक की मनोवृत्तियों की नैतिकतापूर्वक सृष्टि उनकी दृष्टि से अयोग्य होती जा रही है। स्वर्ण प्रेमचन्द ने भी यहाँ बेनी के चरित्र को समा के चरित्र से अधिक विस्तार देकर समा के साथ सम्बन्ध किया है। समा ही के चरित्र पर अधिक बल दिया होता तो वह अपने अंद की अद्वितीय सृष्टि होती।

लौंगी

“बब किसी पुरुष का एक स्त्री के साथ पति-पत्नी का-सा सम्बन्ध हो जाने तो पुरुष का बर्न है कि अब तक स्त्री की धोर से कोई विच्छ भानरख न देवे उस सम्बन्ध को निवाहे जाहे स्त्री किसी भी नीच जाति की हो” दूसरे पक्षों में एक रखेल भी धारण पली हो सकती है और समझी जा सकती है—इसी उद्देश्य को लेकर ‘कामाकल्प’ में लौंगी की चरित्राभिप्यक्ति हुई है।

“लौंगी को देखो”—इस उपदेश-वाक्य के माध्यम से प्रेमचन्द ने लौंगी की सेवा-भावना को अमरत्व प्रदान किया है। ठाकुर हरिसेवकसिंह के घर की ‘मौंड़ी’ लौंगी उनके विदुर होने के पश्चात् अपनी सेवा-भावना के धरोरे ही उनकी ‘प्राणरक्षरी’ के पद पर अतिपिछ होती है। “ईर्ष्या खोज और मत्सर उस लू भी नहीं ममा है। ठाकुर साहब से तो अपनी इस भावना का प्रतिदान भी वह नहीं चाहती है। उन्होंने उसे ‘बो-एक बार मारा भी पर उसके मांसे पर चरा भी बल न घाता बा। उनका ‘छिर भी बुझे तो उसकी बान निकल जाती थी। वह उसकी स्नेहमयी सेवा ही थी जिसने उसे जिसक बीब को पकड़ रखा बा।” ठाकुर साहब उसे बुल-ममा करते हैं तो भी उसके बिना रह नहीं

प्रेमबन्ध के विविध तारी-पारों का खरिब-बिबल

सकते। तीर्थ-यात्रा पर जब वह नहीं थी बीबान साहब बीबाने हो गये थे।" सुरसेवक लौरी के पति का पुत्र होते हुए भी उसका विरोधी है। किन्तु उसे भी कभी-कभी यह स्वीकार करना ही पड़ता है कि "लौरी का पर में होना पिताजी की रक्षा के लिये जरूरी है। वह ठाकुर साहब की प्रेरणा है सम्पत्ति है सर्वत्र है, यहाँ तक कि बीबान साहब को जब राबा विद्यालसिंह से भी कोई महत्त्वपूर्ण बात करनी होती है तो वह चिन्तित हो जाते हैं क्योंकि 'उनकी रक्षा करने के लिये यहाँ लौरी मही होती। धीर लौरी को अपनी सेवा मानना पर बिश्वास है सर्व है। उसमें निराशा नहीं प्रकृत सगन का बिबयो लता है। वह पति की सेवा करती है तो उस पर अपना अधिकार भी समझती है। उसे पूर्ण बिश्वास है कि 'नाम से कोई ब्याहिता नहीं होती सेवा धीर प्रेम से होती है' यही कारण है कि उसे अपनी सेवा मानना एवं पत्नीत्व कल्पना पर सर्व भी है। जब गुरु सेवकसिंह उसे घुसे मकान में रखने की बात करता है तो वह गरज पकती है 'तो बच्चा मुझे जब तक मालिक बीता है लौरी इसी घर में रहेगी धीर इसी तरह खौसी' -मैंने अपने मालिक की बितनी सेवा की है धीर करने को तैयार हूँ उतनी कौम ब्याहिता करेगी ? इस प्रकार उसकी सेवा-मानना एक दिनबली की मानना नहीं प्रकृत, बाबा बाबिनी की भावार्थिका मानना है। मनोरमा के प्रल को लेकर वह पति के समक्ष जबकी प्रवचन है, किन्तु यहाँ भी वह उन विनी कुनी स्त्रियों में प्रमुख स्थान पाती है जिन्हें देखकर प्रेमबन्ध कहते हैं "रमणी का हृदय सेवा के प्रथम परमालुषों से बना हुआ है। उसका प्रेम भी सेवा है उसका अधिकार भी सेवा है यहाँ तक कि उसका श्लेष भी सेवा है।

बाब-पिच्छीला लौरी का पत्नीत्व ही नहीं मातृत्व की धर्यन्त विकसित है। बिभाटा नाम की बालिका तो जैसे उसके स्वर्ण मात्र से पुत्र जाती है। मनोरमा पर वह जान देती है। मनोरमा न उसे पाकर कभी स्वर्ण को प्रनाय नहीं समझा "मातृ-स्नेह का जो कुछ गुण उसे मिला या लौरी ही से मिलता था।" जब उसे पता चलता है कि मनोरमा का विवाह बुड़े राबा साहब से होने का रहा है तो धनमेन विवाह के कुछ-बर्ष को लो प्रकाश समझती हुई वह किसी भी माता से अधिक चिन्तित हो उठती है। वह बहुकपियों से बिन्ताकर कहती है "आमा यद्यत् तुम्हें मन का लोभ हो तो बितना जाहो मुझसे मे जाओ। मेरी बिरिया को तुम्हें में न बनेसो। क्यों उसके प्रथम बने हुए हो ?" मनोरमा के माई ठाकुर गुरु सेवकसिंह उसे 'कुमटा' तक वह देते हैं किन्तु उसकी सर्व्व यही चाह रही है— "गुरुसेवक सिंह के मुँह से यन्मा' सुनकर मुझे वह गुपी

होमी को संसार की रानी बनकर भी नहीं होगी। स्वामी की मृत्यु के उपरान्त तो उसके जीने का एकमात्र ध्येयसम्ब उसका यह निरीह-सा वात्सल्य ही है। उसे समझे रहा है कि पुस्सेबकसिंह नीच जाति की होने के कारण उससे दूरा कर दे है किन्तु जब एक दिन वह भी धाकर कहते हैं 'हाँ बाँधकर रखेंगे' तो लौपी का मन बन्धियों उल्लस पड़ता है और सन्नतुच ही बँधव्यावस्था में भी वह जीवन के साथ वात्सल्य के घट्ट टारों से बँध जाती है। और फिर मन तो उस सहाज-वत्सला के लिये एक तुच्छ-सी वस्तु है। यह ठीक है कि ठाकुर साहब के घर में 'जल्मी ही लौपी के रूप में धाई है' किन्तु लौपी उससे सदैव नित्य ही रही है। जब उसे मनोरमा द्वारा ज्ञात होता है पिता भी ने सारी जायदाद तुम्हारे नाम लिख दी है' तो लौपी पर इस सूचना का दण्ड भी असर नहीं होता। उल्लास उत्सुकता का पर्व से कोशों पर उसका बेहूष भावधूम्य-सा भीष पड़ता है। वह कहती है 'और तुम यह बचीबतनामा से जाकर उन्हीं (पुस्सेबकसिंह) को बे दो। तुम्हारे दादाजी ने ध्येय ही बचीबत विद्यामी। जब पुस्सेबक बचपन में बीमार पड़ा था 'तो यह लौपी ही थी जिसने उसे मौत के मुँह से निकाल लिया था' 'कोई माता अपने बालक की इतनी सेवा नहीं कर सकती' 'लौपी उसका पंचर मोद में लेकर सोबा करती थी'। क्या आज उसकी समस्त मातृ-भावना का सिवा एक कानच के टुकड़े से चुकाया जायेगा ? नहीं लौपी ऐसा कभी नहीं होने देगी। वह तो इतना मान ही चाहती है कि मनोरमा तथा पुस्सेबक यही समझे कि 'जब तक माँ-बाप जीते हैं तब तक लड़कों को बोलने का अधिकार ही क्या है।' उसके परिशेष के लिये इतना ही पर्याप्त है कि उसे कोई माँ समझे। इस प्रकार, उसका मातृत्व तोम नहीं अपितु उत्सर्ग पर धामित है—निस्वार्थ एवं निर्विकार है।

यह पाकर लौपी गर्भ में बुर नहीं होती अपितु वह एक सुहृदिणी है और सामान्य व्यावहारिक जीवन में सीधन्त एवं दया उसके चरित्र के सहाज साधारण धर्म हैं। ठाकुर हरिसेबक सिंह को बन से मोह है किन्तु लौपी बूँक एक परिचारिका से ऊपर उठी है धत वह परिवार के नीकरों की स्थिति से भली भाँति परिचित है। "यह उसकी सज्जनता की भी नीकरों को बेतन न भिसने पर भी जाने न देती थी।" धार्मिक दृष्टि से वह निष्कल्य ही ठाकुर, साहब के धर्मिन है किन्तु उसकी सहाजभूति सज्जनता तथा सदायता पर तो कोई प्रतिबन्ध नहीं सगा सकता।

लौपी का चरित्र है कि "मान्य पर वह भरोसा करता है जिसमें पीरप नहीं होता"। धत तीर्न-याना प्रादि की धास्तिक भावनाओं के होते हुए भी

प्रेमबन्ध के विशिष्ट गायी-गात्रों का परिज-विचल

बहु पुरपायों को महत्त्व देती है। उसकी धारणा है कि मनुष्य को ध्यात्मबल से ऊपर उठना चाहिये—“भोबा बैकर पेट पासने से मर जाना सम्झा है। यही धारणा है कि लीली में एक स्वावलम्बी ध्यात्म-सम्मान की भावना धर किये हुए है। ठाकुर साहब की मृत्यु पर ‘वैषम्य के शोक के साथ यह भाव कि मैं किसी दूसरे की रोटियों पर पड़ी हूँ उसके सिये प्रसन्न था’। ठाकुर साहब के जीवन में भी ध्यात्म-सम्मान के प्रति पात्रह भरणे का प्रयत्न उसने किया था—“तहसीलदार साहब तुम तो बमकाते हो जैसे हम राजा के हाथों बिक गए हों। राजी कठेगी अपना सोहाय सँदी। अपनी नौकरी ही लेने से बायें भयवान् का बिया जाने भर को बहुत है।

लीली ध्यात्मन्त व्यवहारकुरास है धीर मानव-रूप की सहरी पहचान भी उसे है। घर में कोई नहीं जानता किन्तु लीली को पता है कि मनोरमा को बन्धन से प्रेम है। वह तिलमिला कर रह जाती है—‘हाय ! बाते पर गिरने वाली विक्रिया को मोटी बुझाने की चेष्टा की जा रही है—‘हाय ! बाते पर गिरने व्यक्ति को पहचान जाती है। मिनटू को जब ज्योतिषी के बेल में उसके सामने लाकर खड़ा किया जाता है तो वह संझी बसबर पर बरस पड़ती है—“लाता तुमने बहुत दिनों तहसीलदारी की है तो मैंने भी रूप में जान नहीं पकड़े हैं। एक बहुकल्पिये को लाकर खड़ा कर दिया ऊपर से कहते हैं बोटसी हैं। ऐसी ही गुरत होती है बोटसी की? मानुस होता है सहरीजों से जाने की गुरत नहीं देखी।” लीली के मोटापे के बर्तन द्वारा यद्यपि प्रेमबन्ध में बोड़ी बिनोब-सामयी बुटाई है पर इतिवृत्त इस धीर यत्निक है कि उसकी मौलिक-गुण-अभ्य बाह्य स्फूर्तता अन्तरंग कोमलता का अर्थ नहीं कर पाई। लीली जितनी अधिक स्फूर्त होती गई है उतनी मानवीय भावनाओं में भी जैसे उतना ही प्रसार पाता गया है। यह धीर बात है कि उसने बिलकों की भी गहराई नहीं है सामान्य मानवतावासी मूख्य ही है किन्तु यह भी टीक है कि सामान्य व्यापक हारिक जीवन में इन्हीं सामान्य मूर्खों के सहारे ही ऊपर उठा जाता है। इस स्फूर्त काया के प्रति ही मनोरमा प्रेम यज्ञा सर्व धीर धारण्य से बेल पड़ी भी मानो यह कोई देखी हो।

(ग) मानृ-रूप

रानी साहूजी

‘रंयनूमि की बीर प्रभु साहूजी मातृ को धारण्य राजपूत माता के रूप

में ही प्रधानतः विहित हुई है। छायाछी की कर्तव्य-निष्ठा एवं सेवा-सेवा में योगदान ही उसके जीवन की मध्य-साधना है। उसका विश्वास है कि धर्म्याय धर्म्याचार एक परतन्त्रता के पास सेवा समिधान एवं त्याग से बटते हैं और मातामों द्वारा देश-सम्पत्ति के संस्कारों में इन मूर्खों को सचेष्ट संयोजना होगी बाह्यः। देश में धर्मसेवी पुरवों और सन्तान-सेवी मातामों का ध्यान नहीं है। बरती उनके बोध से बची जाती है। मैं अपने बेटे को सच्चा राजपूत बनाना चाहती हूँ। इसी भावना से प्रेरित होकर वह धारम्भ से ही अपने मातृत्व को हृदय से अधिक वृद्धि के सन्धि में बाधना धारम्भ करती है। भारत की परिपुष्ट सांस्कृतिक सम्पदा ने उसे धर्मिमन्त्र्य सुगंधास और प्रताप को और अपने पुत्र विनय के धर्म से पूरा ही प्राकृष्ट किया है। पुत्र-धर्म के उपरान्त वह धर्म से ही उस कठिनाइयों के मार्ग पर प्रयत्न करती है न कभी यहाँ पर सुनाती है न कभी महारियों और बाइयों की गोर में जाने देती है और न कभी मने प्रायि स्वाधिष्ट पदार्थ ही उसे खिलाती है। उसे घिया भी वह पत्नी से नहीं धनितु स्वनिश्चित प्रणामी से देती है। 'बस बर्ग' की धमस्वा एक केवल धार्मिक कथाया द्वारा उसकी शिक्षा होती है। इसके बाद डाक्टर बागुनी जैसे सुयोग्य अधिकाक के निरीक्षण में छोड़ दिया जाता है और संस्कृत तथा धर्म भारतीय भाषाओं के प्रतिरिक्त यूरोप की प्रधान भाषाओं का ज्ञान भी उसे दिया जाता है। इसके प्रतिरिक्त मुनाबस्था को पहुँचते-पहुँचते वह पुष्पी के धनेक प्रदों का पर्यटन करने के साथ ही संघीत धार्मिक जित्त कलाओं में भी पारपत हो जाता है। बुद्ध होते ही देश के प्रति कर्तव्य तथा सेवा का धर्म उसे दिया जाता है। रानी के अपने ही धर्मों में वह धर्म 'पुरु स्यायी है। इस प्रकार रानी बाइली सन्तान की प्रारम्भिक शिक्षा को धरमन्त महत्त्वपूर्ण समझती है। उसने स्वयं पुत्रपासन का धारधं बत लिया हुआ है। यही कारण है कि उस कोमलादिनी की लोभ्य मुखाकृति पर धसाधारण मातृत्व का तेज विद्यमान है जिसके प्रभावस्वरूप सोडिया ने सुपुत्रावस्था में उसे छँट

समझ का और यही कारण है कि बाइली सन्तान-गविता भी है। सोडी से वह बहती है 'सोडी भयवान् ने मुझे दो बच्चे दिये और दोनों को देखकर हृदय पीठल हो जाता है। इसके साथ ही रानी का यह भी विस्तार है कि एक सपुत्र अपनी उत्पत्तिष्ठा एवं धर्म्य धार्मिक उँबाइयों के परिणाम स्वरूप पिता तक को प्रभावित किये बिना नहीं रहता। उसके धर्मों में उसके पति 'कृ पर साहित्य को जो सेवा समिति से इतना प्रेम है वह विनय ही के सत्संग का फल है। मातृ-रूप में बाइली धनेक सन्तानाभिधापिनी भी नहीं है

प्रेमचन्द के विविध नारी-पानों का चरित्र-चित्रण

घोर न ही उसे पोटों को खिजाने धारि की तासता है वह तो पुत्र के बीजन में विमासिता से कहीं अधिक महत्त्व कर्तव्य एवं उसके हेतु उत्सर्ग को देती है। वह स्पष्ट कहती है कि "जातिरक्षा के लिये उसे प्राण भी देना पड़े तो मुझे बच भी शोक न होना शोक तब होना जब मैं उसे ऐश्वर्य के सामने सिर झुकते या कर्तव्य के क्षेत्र में पीछे हटते देखूँगी। घोर जब वह बिनय को सोझी के प्रति सन्तानित देखती है तो उसका विकसित शाल्य मुक्त-मन्थन समतया उठता है। वह उसी मस्य उसे उससे दूर भेज देती है। असबत्तनवर में बिनय मातृकटा बस तनिक भी विपन्नगमन करता है कि बाहूबी की प्रताड़ना पहुँचती है "बिनय वार जब कोई बिनय बनाते देखता है कि इससे उसके मन के माय व्यक्त नहीं होते तो वह तुरन्त उसे मिटा देता है। उसी भाँति मैं तुम्हें भी मिटा देना चाहती हूँ।" उसके इसी नियन्त्रण का फल है कि बिनय शाल्यमानि से मातृक होकर पाण्डेपुर के सत्याग्रह में प्राणाहुति देता है। उसकी यह वीर-मृत्यु भी रानी को बहाना नहीं पाती है। उसके बेहरे पर शोक-धामा की विह्वल नहीं प्रपितु धीसुओं के स्वान पर सब संकल्प की फडोरना उभरती है क्योंकि उसके धनुषार "विष्य मृत्यु विष्य जीवन से कहीं उत्तम है। विष्य जीवन में कर्मपित मृत्यु की शंका रहती है विष्य मृत्यु में वह कहीं? कोई जीव विष्य नहीं जब तक उसका पक्ष भी विष्य न हो। घोर रानी बाहूबी एक पुत्र की दिवंगति का अर्थ उदाहरण अनेक पुत्रों के समस्त रहती हुई कहती है "कर्तव्य के क्षेत्र में हिन्दू घोर मुसलमान का भेद नहीं "बामो घोर बिनय की भाँति प्राण देना हीनो। दुनिया केवल पेट पालने की बागह नहीं है। देव की भाँति सुन्दायी घोर नहीं हैं। तुम्हीं इसका बेड़ा पार सवापोने। इस प्रकार रानी बाहूबी एक माता के रूप में सर्वथा हृदय को बचाती गई है घोर कर्तव्य को निरन्तर बुद्धि के प्रथम में छोड़ती गई है। उसका मातृत्व हृदय की कोमलता से नहीं प्रपितु बुद्धि के तर्कसंगत नियन्त्रण में बहका हुआ है जिसकी सर्व प्रमुख विशेषता है देश-भक्ति घोर उपर्युक्त रूप विशेषतायें जिसके सामन रूप में विनित हुई हैं किन्तु इनके साथ ही प्रेमचन्द यह भी दिखा देना चाहते हैं कि बाहूबी का शाल्य कर्तव्य-भावना से कुठिल हो चुका हो—ऐसी बात नहीं है। उन्होंने उसके एक नारी-महत्त्व तरल मानु-रूप की घोर भी इतित किया है। बल प्रेम के कारण ही वह क्रिश्चियन सोष्ट्री के हिन्दू बिनय से परिणय भी है कि बाहूबी स्पष्ट तो न वह सक्ती पर सक्ती से बिनय को पाण्डेपुर के सत्याग्रह में समितित होने से रोक्ती को। दारुवत की हत्या ने उन्हें बाहू

संघर्ष कर दिया था। एक घोर स्वान पर तो रानी फूट-फूट कर रोती भी है घोर विभाप-घा करती हुई कहती भी है "मैं हरयारिन हूँ मुझ से बड़ी भयापिन संसार में घोर कोई न होगी। न जाने विजय का क्या हास हुआ होगा। रानी के मातृत्व के इस पक्ष को बसका तरल ममत्व तथा उपरोक्त पक्ष को संघर्ष का बाह्य भवना आदर्श प्रकृत रूप कहा जा सकता है। पर इन दोनों के बीच विभ्रण की अस्वामाधिकता की एक कड़ी भी विद्यमान है। फूट-फूट कर रोने वाली बाह्यभी पुत्र की मृत्यु पर तनिक भी शोक-विह्वल न हो बसका "आठि रसा के सिधे उधे प्रास भी हैना पडे तो मुझे बरा भी शोक न होना" ऐसा कहने वाली विचिष्ट हृदया माता सुबकने मन आवे—यह एक असंगति है। हम यह नहीं कहते कि मातृत्व के ये दोनों पक्ष हो ही नहीं सकते—यह दबणधीस पक्ष तो नारी-हृदय की बहुत बड़ी विशेषता होती है किन्तु हम यह कहना चाहते हैं कि बाह्यभी के मातृत्व के अन्तरंग तथा बहिरंग भवना उसके हृदय तथा बुद्धि में प्रेमचन्द एक ही अन्तर्दृष्टि का विधान नहीं कर पाये हैं। ऐसा सपता है कि बहिरंग भवना आदर्श मातृत्व का विभ्रण करते-करते उन्हें अनायास ही विचार या जाता है कि—नहीं-नहीं मातृत्व का एक तरल पक्ष भी होता है अतः ही अति व्यक्ति भी मान्यत्व है—अतः योंही अन्तरंग विभा अर्थात् रानी को स्ताकर भवना मृत्यु से थोड़ी बहुत आर्तकित दिखाकर अन्तुलन का प्रयास किया है। पर इसे तो अन्तर्दृष्टि नहीं कहा जा सकता। यह तो अस्वामाधिकता ही है। बात नहीं समाप्त नहीं हो जाती। बाह्यभी के अतिव्यक्त रूप एवं मातृ-रूप में भी अस्वर विरोध है। पुत्र से बह त्याग की मांग करती है किन्तु स्वयं त्यागिनी नहीं है पुत्र की विभासिता का कठोर दण्ड देती है पर स्वयं उची भजन में रहती है जिसमें अबाए मए, 'एक-एक विभ घोर एक-एक प्याने के लिए ह्वारों सभं क्रिये हैं।' पुत्र को बह स्वावलम्बी बनाना चाहती है पर स्वयं अर में लीकर-बाकरो से मुक्त नहीं है—घोर तो घोर बधु भी पुत्र की अति त्यागवती तथा विचार घीला नहीं—अन्त्यासिनी बहू नहीं भोज करने वाली बहू चाहती थी। अन्तुल बाह्यभी जिस पुत्रार्थ की लीला रखती है यदि उसके निजी अरिभ में भी बह अरिणार्थ किया गया होता तो हमारे विचार से संघर्ष मातृत्व का यह अखलापन अतनी ही अरिभ मात्रा में अतनी अतीवृद्धि का उपकरण हुआ होता। अतः अस्ताकर बाह्यभी के अरिभ के मातृ-पक्ष के विषय में इतना कहा जा सकता है कि लीला की अरिभ-अंशान के जिस पुत्र में प्रेमचन्द ने अरिभ अरिभ की अरिभ अरिभ को अरिभ अरिभ में अरिभ की भी अरिभ अरिभ का अरिभ अरिभ हुए भी अरिभ अरिभ की अरिभ से अरिभ अरिभ की अरिभ में

प्रेमभाव के विविध नारी-धर्मों का अतिरिक्त विवरण

एक बहुत्वपूर्ण सीमा तक कार्यसिद्धि हुई है।

पत्नी-रूप में जाह्नवी पूर्ण पतिपरायणा है और पति-भक्ति में बिदबाध रखती है। इस रूप में उसका चित्रण अधिक तो नहीं हुआ पर इतना स्पष्ट है कि अपने पति की विलासप्रियता पर उसने कभी कोई आक्षेप नहीं किया। शत्रु को दिये गए उसके उपदेश से भी यही प्रतीत होता है कि अगर पति सिर के बस चलने को कहे तो नारी का धर्म है कि वह सिर के बस चले और जब शत्रु पति से विद्रोह की बात करती है तो वह कहती है 'अगर फिर मेरे सामने मूँह से ऐसी बात निकाली तो तेरा पना बोट भूँसी अगर तुम्हें उनकी बातें पसन्द नहीं आती तो कोशिश कर कि पसन्द धार्यो।' यह ठेरे पति देव है ठेरे भिये उनकी सेवा से उत्तम और कोई पम नहीं है।' इस प्रकार जाह्नवी पतिपरमेस्वर की उपासना में ही पत्नी का कल्याण एवं धर्म समझती है। उसका विरवास है कि पत्नी का काम सेना कुछ नहीं देना सर्वस्व है। दुर्बिहारी रूप में प्रशिक्षिका बननी होने के साथ ही धर्म-ग्रन्थों तथा नाम धाम

कला' आदि परम्परागत माध्यमों में भी उसे विरवास है।

राज्ञी जाह्नवी परिचय की तुलना में भारत को भारत की प्रत्येक इष्टि से अधिक समृद्ध मानती है। चाहे उसका एक संविस्थापक पर ही आचारित क्यों न हो। जब भिसेत्र सेवक किसी सभा में सभानेत्री हो जाने की चेष्टी बभारती हुई कहती है 'फिरी हिन्दू या मुस्लिम नेत्री को यह सम्मान न प्राप्त हो सकता था' तो राज्ञी नोकझोंक पर उतर जाती है। उसकी राष्ट्रीयता को यह भिष्यामास मात्र प्रतीत होता है। वह कहती है 'हिन्दुओं में जो लोग धर्मों से आनन्द रखते हैं उन्हें लोग सममान की इष्टि से देखते हैं। पारी-विवाह वा तो बहुत ही क्या। राजनीतिक प्रभुत्व की बात और है। बाबुओं का एक बस विद्वानों की एक सभा को बहुत घासानी से परास्त कर सकता है' लेकिन इनसे विद्वानों का महत्व कुछ कम नहीं होता। प्रत्येक हिन्दू जानता है कि मठीह बौद्धकाल में यहाँ माये से यहीं उनकी सिधा हुई थी और वो जान जन्हुने यहाँ प्राप्त किया उरी का परिधय में प्रचार किया फिर कैसे हो सकता है कि हिन्दू धर्मों को भय समझें ?'

इतकता यद्यपि भौतिक सम्पत्ता एवं आत्मविमान का साथ बहुत कम देती है तो भी राज्ञी जाह्नवी की यह निजी विलक्षण विशेषता है। सोप्री से विनय की रत्ना धम्मि की सपटों में से की भी जाह्नवी धाजीवन उसके प्रति आभारी रहती है। उस समय तो जमे वह युव की गधा करने वाली देवी के रूप में विराट् देती है विन्दु उनके उपरान्त भी पम कनी वह सोप्री के

प्रति भ्रष्टमाई है तो उसके मन में सर्वथा यह भाव उठता है "छोड़ी तुम मुझे कुठमन कहोगी" । विनय-छोड़ी-परिणयन का मुहूर्त निकलवाने से पूर्व भी उसकी चाह यही होती है कि किसी 'भोग करने वाली बच्ची' का उनके घर में सत्परागमन हो । किन्तु वह अपने हृदयगत भावों को सूझकर भी मुँह से न निकालती थी । नहीं वह इस विचार को मन में धामे भी न देना चाहती थी इसे कुठमनता समझती थी । कुठमनता के आवेग में ही वह विशेष पैरक के बल लिपट जाती है और डाक्टर बांगुली के प्रति भी उसके मन में अपने पुत्र के प्रतिपत्न होने का कुठमनता-निमित्त भ्रष्टा भाव ही विद्यमान है ।

रानी एक तुच्छ सफलता पर फूलकर कुम्पा नहीं डो जाती । लक्ष्यसिद्धि की धोर बसते-बसते यदि जीवन के प्रथम चरण पर ही किसी धारस प्राप्त में सफलता मिल जाती है तो रानी के अनुसार वह विषय नहीं अपितु जीवन की 'पहली परीक्षा' होती है जिसके उपरान्त मनुष्य अपने श्याव-मल एवं कर्तव्य का बोध हो जाने पर धार्मिक दृष्टापूर्वक लक्ष्य की धोर अग्रसर होता है । रास्ते का पड़ाव जिस प्रकार अन्तिम मंथन नहीं होता उसी प्रकार एक बार की सफलता जीवन की अरम सिद्धि नहीं होती । मि. बमार्क का उदाहरण हो जाने मात्र पर रानी की धारम प्रसंगारमक उच्छ्रियों को सुनकर वह कहती है 'एक तुच्छ सफलता पर धाय भोग इतने फूले नहीं समाते । इसे विनय व समझिये वह वास्तव में पराभव है जो धायको अपने अधीष्ट है कोर्षों दूर हटा देती है, धायके गले में फन्हे को धीर भी मजबूत कर देती है । बाजे वाले सर्षों में बाजे को धाय से संकेते हैं किन्तु इसीलिये कि उसमें से कर्णमधुर स्वर निकले । धाय भोग भी संकेत का रहे है जब जोटों के लिये पीठ मजबूत कर लीजिये ।'

एक राजपूत-नारी होने के नाते रानी को धारम-सम्मान सर्वप्रिय है । धारम-सम्मान का उदात्तरूप ही धारमवीर्य होता है । यही कारण है कि रानी धारमवीर्य की रक्षा के समझ पुत्र रक्षा को भी अत्यन्त हेय समझती है । उसके अनुसार "संसार में कोई ऐसी वस्तु भी है जो सम्मान से भी अधिक प्रिय है—वह धारम-वीर्य है । अपनी धारम-सम्मान-प्रियता के कारण ही वह डाक्टर बांगुली के कीसिम छोड़ जाने पर उनका स्वागत करती है और कहती है "जिनमें धारम-सम्मान का भाव बीबित है उनके लिये वहाँ स्वागत नहीं ।

रानी की जो चरित्र-परिणति अन्त में हुई है वह अत्यन्त सदाहनीय है । विनय तथा छोड़ी के बीते भी वह जो न कर सकी उसकी धोर सब वह सक्रिय रूप से डा. बांगुली तथा अपनी बेटी इन्धु के साथ अग्रसर होती है ।

वहने उसने केवल पुत्र-ममता को ही ठाक पर रखा हुआ था किन्तु अब अपने सम्पूर्ण ममत्व का त्याग कर चुकी है। जो सिपाही सोने की ईंट पर्दन में बांध कर चलाता है वह कभी नहीं सड़ सकता—इस तथ्य में अब सबका पूर्ण विश्वास है और उनी अपनी तथा अपनी सुपुत्री के पसे से ईंट का त्याग मान ही नहीं करती बल्कि त्याग के बाबतमक पक्ष—सेवा को भी सक्रिय रूप में ममतायी है। वह "आज की पाड़ी स पंचायत का रही है" सेवा के हेतु। किन्तु इतना हम प्रकल्प कहते कि दिनप के जीवन-आप्त में ही यदि प्रेमचन्द ने उनी के व्यक्तिगत जीवन में इस त्याग तथा सक्रियता का अनुप्राणित किया होता तो उसका मातृ-पक्ष भी अधिक स्वानादिक तथा ठोस हो गया होता।

सखीनी

'कर्मभूमि' की प्राचीण वृद्धा सखीनी के चरित्र की सर्वप्रमुख विशेषता है उसका सहज स्नेहमय वात्सल्य। सामान्य भोक्तृ-दृष्टि से तो इस समय उसकी कोई भी धीर सन्तान नहीं है किन्तु वात्सल्य की स्वात्मक दृष्टि से उसका हृदय अब भी बहुत तरल है। धमर ने जब उसके पाँव में कदम रखा था तब वह उसके अमित मुकामपक्ष को देखकर मनापास ही श्वाश्रु होकर बोल उठी थी "यहाँ तो सब रीबास रहते हैं मैंवा" धीर जब धमर ने कहा था कि वह बात पाँठ को नहीं मानता तो उसने घापीबापि देकर धीर भी पटीब कर पुष्टा कहाँ जाना है बेटा? धीर "जबहू की कौनकमी है" कहते-कहते उसे अपनी निर्जनता का विचार भी हो आया था तब उसने कहा था 'मन्दिर के जोरों पर तो रहना' पर मन्दिर के बाब तो शकुपों धीर शकुपों के साथ उसके उस बेटे की पार बँबी हुई थी जो उनके कोर में पड़कर गुप्त हो गया था धीर तब वह धमर को अपनी ही बीसुई भ्रौंपड़ी में ले गई थी धीर दुलराते हुए कहा था "अब मये हो बोझा-सा बूध रखा है पीलो।" तब उसने स्वयं बाजरे की रोटी खाई थी धीर धमर की भेहूँ की चिसाई थी। किन्तु अब जब कि धमर उसकी वात्सल्यिक परेनु रसा से परिचित हो गया है वह बुढ़िया के घर का धम बन चुका है। उसके जीवन में एक नवीन प्राण-संचार आ हो गया है। गीली सफ़ड़ी पोपना मुँह है जिसमें पूँक भी नहीं है पर जब धमर समीप आकर बैठ जाता है तो उसे वह दिन पार था जाते हैं "जब उसके अपने बच्चे उसे घम्मा-घम्मा बहकर बेर सैत ये धीर वह उहें डींटीयी थी। उस उजड़े हुए घर में आज एक दिया जल रहा था इस मुकाम की धीर क्यों उसकी इतनी ममता हो रही थी 'धमर का सरल बालकों का-जा निष्कपट व्यवहार, उन

का बार-बार घर में घाना धीर हर एक काम करने को तैयार हो जाता उसकी सूखी मातृ-भावना को सींचता हुआ-सा भाग पड़ता था मानो अपने ही विचारे हुए बालक की प्रतिध्वनि कहीं दूर से उसके कानों में धा रही है। धीर जब अमर एक सुपुत्र की भाँति उसे दो छाड़ियाँ लाकर देता है तब 'उसके प्रसन्न-करण से मानों पूज की धारा बहने लगी। उसका सारा बीचम्य छाप मातृत्व भासीभाव बनकर उसके एक-एक रोम को स्पन्दित करने लगा।' ऐसा है समोनी का वात्सल्य धीर इसे ही प्रेमचन्द नारी का सर्वोत्कृष्ट रूप मानते हैं परन्तु कुछ भासोचनाओं में समोनी के तरल वात्सल्य को धातिव्य-सत्कार मान कहा गया है। छाँडी इस तथ्य की ही गई है कि समोनी को यदि अमर से अपने ही पुत्र जैसा स्नेह होता तो वह अपनी भूमि उसे बँटाई पर देने से इनकार न करती। हमारे विचार से इस भावना के कारण तो समोनी के वात्सल्य में धीर भी सहानुभूतिमय व्यापकत्व था पथा है। इसमें सन्देह नहीं कि जब अपने पुत्रों की भूमि अत्यन्त प्रिय है परन्तु बोड़ी धीर पैनी दृष्टि से देखें तो उस धासीकार के भीतर अपने स्वार्थ के हेतु किसी धन्य की धावीविका न छीनने की भावना निहित है। वह कहती है 'जिसके पास मेरे खेत धाजकल है वह तो मेरा ही भाई-बन्द है। उससे छीनकर तुम्हें दे दूँ, तो वह अपने मन में क्या लड़ेगा। सोचो धगर में धगुणित कहती हूँ तो मेरे मूँह पर बप्यङ्ग भारो उसके मूँह की रोटी छीनकर तुम्हें दे दूँ तो तुम मुझे क्या कहोने बोलो?' यह भावना वात्सल्य का वह पदा है जिसे एक निर्बन्ध माता ही जो किसी धन्य को भी किसी माता का पुत्र समझती है भाग सकती है। बुबड़ भीबरी भी इसके समझ निरन्तर हो जाता है। जहाँ तक धातिव्य-सत्कार का प्रसन्न है वह तो एक प्रतिनिधि धामीय माता के बुद्धिहीन्य का धनिधायक भाग होता ही है पर समोनी का अमर से सम्बन्ध धातिव्य-सत्कार भाग का ही नहीं है। समोनी स्वयं कहती है कि जब खोया हुआ पुत्र भी घर भीट जाता तो "पहले दिन उस लड़के की भी संहमानी की जाती है।"

समोनी के चरित्र की दूसरी प्रधान विशेषता है धोपक तथा खोपित की पहचान धीर धात्मसम्मान की रक्षा की भावना। वह एक निपट धाम-विधवा है पर भीबन घर के धनुमनों ने उसे सिखा दी है कि जमींदार धोपक होते हैं धीर यह भी कि धोपक तथा हाकिम ग्याय धखवा पिड़बिड़ाहट को कभी नहीं सुनते निर्बन्धता की ध्रियार धीरानों में विलीन हो जाती है। "महलकी से ध्रियार करो कोई नहीं धुनेना देता मैं कहे देती हूँ" यह खो-तीन बार इन्हीं ओं को बुद्धाती है। परन्तु इसके साथ ही उसे यह भी विश्वास है कि

प्रेमबन्ध के विविध माटी-बाकों का चरित्र-चित्रण

घातमन्थ्र कायरता होती है। निबन्ध क भी घातमन्थ्र होता है उसका चरित्रमय पत्र ही उसे ऊपर उठा सकता है घातमन्थ्र धरबा मनमन मनुहार नहीं। तैतलन बेचकर एक ही रमया उसे प्राप्त होता है वह भी व्यादा प्राकर मौयम लपटा है सलोनी को तो चिन्ती करना प्रसन्न है। पर वह मुन्नी को बाओं-बी-बाओं में बटाती है कि व्यादा 'बर में भाग लगाए देता या। क्या करती निकामकर छेक दिया। उस पर मनर मैया कहते हैं—महन्त बी से चरित्राच करो। वह रमया बेटी नहीं फेंकती है। संघर्षों के पाटों में वह पिच गई है पर बोलियों एवं हस्तरों के समल भी घातमन्थ्र को ह्य नहीं समझ पसने। वह बीमार हुई है बहुत कराही भी है परन्तु रैयं एवं साहस को कभी नहीं छोड़ा उसने।

घातमन्थ्रान की भावना एवं घोषण के स्वल्प की पहचान ही सलोनी के चरित्र में बिबोह मरती है। वह सचय के मार्ग पर सक्रिय रूप से प्रयत्न होती है। मनर के घागमन से पूर्व भी उसका मन कई बार कसमसा कर रह गया लपटा है। किन्तु तब एक उचित निर्बंधन का उसे प्रभाव था। यह प्रभाव प्रेमचम्बकासीम और किसी सीमा तक भाव के भारतीय घामों में भी परि मयित होता है। इसके साथ ही सलोनी के चरित्र के इस पक्ष से यह भी ज्ञात होता है कि सचय भावनाओं प्रतिक डेर तक समित नहीं रहती है प्रयत्न भयबा निर्बंधन पाठे ही वे बाबामल-सी ममक उठती हैं। और सलोनी तो साक्षात् ही बाबा है। उसका विद्युत् मन सब प्रमियमित हो जाता है। सलोनी के उसे हस्टर लपटे ये पर "सहसा सलोनी को देखकर वह पीछे हट गई और बीसे यानी बी—यह तो इकिम है। फिर सिहनी की मौलि भ्रमटकर उसने सलोनी को ऐसा बन्का दिया कि वह मिट्टे-पिरोटे बचा और जब तक धरकागत होने हटाओं सलोनी की गरदन पकड़कर इस तरह बजाई, मार्गों बोट बेवी। इसके पहले उसने कहा था "उसे बिबा बीवी कि बुझिया तेरी छाती पर मूय दमने को बीठी हुई है।" उसकी पाय पुनिस डार से खोल जाती पर "उमने घाचल सिर से छारकर मनर में बीया और लाठी संमाल कर पीछे से दोनों कसाइयों को पीटने मयी।" यह बही विषया सलोनी है जो माठी टकर कर चलती है किन्तु जिसकी विद्युत् घातमा उसके घटीर से बिबोह कर उठती है।

एक बसा की सहनशीलता भी सलोनी काफी में व्याप्त है। वह माठी चलते समय जोर के बने घाकर फिर पड़ती है पर उसे कोई बिन्ता नहीं। हस्टर घाने के उपरान्त सलोनी को जब बड़ा हुआ या और घाटी देह

फोड़े की भाँति दुःख रही जो मगर उसे गाने की धुन सवार थी। रँबेठ हो गया था। घातक ने सारे नाँव को पिछाच की भाँति छाप लिया था। सोय छोड़ से मीन और घातक के भार से बड़े मरने वालों की साँसें उठा रहे थे पहर रात आठे-आठे चारों घबियाँ मंका की घोर बर्षीं। समोनी काठी टैकटी हुई धागे-धागे माठी जाती थी— 'सँयाँ मेरा कूठ जाय सखी री ।' समोनी की सहनशीलता की यह चरम सीमा है। बिग्रोह करना है क्कान्ति मानी है जादृति फँसानी है तो समोनी कहती है कि उसकी भयंकर बाबाघों को भी सहर्ष भेसना होगा तूफान मन में रलकर भी बेदना को घन्तर में समेटकर भी घाँसों में पानी नहीं घपितु, घबरोँ पर मुबार मानी है।

व्यक्तिगत जीवन में भी समोनी रसिकता को प्रभय देती है। वह लोक-व्यवहार में अत्यन्त कुशल है परन्तु उसका यह कीधस्य निष्कपट एर्ष सरस है और रसिकता के आवरण में अपनी निर्भयता को छिपाये हुए है। उसके चरित्र में एक अजीब-सी प्राणवत्ता है जो बुझापे में भी उसे मासा नहीं जपाती अपितु जीवन के प्रति मास्था अर्बुद्ध करती है जीवन में रस लेती है। मगर जब पत्नी को छोड़कर बिरल्ल भाव से उसके पाँव में पा जाता है तब वह कहती है 'इस घर में तो अक्की मही सबती बेटा' और मुन्नी से कहती है 'यह सब टीक है पर तेरा बाबू उस पर बल बना ।' बुझापे में भी वह घर के पिता घरमकान्त का बचान भाभी की-सी रसिकता से स्वागत करती है— 'कहाँ हो बेबरबी सावन में घाते तो तुम्हारे साब झूला झूमती ।' ऐसी जीवन्त मात्मा कमी भी साहित्य में अमुर नहीं होती।

उद्देश्य के लिये त्याग भी समोनी की विशेषता है। पुरखों की भूमि से वह आत्म-गौरव अक्षय्य ग्रहण करती है किन्तु भूमि से विपटी हुई वह नहीं है। समोनी काकी ने अपने घर की बगइ पाठशाळा के लिये दे दी है। बाग कृपण ही है सक्रता है। हाँ बाग का हेतु ऐसा होना चाहिये जो उसकी लखर में उसके मर-मर के सँभे हुए बग के योग्य हो। काकी घर की सँपझी में रहेगी। एक किनारे बँस-नाय नाँव लेनी। एक किनारे पड़ रहेगी। और इस त्याग के द्वारा आज समोनी जितनी सुख है सतनी सायब और कमी न हुई हो। उसका त्याग भावात्मक है अमावों की सृष्टि नहीं। वह एक सरल एर्ष मृदु धार्मीका है, यदि कोई उसको समझ दे कि जिस विषय में उसे प्रेरित किया जा रहा है वह महान् उद्देश्य की घोर जाती है वह उसके हेतु प्राण तक रफा देनी।

इस प्रकार समोनी का चरित्र अपने समय के आर्थिक संकट ही की अग्नि

प्रेमबन्ध के विविष्ट नाचो-गानों का चरित्र-चित्रण
अपित्त मात्र नहीं है अपितु प्रेमबन्ध ने मनुष्य की विभुदत्ता एवं महती आत्मा के
रूप में उसे चित्रित किया है। वह निरवयव ही प्रेमर है।

करछा

प्रमाद की दृष्टि से 'मा' कहानी की करछा प्रेमबन्ध क सम्पूर्ण मातृ
चित्रण में सर्वाधिक गरिमापूर्ण एवं श्रेष्ठ चरित्र है। उसमें मातृत्व के—
विशेषतः भारतीय मातृत्व के—सहज स्नेहमय एवं उत्सर्गप्रधान धारवत रूप का
चित्रण हुआ है बाह्यकी भाँति ही मति एक सामयिक संस्कारशील तथा बुद्धि
बाह्य रूप-विशेष का नहीं। यही कारण है कि करछा बाह्यकी की प्रपञ्चा
सामान्य सहृदयानुभूति को अधिक शिष्ट एवं अधिक स्वायी रूप से धारणित
करती है।

बनी पारित्य देवप्रसन्न के रूप में कठोर कारावास भोग कर कर माता
है परन्तु दृष्टता की प्रकृति में अधिक देर तक जीवित नहीं रह पाता। प्रत
करछा सब विषयों में ही बड़ी पति-गर्बिता है। उसे 'नर्ब' है कि उनका पति एक
देवता था। यही कारण है कि वह मनोकामनाओं से अधिक आत्मा की दृष्टि
को महत्त्व देती है। मृत्यु आत्मा पर पड़े हुए बलि से वह कहती है "तुम्हारा
जीवन देवताओं का सा जीवन का निस्वार्थ निमित्त घोर मार्ग पर चलना
मौहमाया में फँसे होते तो कदाचित् मेरे मन को अधिक उत्तोष होता लेकिन
मेरी आत्मा को वह नर्ब घोर उत्साह न होता जो इस समय हो रहा है। मैं
अपने किसी को बड़ से बड़ा घापीर्बाह दे सकता हूँ तो वह यही होना कि
उसका जीवन तुम्हारे बँसा हो। इस प्रकार विचारा करछा पूणकमेण पति
परायण है और अब मरते समय पति लगे प्रकाश की घोर इंगित करना हुआ
बहु जाता है "इस कल्पे को घोर मुझे कोई शंका नहीं है; मैं उसे इतने अधिक
पुण्य हारों में नहीं छोड़ सकता" तो करछा के समस्त धार्मिक जीवन
घोर चरित्र मार्ग रज्जा है। उसे ऐसा जान पड़ता है कि पारित्य की आत्मा
सर्वत्र उमरी रता करती रहती है। उसकी यही हार्दिक प्रतिज्ञा है कि
प्रकाश बचान होकर पिता का परधामी हो। प्रत वह इती सति में ही अपने
मातृत्व को बालने का भरतक प्रयत्न करती है। उसके इस मातृत्व के तीन
मनुष्य पत है—कर्तव्य-मय मन्तव्य-मय एवं विरह-मय।
विचारा करछा ने प्रकाश के सम्पुत्पान एवं मरण-भोग के हेतु को बुझ
दिया वह उसके मातृत्व के कर्तव्यमय के अन्ततः माता है। इस दृष्टि से वह

बिनासी है। वस्तुतः वह धर्म और कुछ नहीं उसके अखिल मातृत्व का बीजित रहने के हनु विधापरिवर्तन अथवा धर्मसम्भ्रमर है। उसके चरित्र में प्रजागता तरल मातृत्व की है परन्तु बीबलावर्ष के घाव उसका सतत संघर्ष तथा चहता है और यही संघर्ष उसकी मृत्यु का कारण भी बनता है। वह पुत्र के लिए बीबी रही है और पति के लिए प्राण त्याग गई है।

इस प्रकार, कल्याण का चरित्र कर्तव्य उत्सर्ग और तथा वेदना की कर्तव्यी है। उसमें व्यापकता है विवशनीयता है और है धारण क्षमकनीयता। कल्याण अपने घरों में कल्याण है। यही उसके चरित्र-चित्रण की सफलता एवं सार्थकता है।

(घ) राष्ट्रसेविका-रूप

सुखदा

'कर्मभूमि' प्रजागता राजनीतिक उपन्यास है। उसके सर्व-प्रमुख नारी-पार्श्व 'सुखदा' की चरित्र निर्मिति भी देश-सेविका के रूप में ही अचिक हुई है। यही कारण है कि वर्गीकरण में हमने उसे राष्ट्रसेविका रूप के अन्तर्गत रखा है। जैसे उसके परिणीता-रूप का भी साध-साध ही महत्त्वपूर्ण प्रस्तुत हुआ है। इस प्रकार सुखदा के चरित्र के दो रूप चित्रित हुए हैं—देशसेविका रूप प्रजागता और परिणीता रूप अनेकानुगत पौरुष।

परिणीता-रूप में सुखदा के चरित्र के तीन पक्ष हैं—बिलासिनी पक्ष सुखारण्य मानवती पक्ष एवं त्यागिनी पक्ष। इन तीनों को उसकी विकास-यात्रा के चरित्र के अरण्य भी कहा जा सकता है। प्रारम्भ में उसके बिलासिनी-पक्ष की ही अचिक हुई है किन्तु धीरे धीरे अटल परिस्थितियों के सम्पर्क में आकर उसने स्वयं को पहचाना है, संस्कारों का त्याग किया है और पति धर्मसम्भ्रम को सर्वस्व माना है। बिलासिनी के रूप में वह पति से बहुत दूर है, बिनाह हुए दो घाम ही जुके हैं पर बीनो में कोई धर्मसम्भ्रम नहीं है। दोनों के बिचार धर्म-धर्म अन्वहार अन्वहार संसार अन्वहार है जैसे दो मिला अन्वहार के अन्वहार एक पित्रे में अन्वहार कर दिये गए हैं। वह एक सम्पत्तिधामिनी अन्वहार की पुत्री है अन्वहार उसने कभी जाने नहीं है अन्वहार स्वाभाविक है कि अन्वहार-धीमता अन्वहार अन्वहारधीमता भी इस रूप में उसका गुण नहीं है। वह पति से स्पष्ट कह देती है 'तुम अन्वहार से ठुकराये गए हो और अन्वहार अन्वहार के अन्वहार हो। मेरे लिए यह नमा अन्वहार है। इसके साथ ही ईंट का अन्वहार अन्वहार से

देना भी बचने सीखा है। "सिद्ध करने और सिद्ध करने का अभ्यास उसे नहीं है।
 "बहु बोलते हैं तो मैं भी बोलती हूँ। मुझे किसी की बुलायी न होयी" इसी
 वाक्य का उसमें आशय्य है। वह चाहती है कि हर कोई उसकी विचार-विद्या
 में धमसर हो, स्वयं उसे अपनी चाह नहीं छोड़ती है। इसका पति मजबूरी
 करते धरपुर्ण करते, उसे यह भ्रष्ट है। मजबूरी को वह परिभय का जीवन
 नहीं मंगित्तु दूसरों की चाकरी समझती है। उसकी इच्छा है कि वह पति के
 साथ एक संकुचित दायरे में ही एक साधारण पत्नी के समान इच्छाओं की पूर्ति
 करती बने— "मैं तो चाहती हूँ मुझे मकर तखनक जैसे बसो और निर्दिष्ट
 हाँक पड़ो।" इसके साथ ही टाकी-विदेटर जाने का भी उसे प्यार है पति
 साथ न भी दे तो भी वह चाहेगी ही क्योंकि उसकी जिद को बसना आसान
 नहीं है। इस प्रकार पति प्रेमचक्र के ही दायों में बहें तो सुखदा के बिना
 सिनी बन में 'त्याग को अपह्न भोग शील की अपह्न तेज और कोमल को अपह्न
 तीव्र का सीकार हुआ है।" उसके पत्नीत्व का दूध पक है सुधारणत मान
 बती पक। परिस्वितियों के उपायत से उसने देखा है कि जिस सखार में वह
 पात्र एक पत्नी है वह तो जीवन-व्यार्थ से बहुत घोष्य है समाज में निर्भरता
 का हाहाकार वासनाओं की विमुक्त झीड़ा एक पत्नीत्व कपी वदु यपार्य भी
 है। यह मन में सोच उठती है 'तस्कारों को मिटाना होगा'। अतः वह पति के
 प्रति कुछ नरम पड़ती है। वह सोच-समझ कर अपने कहती है "हम घर में मेरा
 मात्रा तुम्हारे धारार पर है—बहाँ तुम खोये वहाँ मैं भी रहूँगी।" अपनी
 कर्तव्य-वाक्य को वह एक व्यापक धारोक्त में रखकर बरबती है तो उसे पता
 चलता है कि इच्छा का मात्रा-विद्या उपाय समाज तथा देस के प्रति भी
 बर्म होता है। इसके साथ ही एक ईर्ष्याहीन व्यापक सहानुभूति का अभावेय भी
 उसके होता है। वह जानती है कि सकीना का उसके पति के साथ प्रम-अभ्यन्त्र
 है पर 'आत्मर्य' की बात यह है कि सकीना से उसे जेठपाय भी है व नहीं है।
 चूँकि उबका अपना प्रति प्रक उसे छोड़कर देस-देस के विविध किसी अज्ञात स्थान
 पर बसा गया है अतः वह सकीना को भी अपनी ही तरह, बल्कि अपने से भी
 अधिक दुःखी समझती है। कोरों द्वारा मुन्नी के सतीत्व-हरण के उपरान्त वह
 उसे अपने पास रखने का जो उत्साह दिखाती है वह भी उसकी व्यापक सहा
 नुभूति का ही परिचायक है। इन बन में उदघ्न वात्सल्य भी बाह्य होता है।
 विद सिधु को वह 'अपने हृदय का रक्त निभा-निभा कर पास रखी थी उसके
 अन्त के उपरान्त अपने निजोरी की-सी चलता तथा पमिछी की आत्मसमय
 वादरता के लक्षण पर 'माता का धाम्य हृदय मंचलय विज्ञान' ही रूप रह

जाता है। सकीना के सम्पर्क में आकर वह यह भी जान जाती है कि प्रेम धरबा पत्नीत्व का आधार भन्दा त्याग एवं विश्वास में होता है मत धरने विद्वले धरमार्यों पर भी उसकी दृष्टि स्वतः ही जा पड़ती है। वह सोचती है मेरे हृदय में कभी इतनी भयानक न हुई। मैंने बतसे हँसकर बोलने हास-परिहास करने और धरने रूप और जीवन के प्रदर्शन में ही धरने कर्तव्य का अन्त समझ लिया न कभी प्रेम किया न प्रेम पाया प्रायः मुझे कुछ-कुछ झटका हुआ कि मुझमें क्या बुराई है। यह धारमन्तानि ही बस्तुतः व्यक्ति के जीवन में भोज माया करती है। परन्तु इससे यह तात्पर्य नहीं कि सुखदा निरन्तर ईश्वर-भावना से जुड़ी जाती है नहीं पति से कोसों दूर रहती हुई भी वह भागिनी एवं धारमाभिमानिनी है। वह सकीना से कहती है "धर तो जब तक उसकी तरफ से हाथ न बढ़ाया जायेगा मैं धरना हाथ नहीं बढ़ा सकती जाहें सारी जिम्बानी इसी वृक्षा में पड़ी रहूँ। धीरज निर्बल है और इसीमिद्वे उठे मान-अपमान का दुःख भी प्यारा होता है। मान की यह भावना ही धरने मन्त्रीरूप में व्यक्तित्वत जीवन की धारम-सम्मान धरबा धारमाधिमान की भावना बना करती है। मैना की सुसंवासे में वह जिस घातक के साथ बर्ष कर जाती है वह घटना उसके उन्नत धारमाधिमान की प्रवस साक्षी है। इसके धरितरिक्त सुखदा को धर धारभूषण धरि विनास-असाधनो के प्रति भी मयत्व नहीं है। वह कहती है "रोटियों में क्यादा कर्ष नहीं होता कर्ष होता है धारम्बर में। एक बार धरिरी की धान छोड़ दो फिर बार धरने वैसे में काम चलता है।" संक्षेपतः यही है सुखदा का सुधारपथ मानवती-रूप जिसमें विनास संस्कारों का पूर्णरूपेण मंगल-विशा की धीर प्रवर्तन हुआ है धीर धरिधर्म कर्तव्योन्मुखता ईश्वरिनी व्यापक सहानुभूति मानाधिमान वास्तव्य त्याग भयान विश्वास एवं धारम-ज्ञान धरि विधेयताधों का समाहार हुआ है। सुखदा के पत्नीत्व का तीसरा तथा सर्वोत्तम पक्ष है उसका धरिनी धरबा उत्सर्ग प्रदान पक्ष। ऐश-सेविका का कार्य निभाती हुई भी वह पति के विरह में लपी है। रातों को रोई भी है और परोक्षतः पति-रक्षण के लिए नामावित भी रही है। इस रूप में परजाताप तथा समर्पण की राह से पति के साथ पूर्णरूपेण समर्पित होना ही उसके चरित्र की सर्वप्रमुख विशेषता है। वह धरने स्वधुर से कहती है "मैंने यहाँ एकान्त में इस अन्त (धरामबन्ध) पर पूरा विचार किया है और मुझे धरना शेष स्वीकार करने में सैलमान भी संकोच नहीं है। धर एक धर भी यहाँ न ठहर। यहाँ आकर धरिकारियों से मिलें और उनके (बन्धी पति) लिए जो कुछ भी हो सके करें। हमने उसकी विधाम लपस्वी

प्रसन्न के विद्युत् नारी-पत्रों का चरित्र-चित्रण

घरमा को भोग के क्षणों में डीप कर रखना चाहा या घाब मुझे मासूम हो रहा है वह मेरा परम सौभाग्य था। यह सुखदा का परम प्रति-प्रतिष्ठा रूप है। जेस से छूट कर जब उसका पति से मिलन होता है तो उमे लगता है 'आज बसकी रिक्ति में जैसे मनुमास भर गया है, वह प्रसन्नता जैसे पम्बित हो गई है। आज उसने पुरप के प्रेम म अपने नारीत्व को पाया है। उसके हृदय से निपट कर अपने को देने के लिए आज उसने प्राण कितने ब्याकुल हो रहे हैं। आज उसकी तपस्या मानों पत्नीमूत हो गई है। भारतीय मन्वृति के अनुसार यही है सर्वोच्च साम्यत्व-रक्षना पञ्चांगिनी तथा सर्वनापीरर की मान्यता।

घट्टसेविका के रूप में सुखदा की सबप्रमुख विशेषता यह है कि वह घबला नहीं सबला है। उमने एक समापारण किमगीलता तथा प्राणबला सञ्चित है। हृदयताओं के व्यस्त धायोजन तथा मोलियों की बौद्धियों में भी वह प्रबिग रहती है। निरपरा माती है पर सुखदा को घू कर निकल जानी है मानो किसी घम्बिस्तुक्ति का स्पर्श कर लिया हो। उमका विदवास है कि 'जिना तकलौठ जठये धाराम नहीं मिलता।' हृदयल के लिए उस प्रकमी की किना पीलता का देखकर ही जपमाय कहता है 'वह भी ने सेर का कम्बा पाया है।' जेना जब उस धान्त धारबासन विजाती हुई बहती है कि समय घाम पर परीबों के कर भी बन बायें तो वह हम निष्कप भाग्यबालिना को टुकटाती हुई रूप बनाये।' उसकी जेस-याभा भी एक प्ररुण प्राणबला ही का परिणाम है। उमनी रूपरी विशेषता यह है कि वह सन्ध्या को सलन नहीं कर सक्ती। यह कृति ती धारम से ही उसमें बिधमान है। मुन्नी न धपन सजीर के अपहरण का बरना लिया—सुखदा के अनुसार 'अपर उसको फोनी हो गई तो मैं सम नू भी मंगार से म्याय उठ गया। उमने कौई अपराध नहीं किया। सल हुट्टी ने उस पर ऐसा सत्याचार किया जन्हीं यही ररर मिलता जायै। सन्ध्या के प्रति हम समहृगीलता का ही परिणाम है कि वह अपने पति की घनेटा घने राजनीतिक मिश्रालों में सहनील नहीं है। गरीबों की एक बन्नी बनानी है और उममें भी जब जाल स्वाय क्को बाबायें या गन्नी होती है तो वह मस 'नहीं मैं इनकी सहनील नहीं हूँ'—अब घननी गलि का प्ररघन करना पड़ेगा' हमने धाररू-विम्वर से नाम निगमना चाहा था पर मासूम हुवा सीपी जंपली से भी नहीं निबलना। हम जितना रबये से बड़ घा'मी हूँ

उठता ही बचावेंगे। पर इसका वह तात्पर्य नहीं कि सुखवा हिंसा में विश्वास रखती है। वह नौवीं-युग में पैदा हुई है। साधारणों को उठता ही महत्त्वपूर्ण तथा निर्माणात्मक समझती है बिटना की साध्य को। वह कहती है 'बस-बीस प्राणियों की भावुति हैगी पड़ेगी तब मोयों की धार्मिक कुर्सेनी।' इस प्रकार वह धर्म्याय के प्रति विरोधिणी तो है किन्तु हिंसा की अपेक्षा बलिदान को अधिक महत्त्व देती है। इसके साथ ही एक आधावादिता भी उसमें विद्यमान है। वह यह कभी नहीं सोचती कि हमन से म्याम सब पायेवा। उसका विश्वास है कि हमन से म्याम धीरे भी उमरता है। उसी प्रकार जिस प्रकार चोट खाने पर रोंव की मति में धीरे भी उमार धा जाता है। मैतिकता पर भी वह बस देती है। मत्तेबाधी तथा पूँसखोरा धार्मिक को वह पर्यन्त हेम समझती है। स्वयं अपने ऐश्वर्य को छोड़ कर निर्बन्तों की कठारों में स्नान मिया है अतः त्याग की विजय में भी उस की भास्वा है। त्याग उसके चरित्र का महत्त्वपूर्ण अंग है। उसका विश्वास है कि त्याग के बिना व्यक्ति दूसरे को प्रभावित नहीं कर सकता अतः अपनी धार्मिक प्राप्ति में अक्षय्य रहता है। निर्बन्तों का उत्थान निर्बन्तों की ही अनुभूति से ही किया जा सकता है। मैं इस तर में रहकर धीरे धीरे का ठाठ रखकर जगत के हिमों पर काबू नहीं पा सकती। मुझे त्याग करना पड़ेगा—यह घोष कर ही वह साधारण व्यवहार में तो नया कारावास में भी नौकरानी को हटा देती है और मैट्टन से समझ कहती है 'मैं धन किसी तरह की रियासत नहीं चाहती। मैं चाहती हूँ कि मुझे मामूली कैदियों की तरह रखा जाय। त्याग के साथ ही सेवा तथा दया के भाव भी रसाव के आभात्मक रूप में उसके चरित्र में विद्यमान हैं। सेवाधर्म की साक्ष्यां वह प्रत्येक मोहत्वे में कुलवाती है और निर्बन्तों की पछा देखकर उसकी दयाभावना भी उमड़ पाती है। 'कम की सुखवा और भाव की सुखवा में कितना अन्तर हो गया है? 'भोग और बिलास पर प्राण देते वाली रमणी भाव सेवा और दया की मूर्ति बनी हुई है। इसके प्रतिरिक्त राष्ट्रसेविका रूप में सुखवा महत्त्वाकांक्षिणी तो प्रबन्ध है परन्तु विध्याभिमानिनी नहीं। उसकी धात्म-चरित्रा में भी एक गह्रता व्याप्त है। वह मन्दिर का विसाम्बास करती है, 'पण-पण पर उसके नाम की बय बय कार होती है किन्तु साथ ही वह स्त्रियों से गमे मिसती है बालकों को प्यार करती है और पुस्तों को प्रणाम करती है।' व्यक्तिगत जीवन में भी सुखवा धर्म अधिक गम्भीर एवं धर्म्यपनधीना हो गई है। उपवासों की अपेक्षा उसे इतिहास और साधनिक विषयों में रस मिलता है, अतः उसके भाषण भी सार भन्त होते हैं।

प्रमत्त के विविध नापी-पार्षो का चरित्र-चित्रण

वस्तुतः मुंबरा का राष्ट्रसेविका-रूप उसके परिणीता-रूप की परिपुष्टि भी है। इसके बिना पति के साथ उसका सामंजस्य सम्भव नहीं था। प्रेमचन्द ने प्रथमस्थिति में उसके राष्ट्रसेविका-रूप को धार्मिक प्रभाव देते हुए भी बड़े कौशल से यह दिखाया है कि पति धीरे धीरे पत्नी दोनों नानवीय मूल्यों के सहारे ही परस्पर विकास के प्रेरक बन सकते हैं। किन्तु इसमें भी धार्मिक युग-धर्म के निर्बाह को उन्होंने सुलझा के चरित्र-माध्यम से महत्त्व दिया है। अत्याय तथा घोषण के प्रति मुंबरा की तीव्र विद्रोह-स्थिति यूरोप में उन दिनों के उलटे हुए प्राविष्टवाद तथा अस्त होते हुए यूबीवाद की छात्र को सिने हुए है। हिटलर और मुसोलिनी का व्यक्तिवाद करछाज को प्राप्त हो चुका था और भारत में अंग्रेजी साम्राज्यवाद अनेक प्रतिक्रियाओं का सामना करत हुए भिदीपप्राय हो रहा था। युग के इसी विद्रोह का भारतीयकरण प्रमत्त ने मुंबरा के चरित्र में किया है। मुंबरा में युग-धर्म भी है और आदर्श मानवीय मूल्य भी—इस दृष्टि से वह एक अत्यन्त सफल चरित्र है।

मृदुला

'जेल' कहानी की मृदुला की परम विकसित राग तथा जग्राह-वृत्तियों को देखते ही बनता है। जीवन की सम्पूर्ण बैरताओं को उसने बेध प्रेम में ढुका दिया है। पति घास तथा लहूँ पुत्र का उत्पन्न कर देने के उपरान्त भी वह बीवित है इसलिये कि जीवन में उसकी अत्यन्त धाम्ना है, ऐसे जीवन में जिसका मह्य बेध-सेवा के बिनाल प्राप्तार की निर्मित के हनु दीवारों में खुल जाना होता है। उसे पार है मान अपनी सोतनी भाषा में कहा करता था 'कन्ना ऊता लए धनाला य अंग्रेजी कम्पनी में नौकर होते हुए भी अपने पति ने देव प्रेम में प्राणाहुति की थी और यह भी कि उसकी बूदा मात पुत्रने विचारों की छोटी हूँ भी पुत्र का अनुभवन कर गई थी। धार के सब नहीं हैं, किन्तु मृदुला ने जीवन से पतायन नहीं किया है धर्मपु अपने मानूल धरने पत्नीत्व धरने पारिवारिक कर्तव्य धरने सर्वत्र को अपने एक सीमित परिवार से निकाल कर राष्ट्र-परिहार की ओर उन्मुख कर दिया है।

मृदुला जानती है कि अत्याय के हाथ पट्टन लम्बे हैं। 'प्रजा की तो इत तरह से मरन है। अगर इस-बीज धारनी प्रजा हो जाते हैं तो पीपीय कही है इनने लड़ने धारने हैं। इन्ने जलाने दुःख करती है और अगर कोई धारनी कोच में धारकर एवाक बंधक कर देना है तो गोलियों बना देती है किन्तु वह पत्न भी जानती है कि प्रजा में घट्ट उल्लाह तथा परम्परा हानुवृत्ति विद्यमान

उठती है 'मैं तो उनके सामने बावनी-सी हो जाती हूँ' कभी मोक्षिका की भाँति ज्ञानसंकर बपी कृष्ण के ध्यान में प्रवेश-सी हो जाती है—उनकी सूरत उसकी पाँखों में फिरा करती है उनकी बातें कानों में गूँजा करती है। कियता मनोहर स्वरूप है कितनी रसीली बातें। साधारण कृष्ण स्वरूप है कभी पिता को भी मार्ग का पत्थर समझती हुई स्वयं ही बड़बड़ाने लगती है 'पिताजी सगसे माराब हैं तो हुमा करें। मैं क्यों प्रेमनीति से मुँह मोड़ूँ ? प्रेम का सबब केवल दो हृदयों से है किसी तीसरे प्राणी को घसमें हस्तक्षेप करने का अपि कार नहीं' कभी इतनी उत्तेजित हो जाती है कि ज्ञानघंकर के मुँह पर ही कहने लगती है 'प्रियतम मेरी भी यही बुरा है। मैं भी इसी ताप से पृँक रही हूँ। यह तन घीर मन सब तुम्हारी भेंट है'—घीर फिर ऐसा बचसर भी घाता है जब बावनी ज्ञानसंकर के आलिंगन-आस में धाबड़ हो जाती है किन्तु इससे प्राये बहु नहीं जा पाती क्योंकि उसकी निरासङ्गति का एक नैतिक पक्ष भी है जिस मने से बिपकाये रखने पर भी उसने बार-बार जिसकी धबड़ेलगा प्रवचन की है पर तिलांजलि नहीं की घीर समर्पित एक प्रबध यौनाकाँछा से धनिक महत्त्व भी जिसे दिया है। धर्मनीत्या उसके इस नैतिक पक्ष का प्रथम प्रबंध है। मृत पति की स्मृति को पावनता से संजोये रखना बहु प्रथम धनिचार्य कर्त्तव्य समझती है। 'बहु प्रेम का रस-पान कर चुकी थी उसकी धीठल बाह घीर मुबद पीड़ा का स्वाद जब चुकी थी पर सतीत्व रखा थी धान्तरिक प्रेरणा अभी सज्जम न हुई थी। इसी भावना से प्रेरित होकर बहु ज्ञानसंकर को 'छोटे भाई के तुल्य' समझने का प्रयास भी करती है घीर फिर बहु यह भी तो सोचती है कि हिन्दू-विचारा के प्रादुर्भाव के प्रतिकूल है यह सब—'मेरे लिए जब तीर्थ-यात्रा गया स्नान पूजा-आठ शान घीर घट है। यह बिहार-विचारा सोहा गिन के लिए है।' तब बहु धार्मिक प्रायोबर्णों की घोर भी प्रवृत्त होती है। पर यह सब कुछ होते हुए भी बहु बार-बार भ्रम कर जाती है। यौन-भुक्ति का प्रस्थानाधिक निरोध उसे निरन्तर एक कृत्रिम समझौते की घोर से बाधा चाहता है—बनारस प्रयाग हरिद्वार ऋषीकेस शिवकुट तथा ब्रह्मीनाथ के मार्ग पर प्रसर होने को बाध्य करता है किन्तु सबस्व-त्याग के उपरान्त भी बहु मूल्य पर्वन्त जीवन के साथ एक प्रयास तथा धम्भीर समझीता नहीं कर पाती। काम-कुष्ठाएँ जैसे उसका पीछा ही नहीं छोड़ती हैं। इस प्रकार गायत्री की निरासङ्गति में काम-भावना तथा नैतिकता का प्रबन्ध समय विद्यमान है घीर यद्यपि प्रमथम् ने अपनी नैतिक प्रवृत्त उपयोगितावादी दृष्टि के परिष्कारस्वरूप नैतिकता ही को प्राधान्य दिया है तथापि यौन-भावना को भी उन्हीं के कम

प्रेमचन्द के विविध नारी-मात्रों का चरित्र-चित्रण

महत्त्वपूर्ण नहीं समझा है। गायत्री के माध्यम से मानो उन्होंने समाज को मनेत्र किया है कि गायत्री तो जसे-तसे बच ही निकली है किन्तु हर विषय गायत्री नहीं होती।

गायत्री के चरित्र की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह भी है कि वह सक्रियता को ही कर्म नहीं धरिण मानना गयबा सोच-विचार को भी कम समझती है। उसका परचाठाप इन दोनों प्रकार के कर्मों की फलानुष्पता में विराम का ही परिणाम है। अपनी 'बिहम्बना उनके लिए सहजों उपरैतों में धरिण विद्याप्रद और सत्रपकारी थी।" प्रेमचन्द ने सुमन के चरित्र की मति ही यही यह भी दिखाया है कि सत्यमति में साकर प्रबलतम मस्कारों को भी एक नवीन विद्या ही बा सकता है। भद्रा के सम्पर्क में आकर गायत्री भी भद्रामय हो जाती है और प्रणु करती है "घर में यह जीवन स्थान और परचाठाप पर समर्पण होता। मैं अपनी रियाया से इस्तीफा दे देती हूँ मेरा उस पर कोई धरिणकार नहीं है।" परन्तु यह एक बिहम्बना होती है कि रीबयोग से कुर्ममति में पड़ने और पुनः समान पर घाने के उतराण भी धारणकारी चरित्र धारण गानि से विमुक्त नहीं हो पाते यत जीवन उनके लिए प्रायः समझीते का क्षेत्र नहीं रह जाता। गायत्री के परचाठाप में भी धारणमति ही धरिण उतरती है।

गायत्री भावुक है यत उदार भी है। अनुहार गयबा गोपक होता बाहकर भी वह नहीं हो पाती है। पहले तो वह लोचनी है कि लपान की "छू" भी हो जाए मगर लुपी धारणमियों से ही "परन्तु पुनः विचार करती है 'ये' को धरिणों की हय से भरना तो धरिण नहीं।" हलवाई बाधकी और धारणमि से नेकर मनेत्रर तक किनी को भी वह धरिणमुष्ट नहीं करता है। वह मद्रहुरी में बुद्धि करने को भी तलर हो जाती है तगर की कई धारणमियों का निरीक्षण करके विद्या (धनुबा) के नाम पर धरिणोपिक देने के लिए रुपये भी दे पाती है। गायत्री को जो लोक धोपक कर्म में रखते हैं वह मद्रमद्रत गायत्री के इन उदार धरिणों को विस्मृत कर देते हैं और माप ही यह भी धरिण पाते हैं कि कमी धोचकों जैसा क्षेत्र उनके मन में स्थान पाठा भी है तो वह स्थायी नहीं होता— वह तो उनके बुद्धिधर एवं निस्महाय नारीरय का धरिणोप मात्र है। दूसरी धोर गायत्री उदाररहयवा है रयबा यह तातरय भी नहीं है कि उनमें धरिणों का निर्बाध स्वातन्त्र्य है। वह मद्राउन धरिण में विरिणरय रखने वाली विरिण है यत वह एक सीमा तक धरिणमय विरिणों को बाध कर रखने में भी धरिणरय तमात्र का बस्याण मद्रमत्री है। यही कारण है कि उसे धारणमय तमात्र तथा

सम्पत्ता से बूणा है। जिस विचार-स्वातन्त्र्य के कारण साम्प्रत्य चर्चित होता हो पायत्री के अनुसार "ईश्वर बहु कुदिल यहाँ न जाए जब सोचों में विचार-स्वातन्त्र्य का इतना प्रकोप हो जाए" ऐसी वधा में परिचय नामों का अनुसरण करना नाशानी है। प्रभाषा की मुसामी इच्छाओं की मुसामी से अलट है।

गामत्री स्वभावतः पवित्रा है अतः धातमप्रसदा की भासदा भी उसे है। पवित्रा तो बहु इतनी है कि उसके समस्त पिता तथा प्रेमपात्र तक को तुच्छ समझती है। "बहु प्रथिमान की पुतली है, अपने रूप पर भी उसे अधिमान है किन्तु प्रेमचन्द के शब्दों में सुधामर अधिमान का सिर नीचा कर देती है।" 'नायत्रीदेवी' सेवक को पड़कर बहु फूली नहीं समाती उसका अनुवाद करके कृपकों को सुनाती है। सब कुछ त्याग करने की इच्छा रखती हुई भी बहु कहती है 'हाँ' यह साक्ष्य अधरय है कि मेरी स्मृति बनी रहे मेरा नाम प्रमर हो जाए, सोय मेरे पक्ष और कीर्ति की रक्षा करते रहें। यही चिन्ता है जो अतः तक मेरे पैरों की बेड़ी बनी हुई है।

नायत्री में "रमलीबधा और सासिरय के साथ पुरुषों का-सा बर्ष भी है।" बहु कोमलांगिनी है किन्तु 'कच्ची सड़कों के तर्ष और बूत से भी' भावती नहीं है। बहु अपने विनाश भवन में बहुत कम धातमपूर्वक बैठती है कभी इस पात्र जाती है कभी उस छावनी में ठहरती है कभी सहर जाना पड़ता है तो कभी निरन्तर प्रतिकारियों से मेलजोल की आवश्यकता पड़ती है। बहु अपने इनके क समस्त प्रार्थों की बसा स्वयं बीरे पर जाकर बैठती है। उसके जीवन में एक सक्रियता है।

किन्तु गामत्री के चरित्र-चित्रण में अनेक दोष भी परिलक्षित होते हैं जिनमें से दो तो अत्यन्त स्पष्ट हैं। इनका उत्तरदायित्व गामत्री पर नहीं अपितु प्रेमचन्द पर है। उसके चित्रण की पहली त्रुटि है उसका अस्वाभाविक अन्त। उसे धातमम्मानि में तथा कर जीवित भी रखा जा सकता था। दूसरा दोष है उसकी चित्रण विधि में जो कि नाटकीय नहीं अपितु विस्मयकारक है; गामत्री को स्वयं बहुत कम कहना पड़ता है प्रेमचन्द स्वयं ही उसकी बकामत प्रतिक करते हैं यही कारण है कि गामत्री की विनाश-वृत्ति को चुनौती तो मिलती रही है किन्तु एक तीव्र अन्तर्द्वन्द्व का रूप बहु कारण नहीं कर पायी। और फिर इन दोनों दोषों का कारण भी स्पष्ट है। ऐसा न करने से तो प्रकृति गामत्री के लिए ही एक 'प्रमाथम' की आवश्यकता होती। फिर कैसे सम्भव था कि 'प्रेमाथम' पर गामत्री ही का धारण होना। कई बार तो प्रेमचन्द की यह विचरता बहुत ही प्रकट होती है।

प्रेमबन्ध के विद्विष्ट माता-पिता का चरित्र-चित्रण

कैलासी

विधवा-विवाह के प्रेमबन्ध कितने पक्षपाती हैं—इसका सबसतम प्रमाण 'नैराश्यजीवा' कहानी की कैलासी है। गायत्री में जो सबेरा घसकृत रहा है कैलासी में उसकी सबेरा घमिष्पति हुई है। कड़ि-घस्त समाज में किंच प्रकार पूर्ण-बीबना विधवा के माता-पिता चाह कर भी उसके पुनर्विवाह की कल्पना को धरनों तक नहीं सा पाते—सह विधाना ही प्रेमबन्ध का यहाँ घमिष्प है। साथ ही इंगित इस घोर भी है कि माय नहीं तो कस समाज-स्वास्थ्य के हेतु, इस नैराश्यक भावव्यक्तता को जवान पर लाना ही पड़ेगा।

नैराश्य कैलासी के चरित्र का सर्वप्रधान घंघ है। इस नैराश्य का मूल है काम-कुम्भटा। 'कैलासी कुमारी का घमि गीमा भी न हुआ या वह घमि तक पठ गया। 'बैधम्य मे उसके बीबन की घमितापाघों का शीपक कुम्भटिवा।' देखूँ कर्ष की इस विधवा क उपवेतन में ही निराशा पर करमा घारमन कर बेठी है। मा-बाप एवं सवे सम्बन्धियों का प्रेम नहीं घमि तु घम बेबना घोर सहायुभूति के घम्य ही उसे नसीब होते हैं। परिणामस्वरूप घम घमि में ही कैलासी एकान्तप्रिय हो जाती है। घर के कोने में बंठी किस्ते कहानियाँ पढ़ती रहती है।

एकान्तप्रियता के उपरान्त कैलासी के बीबन मे विवाह का घाममन होता है। उसकी एकान्तप्रियता को बीबन का सुगापन न समझ कर उसके माता निवे उसे पठि-शोक के रूप में घतत घहस करठे हैं। घत उसके मन-प्रसादन के निवे विभिन्न विसास-सामघियाँ जुटाई जाती हैं। वह सरसपाटे की इतनी घारी हो जाती है कि एक दिन भी बिघेटर न जाने से बेकल-सी होने लगती है। इस विसासिनी रूप में उसके चरित्र में प्राणियों के प्रति घसहानुभूति उच्छततता तथा नुशचि-मर्ष घादि की भावनाओं का प्रस्तुटन होता है। परिणाम स्वरूप मोहस के सोम घावाने घसने लगते हैं घीर उसके माता-पिता सभी प्रकार के विनोद प्रसाधनों को उसके लिए घमाम्य करने पर बाध्य हो जाते हैं। कैलासी का विसासिनी रूप भी नैराश्य में जा जाता है।

घम कैलासी सपमय सोनहू साम की है किन्तु बीबन के बिल कास मे बासनायें घमिक तीबवेय से उबुडुड होती हैं घसमें घरबामाधिक रूप से उसे नुस-रीया की जाती है। उसे समसघया जाता है कि बैधम्य पूर्ण-कर्मों का पल एवं घनके प्रापरिचत वा घयलर बिघेय होता है। वह सोचने लगती है 'बैधम्य मातना नहीं है बीबनोडार का सामन है। मेघ उडार त्याग विघय मति

घोर उपासना ही में होगा।" अतः पुष्पसिंहा रूप में वह एकमात्र साधना की ओर ध्यानस्र होती है और एक दिन ऐसा भी आता है जब कि वह संन्यास धारण करने का पूर्ण निश्चय कर लेती है। परन्तु उसका यह रूप भी स्थायी नहीं है। अनेकविधता स्थायी हो भी कैसे सकती है। समाज को भी पुनः चिन्ता हो जाती है और निश्चय किया जाता है कि संन्यासिणी होने से तो सम्प्रापिका होगा ही अधिक भयंकर है क्योंकि संन्यास तो समाजनिरोध माधुर्य की दिशा है निश्चित है। अतः कैलासी का यह पक्ष भी निराशामय है।

उन्नीस साल की कैलासी अब सेवाश्रमधारिणी सम्प्रापिका है। उसकी सेवा-श्रुति दिनोदिन तीव्र होने लगी है। पाठशाला परिवार का रूप धारण कर लेती है। परन्तु किसी भी छात्रा की दृष्टावस्था में अब वह रात रात भर उसके चिरहाते बँधी रहती है। भोजन की परीची वाली पड़ी रहती है। जो घर वालों को अचानक बड़की के समाज की पुनः चिन्ता होती है और परिणाम स्वल्प पाठशाला बन्द हो जाती है। कैलासी की निराशा अब इस सीमा पर पहुँचती है कि वह हँसी-हँसी में कहने भी लगती है 'मर जाऊँगी तो आपके चिर से एक विपत्ति टल जायेगी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कैलासी के प्रत्येक चरित्र रूप का परिणाम नैराश्य ही होता है। अस्तुतः अतृप्त जीवन-कृतिक के दिशा परिवर्तन के सभी अन्तः प्रयास अतिबाध की सीमा को छू जाता करते हैं। अतिबाधिता में एकमात्र अस्वाभाविकता विद्यमान होती है अतः वह अन्ततः भयंकर नहीं होती। पुनः विवाह होकर यदि कैलासी सेवा अथवा त्याग की दिशा में ध्यानस्र होती तो निश्चय ही उसकी सेवा आदि में अधिक स्थिरता तथा अधिक स्वाभाविकता होती।

सर्वांगीण निराशा आत्मघात कुमार्य अथवा विद्रोह का निर्दोषन किया करती है। पावनी की मृत्यु का कारण भी यही निराशा ही पर कैलासी का नैराश्य उसे विद्रोह की ओर उन्मुख करता है। कैलासी में अब अधिक सहन करने की सामर्थ्य नहीं है। वह विस्मय होकर चिन्ता उठती है, "कुछ मासूम भी तो हो कि संसार मुझ से क्या चाहता है। मुझ में जीव है, नेत्रना है, बड़ बरोंकर, बल, बल, १ मुझसे यह नहीं हो सकता कि अपने को, अस्वास्थि, कुक्षिका समझूँ और एक टुकड़ा रोटी खाकर पड़ी रहूँ। ऐसा क्यों बहूँ। संसार मुझे जो चाहे समझे मैं अपने को अज्ञानिनी नहीं समझती। मैं अपने आत्म सम्मान की रक्षा धारण कर सकती हूँ। मैं इसे अपना और अपमान समझती हूँ कि पद-पद पर मुझ पर अंका की जाय नियम कोई अरबाहों की भाँति मेरे पीछे मारें।

मिष्ट भूमता रहे कि किसी वंश में न जा पड़े। यह दया में मिष्ट प्रसन्न है। बीच बर्ष की पूर्ण-बीबना कैलासी को सब अपनी बेकसी का बयान खान होने लपटा है। 'स्त्री पुरुष की चित्तभी प्रवीण है मामो स्त्री को विधाता ने इसी जिये बताया है कि पुरुषों के प्रवीण रहे। यह सोचकर वह समाज के अत्याचार पर दौल पीघने लगती थी। इसी दौल पीघने का परिणाम होता है कि एक दिन कैलासी सुन्दर केच-बिग्याठ करती है और पूरे में मुसाब का पून भी बनाती है दूसरे दिन रंभीन रेगमी साड़ी पहन लेती है और तीसरे दिन उपवास बत घादि से भी उसका बिबवास उठ जाता है—मन्त उठ बिबाह के नाम से भी बुरा हो जाती है; "बरातों को वह टिकारियों के कुत्ते समझती है और बिबाह को 'स्त्री का बसिदान'। परन्तु कैलासी को यह बिब्रोह-भावना उज्जकाटि की भावना नहीं है क्योंकि इसका मूल धार्य-सम्भाम में नहीं अपितु नैराश्य में विद्यमान है। प्रेमचन्द के अन्तों में यह बिब्रोह "नैराश्य की अन्तिम अवस्था" ही है।

इस प्रकार कैलासी का चरित्र बस्तुतः ही एक 'नैराश्य-बीका' है। प्रेमचन्द ने अत्यन्त उद्वेग में यह स्पष्ट किया है कि वह एक नाबिकबिहीन बीका के समान है उसकी बीबन-बीका नैराश्य-सागर में पांभी के अन्त में बपवनाती ही रहेगी—दूसरे अन्तों में उसके नैराश्य-दूरण का एकमात्र स्वल्प उपाय बिबाह ही है।

प्यारी

'स्वामिनी' कहानी को प्यारी साधारण स्तर की एक प्राचीण कृपक-विषया है। प्रेमचन्द ने उसके माध्यम से यह स्पष्ट किया है कि बिषया के लिए बीबन-बीक में किसी आचार का होना अविचार्य होता है। अन्तना इस भाव की भी हुई है कि सामाजिक स्तर की इन्डि से प्यारी अयठित एवं दावणी तथा कैलासी की अयेसा नहीं अपितु निम्नवर्गीय होते हुए भी सजना एवं स्वतन्त्र है। उज्जतरत्न परम्परा-बीबी होता है, बिबि-नियेकों की बर्बर माय्यताओं से बिषया रहता है, अतः बिषया को बहुधा आचका का कारण तथा कर्षी-कामी बयापाव भाव समझ करता है। इसके बिपरीत कृपकों का निर्भर समाज अन्तर्बाह से संघर्षरत एवं परिघयबीबी होता है अतः बिषया ही नहीं अत्येक हान बढ़ाने वाले प्राणी की उछे आरव्ययता हुमा करती है।

प्यारी के बीबध के दो बत हैं—आचलम्ब अथवा आचार्यक पत। तथा निरवभम्ब अथवा अनावात्मक पत। अथम बत के अन्तर्गत अथवा

स्वामिनी का घाटा है। बिबबा होती हुई भी वह दुह-स्वामिनी बनी रहे वह धर्म भावना भी उसके लिए पति के प्रभाव का सब से बड़ा अवलम्ब है। परन्तु उसकी यह अभिकारेण्य धर्म की कुण्डली नहीं अभिप्रेत मानवतावादी व्यापकता की पर्याय हैं। उसके लिए स्वामित्व का धर्म है प्रथम परिधम। स्वधुर से मगडारे की कंधी पाने के उपरान्त वह धार्मिका की जति मिठवनी नहीं बैठती वरन् तन-मन-बन से दुह प्रबन्ध की सुचारता में जुट जाती है। वह 'न कुछ विद्याम लेती है न दूसरों को देने देती है।' उसके इस परिधम के कनकधर्म ही परिवार में "भोजन पहले से धण्डा मिलता है, धीर समय पर मिलता है। रूप धनिक होता है भी धनिक होता है धीर काम धनिक होता है। प्यारी के स्वामित्व का धर्म है कर्तव्य-युति निष्काम-ही कर्तव्य-युति परामे कुछ में धारण-मुक्त की भावना। स्वधुर धिक्वात लाय समझता है कि माई भीबाई किसी के नहीं होते पर वह उत्तर में निरीह-ही इतना ही कहती है, "जो अपने हैं वे भी न पूछें तो अपने ही रहते हैं। मेरा धर्म मेरे साथ है, धनका धर्म धनके साथ है। नर जाईवी तो क्या छापी पर साथ कर न जाईवी? प्यारी के स्वामित्व का धर्म है त्याग। जिन धानुपणों के लिए नारी-धर्म धाकाय-धातान एक कर देता है वह दुहस्त्री के संभालन में जमीं का ध्यय तथा उत्सर्ग करती है। अपने लिए तो वह कभी कुछ रकती ही नहीं वर दुनारी बहन (दिवरानी भी) की ध्योही कर्तों की चाह होती है वह उसके ध्यय-बाणों का विकार बनती हुई भी किसी न किसी प्रकार कर्त का ही देती है। नर में धनी सुधी हैं धनी उजले हैं, 'हां धन कोई कस्य है, विविष्ट तथा नतिनधेय में है तो वह प्यारी है।' बस्तुतः जिन धयाम में प्यारी रहती है उसकी इति से पारिवारिक त्याग तक की लैबाई की मत्पण्य पहलपूरुं होती है। प्यारी के स्वामित्व का धर्म है भोक्तव्यता धानन तथा धयाम में धपनी धयाम रथा। साधारणतः वह मिठव्यविनी है 'पर बाई इज्जत की बात धा चाठी है वह धिस खोलकर धर्ष करती है। धनर नाथ में हैठी हो कई तो क्या बाठ र्ही। लोभ उधी का नाथ तो धरैधे। दुनारी के पुत्र-धय पर वह नविध की चिन्ताधों से विमुक्त-ही होकर धूमधाम से उसके धनोसध का प्रस्थाव कर्ती है। प्यारी के स्वामित्व का धर्म है सहनधीलता। दुनारी दुबाठी का पति मधुरा धीर कभी-कभी स्वधुर भी धनी उधधी नाथ धायों का नमत् विदलेयल करते हैं; जिसकी भी नाथ की युति धविलम्ब नहीं होती वही उसके धिर पर सवार हो जाता है। उसकी बहन तो र्ध्यावध उधधे बहनापा तक नहीं रखती। "नर के धधी धाधनी धपने-धपने धधधर पर प्यारी की धो-धार लोटी-धठी मुना धाठे हैं धीर वह धरीध धीध हँसकर सट्टी है।

उसकी स्वामित्व-कल्पना तो इन भाषाओं से घोर भी स्वल्प होती है।" प्यारी के स्वामित्व का अर्थ है ममता। ममता का दृढ़ बन्धन ही उसे परिवार से बाँधे रहता है, किन्तु स्वयं की मृत्यु के उपरान्त जब मनुष्य तथा बुनारी बाल-बच्चों समेत परदेस की राह लेने लगते हैं घोर बुनारी की यह इच्छा होती है कि उस स्वाम पर ध्यान से निवास करे वहाँ प्यारी न हो तो उसका हृदय कबोठ खाकर रह जाता है। उसने तो इन सबको स्वामिनी की-सी प्रताड़नायें नहीं माँ का सा प्यार दिया है घोर धाम जब वे निर्मोही उसके सम्मुख ममत्व को टुकटा कर जा रहे हैं 'उसके भी मैं माता है वह भी इसी भाँति निर्द्वन्द्व रहे मोह घोर ममता को पीरों से कुचल डाले' किन्तु वह ममता जिस काय को खाकर पत्नी भी उसे अपने सामने से हटाये चाते देखकर सुम्ब होने से न रुकती थी।" बिसोम की इस अवस्था में भी उसका ममत्व कह ही चठता है "देखो बच्चों को बहुत मारना-पीटना मत मारने से बच्चे बिही घोर बेहया हो जाते हैं।" घोर जबर बुनारी उपदेशों को इस तरह बेमन हो कर सुनती है मानो कोई सनकी बक रहा हो। इस प्रकार मूसठ प्यारी के स्वामित्व का अर्थ सेवकत्व है। वह स्वामिनी है किन्तु नाममात्र से ही अल्पधा परिश्रम कठम्य-मूर्ति त्याग मर्बादा-पालन सहनशीलता ममता तथा सेवा—ये सभी गुण साधारणतः स्वामिनी के नहीं आदर्श सेविका ही के होते हैं।

प्यारी के वैदव्य का दूसरा पक्ष है निरवलम्ब अथवा अभावामक पक्ष जो कि अधिक देर तक स्थिर नहीं रहता। स्वामित्व अथवा सेवकत्व भी तो किसी हेतु पर टिके हुए होते हैं। इमाध जीवन के प्रति सगाव प्रमुत्सव इसीलिए होता है कि हम अपने लिए ही नहीं अपितु किसी अग्य जिसे कि हम अपना समझते हैं, के लिए भी जीते हैं। परन्तु प्यारी से तो यह आचार भी भव क्षिन गया है। उसका एकमात्र जीवन जैसे धूम्य में टिका हुआ है। यत उसके जिस पत्नीत्व तथा नारीत्व पर स्वामित्व के आकर्षक पर्ये पड़ गए थे वह पुनः जाइठ होता है। पहले भी बुनारी तथा मनुष्य के आश्रितन की देखकर एवं यिषु-संसार में उन्हें परितृप्त देखकर उसने कभी-कवार करवट बरसी थी। आशिर वह भी एक प्राणी है उसके मातृत्व तथा पत्नीत्व में भी हूक चठती है। जिस आचार के कारण उसे सामाजिक प्रतिष्ठा मिली थी वह भी भव विस्तुप हो गना है। यत वह निरपघ रहने लगती है। 'कई दिन तक मूर्च्छित-सी पड़ी रहती है न बर से निकसती है न बूझा बनाती है घोर न हाप-मुँह ही बोती है।" बीरे-बीरे उठका गैराय बिसोम में परिवर्तन को प्राप्य होता है घोर - बिसोम आत्मानिमान में। वह आत्मानिमान का अवलम्ब नकर पुन उठती है

घीर कहती है "वह (मधुरा) समझता है मैं उसके सहारे बैठी हूँ" वहाँ उसको भी धिमाने का दावा करती हैं। निराशा बिलोभ तथा धात्मानिमान—यही है उसका अभावपूर्ण पक्ष।

किन्तु जीवन कभी मृग्य नहीं होता। व्यक्ति भावों को अभावों के स्थाना पन्न बनाने में निरन्तर निरत रहता ही है। धात्मानिमान पूर्ण-जीवना के अभाव का स्वल्प आहार कभी नहीं हो सकता। यही कारण है कि प्यारी की मनीषित्वों में भी अन्त विभिन्न परिवर्तन आ जाता है। इन वृत्तियों में जो सब से अधिक उभरती है वह है यौन-वृत्ति अथवा धनुराग। मरपुर यौवन में प्यारी विचरती हुई थी। अन्त उसके एकान्त नीरव जीवन में हलबाहा बोझ पधारण करता है। प्यारी उसे पतिरूप में स्वीकार कर लेती है। स्वामिनी रूप में विश्व आहार को उसने लीया था उससे भी अधिक भावपूर्ण आहार की प्राप्ति उसे पुनः हो जाती है। प्रेमचन्द ने दिखाया है कि उसका वास्तविक स्वामित्व पत्नीत्व की दिशा में ही है। उसके पास अन्त पुनः अर्पण है आचार्य है घीर स्वास्थ्य है। गावत्री घीर कंधाची ने ये बिल कभी लौटकर नहीं देखे।

• • •

